।। ओ३म् ।।

सांख्यदर्शनम्
ब्रह्ममुनिभाष्योपेतम्
तत्र
पञ्चमोऽध्यायः



भाष्य विस्तार - पूज्य स्वामी विवेकानंद जी परिव्राजक
(निदेशक- दर्शन योग महाविद्यालय)

पञ्चमोऽध्यायः

वक्तव्यम् -

अत्राध्यायस्य प्रारम्भे ''नेश्वराधिष्ठिते फल...''(२) इति सूत्रजातस्यार्थोऽनिरुद्धविज्ञानभिक्षुभ्यामीश्वरप्रतिषेधपरोऽकारि, यथा ''पूर्वसिद्धमीश्वरासत्त्वमिदानीं न्यायेनाह-नेश्वराधिष्ठिते फल...'' (अनिरुद्धः) '''ईश्वरासिद्धेरिति यदुक्तं तन्नोपपद्यते कर्मफलदातृतया तत्सिद्धेरिति ये पूर्वपक्षिणस्तान्निराकरोति-नेश्वराधिष्ठिते फल...'' (विज्ञानभिक्षुः) इत्थं तयोरीश्वरप्रतिषेधपरमर्थविधानमयुक्तमेव, ताभ्यां पूर्वसूत्रार्थेष्वीश्वरस्य स्वीकारात्, तं स्वीकृत्यार्थविधानात्। तद्यथा - ''अकार्यत्वेऽपि तद्योगः पारवश्यात् - पारवश्यादुक्तं न तु परार्थत्वात्, स च कः परो यस्य वशे प्रकृतिः ? परः - आत्मा किंरूपः, इत्याह - स हि सर्ववित् सर्वकर्ता, - ईदृशेश्वरसिद्धिः सिद्धा''

पञ्चमोऽध्यायः

वक्तव्यम् -

[अत्राध्यायस्य प्रारम्भे ''नेश्वराधिष्ठिते फल...''(२) इति सूत्रजातस्यार्थोऽनिरुद्धविज्ञानभिक्षुभ्यामीश्वरप्रतिषेधपरोऽकारि] इस अध्याय के आरंभ में सूत्र ''२'' इसकी व्याख्या में अनिरूद्ध और विज्ञानभिक्षु जी ने जो अर्थ किया है, ईश्वर का खंडन करते हुए व्याख्यान किया है, **[यथा ''पूर्वसिद्धमीश्वरासत्त्वमिदानीं न्यायेनाह-नेश्वराधिष्ठिते फल...'']** ईश्वर की सत्ता नहीं है ये हम पहले ही सिद्ध कर चुके हैं, उसी बात को अब तर्क से कहते हैं - **''नेश्वराधिष्ठिते फल''** **[(अनिरुद्धः)''ईश्वरासिद्धेरिति यदुक्तं तन्नोपपद्यते कर्मफलदातृतया तत्सिद्धेरिति ये पूर्वपक्षिणस्तान्निराकरोति-नेश्वराधिष्ठिते फल...'']** ये विज्ञानभिक्षु का कथन है, ''सिद्धांती कहते हैं **''ईश्वरासिद्धे''** ये कहा किन्तु कर्मों का फल तो मिल रहा है , कर्मों का फला प्रदाता होने से ईश्वर की सिद्धि हो रही है'' ये पूर्वपक्षी लोगों (यहाँ सिद्धांतीयों को पूर्वपक्षी बना दिया) का खंडन करता है सूत्रकार। और सिद्धान्त पक्ष में ये कहता है- **''नेश्वरासिद्धे''** ईश्वर की कोई सिद्धि नहीं है, कर्म करोगे तो फल तो मिल ही जाएगा। इसमें ईश्वर को मानने की आवश्यकता। **[(विज्ञानभिक्षुः) इत्थं तयोरीश्वरप्रतिषेधपरमर्थविधानमयुक्तमेव]** ब्रह्ममुनि जी कहते हैं इन दोनों ने ईश्वर का खंडन करते हुए जो अर्थ किया है वह अयुक्त है, **[ताभ्यां पूर्वसूत्रार्थेष्वीश्वरस्य स्वीकारात्, तं स्वीकृत्यार्थविधानात्]** इन दोनों ने तीसरे अध्याय में ईश्वर को स्वीकार किया है और यहाँ ये कहना की ईश्वर नहीं है ये कहना ठीक नहीं। तद्यथा - **''अकार्यत्वेऽपि तद्योगः पारवश्यात् - पारवश्यादुक्तं न तु परार्थत्वात्** जैसे कि -प्रकृति कार्य न होने पर भी उसका कार्य से योग हो जाता है, परवश होने से। यहाँ परवश होने के लिए कहाँ है, दूसरे के अधीन होने के लिए कहा है, **[स च कः परो यस्य वशे प्रकृतिः]** जिसके वश में प्रकृति है वह पर कौन है? **[परः - आत्मा पर- आत्मा है किंरूपः]** किस स्वरूप वाला है?, **[इत्याह - स हि सर्ववित् सर्वकर्ता, - ईदृशेश्वरसिद्धिः सिद्धा'']** वह सर्ववित है, सर्व कर्ता है, शक्तिमान है, ऐसे ईश्वर कही सत्ता सिद्ध है **(सांख्य० ३.५५-५७ अनिरुद्धः)** स्वामी ब्रह्ममुनि जी कहते हैं कि यह पूर्वपक्षी तीसरे अध्याय में ब्रह्म को स्वीकार कर चुका है पुनः पांचवे अध्याय में भी यही स्वीकार करेंगे, उसका प्रमाण दे रहे हैं-**तथात्रेव पंचमाध्यायेऽग्रे**

(सांख्य० ३.५५-५७ अनिरुद्धः) तथात्रेव पंचमाध्यायेऽग्रे ''ब्रह्मनिरूपणाय अन्येषां तुल्यरूपमाह-समाधिसुषुप्तिमोक्षेषु ब्रह्मरूपता'' (सांख्य० ५-१६ अनिरुद्धः) अत्रानिरुद्धेन पर आत्मा सर्ववित् सर्वकर्ता तथा ब्रह्मनाम्ना स ईश्वरः स्वीकृतो हि । अथ विज्ञानभिक्षुरपि - ''तत्सन्निधानादधिष्ठातृत्वं मणिवत्'' (सांख्य० ११.९६) इति सूत्रे ''पुरुषस्य सन्निधानादेवाधिष्ठातृत्वं स्त्रष्ट्त्वादिरूपमिष्यते...आदिपुरुषस्य संयोगमात्रेण प्रकृतेर्महत्तत्त्वरूपेण परिणमनम्... तथा चोक्तं निरिच्छे संस्थिते रत्ने यथा लोहः प्रवर्तते । सत्तामात्रेण देवेन तथा चायं जगज्जनः । निरिच्छत्वादकर्ता कर्ता सन्निधिमात्रतः'' (विज्ञानभिक्षुः) अत्र विज्ञानभिक्षुणाऽऽदिपुरुष ईश्वरः प्रकृतेः परिणामकर्ता सन्निधिमात्रेणोक्तः, कर्ता स आदिदेवः सन्निधिमात्रेण स्वीकृतस्तथा कथम्भूतः ''स हि सर्ववित् सर्वकर्ता

''ब्रह्मनिरूपणाय अन्येषां तुल्यरूपमाह-समाधिसुषुप्तिमोक्षेषु ब्रह्मरूपता'' (सांख्य० ५-११६ अनिरुद्धः) इसी अध्याय में आगे कहेंगे कि ब्रह्म का निरूपण करने के लिए ब्रह्म के स्वरूप को बतलाने के लिए सूत्रकार अन्यों की ब्रह्म की तुलना करके समझाता है कि जैसे वो है वैसा ही ब्रह्म है, जीवात्मा तीन अवस्थाओं में ब्रह्म के तुल्य होता है समाधि-सुषुप्ति और मोक्ष में, समाधि में जीवात्मा को किसी प्रकार का दु:ख नहीं होता खूब आनन्द में रहता है और सुषुप्ति में भी सब दु:ख भूल जाता है प्रगाढ़ निद्रा चिन्ता मुक्त कर देती है कुछ काल के लिए, तथा मोक्ष में भी सब दु:खों से छूटकर परमानन्द को प्राप्त करता है। इस प्रकार से तीन अवस्थाओं में जीवात्मा दु:ख से छूट जाता है और सुख युक्त होता है ऐसा ही ब्रह्म भी दु:ख से रहित और सुख से युक्त है। (यहां ब्रह्म की उपमा देकर समझा रहे हैं ब्रह्म होना चाहिए तभी तो उपमा सार्थक होगी?) **[अत्रानिरुद्धेन पर आत्मा सर्ववित् सर्वकर्ता तथा ब्रह्मनाम्ना स ईश्वरः स्वीकृतो हि]** यहाँ अनिरुद्ध आचार्या ने ईश्वर को परमात्मा सर्ववित सर्वकर्ता और ब्रह्म नाम से स्वीकार किया ही है । और इसी प्रकार से विज्ञानभिक्षु जी ने भी स्वीकार किया है - **[''तत्सन्निधानादेवाधिष्ठातृत्वं मणिवत्'' (सांख्य० १.९६) इति सूत्रे ''पुरुषस्य सन्निधानादेवाधिष्ठातृत्वं स्त्रष्ट्त्वादिरूपमिष्यते**] इस सूत्र की व्याख्या में विज्ञानभिक्षु जी ने लिखा है- पुरुष की सन्निधि निकटता होने से उसका अधिष्ठात्रित्व सिद्ध है क्योंकि प्रकृति उसके पास में है होने से वह प्रकृति का मालिक है ..**[आदिपुरुषस्य संयोगमात्रेण प्रकृतेर्महत्तत्त्वरूपेण परिणमनम्...]** आदिपुरुष (परमात्मा) का संयोग मात्र होने से (क्योंकि प्रकृति के साथ वह था ही) प्रकृति को महतत्व रूप से परिणित किया **[तथा चोक्तं निरिच्छे संस्थिते रत्ने यथा लोहः प्रवर्तते । सत्तामात्रेण देवेन तथा चायं जगज्जनः]** ऐसा ही कहा भी है- जैसे जड़ चुंबक को रख दिया जाए उसकी परिधि में लोहे (जड़) को खींच लेता है जबकि दोनों ही जड़ हैं, इसी प्रकार से परमात्मा के द्वारा ये जगत बना दिया। **[निरिच्छत्वादकर्ता कर्ता सन्निधिमात्रतः'']** वैसे परमात्मा ने अपने लिए (स्वार्थ सिद्धि) जगत नहीं बनाया, फिर भी प्रकृति की निकटता, ईश्वर का सामर्थ्य और जीव के स्वार्थ के कारण जगत बना **[(विज्ञानभिक्षुः) अत्र विज्ञानभिक्षुणाऽऽदिपुरुष ईश्वरः प्रकृतेः परिणामकर्ता सन्निधिमात्रेणोक्तः]** यहाँ विज्ञानभिक्षु जी ने आदिपुरुष (ईश्वर) प्रकृति को जगत रूप में परिणाम करने वाला है और वह सन्निधि मात्र से जगत बनाने वाला है, इस प्रकार से ईश्वर को स्वीकार किया है, **[कर्ता स आदिदेवः सन्निधिमात्रेण स्वीकृतस्तथा कथम्भूतः]** वह कर्ता आदिदेव जिसने सन्निधि मात्र से जगत बनाया। वह कैसा है-**[''स हि सर्ववित् सर्वकर्ता - सर्वकर्तेश्वर आदिपुरुषो भवति...** वह सर्ववित् है, सर्वकर्ता, आदिपुरुष है **ईदृशेश्वरसिद्धिः सिद्धा]** ऐसे ईश्वर कि सत्ता सिद्ध है **[यः सर्वज्ञः सर्वविद् यस्य**

- सर्वकर्तेश्वर आदिपुरुषो भवति... ईदृशेश्वरसिद्धिः सिद्धा यः सर्वज्ञः सर्वविद् यस्य ज्ञानमयं तपः सन्निधिमात्रेणेश्वरस्य सिद्धिस्तु श्रुतिस्मृतिषु सर्वसम्मता-अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो मध्य आत्मनि तिष्ठति ।ईशानो भूतभव्यस्य...'' (सांख्य०३. ५६, ५७ विज्ञानभिक्षुः) अत्र-आत्मनि विराजमानः पुरुषः सर्वज्ञः सर्वकर्ता सान्निध्यतः श्रुतिस्मृतिसम्मतः ।सर्वज्ञ एवमीश्वरः स्वीकृतोऽथ च सन्निधानात् सर्वकर्ताऽपि स्वीकृतस्ताभ्याम् ।तथाभूत ईश्वरस्तु खल्वत्रापि पञ्चमाध्याये स्वीकार्य एव नह्यस्वीकारेण भवितव्यम् ।अथ यत्तत्र भाष्ये प्रकृतिलयत्वमादिपुरुषत्वमिति विशेषणं तु ताभ्यां स्वकल्पनया हि दत्तं न तु सूत्रकृता, सूत्रशैल्या तु स एवेश्वरो यः परम्परया स्वीक्रियते तदेतत्पश्यन्तु खल्वस्मद्भाष्ये विपश्चितः । अतस्ताभ्यामीश्वरस्य खण्डनपरमर्थविधानमत्र पञ्चमाध्यायेऽयुक्तमेव, भेदस्तु खल्वियान् यत् पूर्वं तु नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावस्य पुरुषस्य सन्निधिमात्रात् कर्तृत्वं सूचितं न स्वतः । अत्र तस्यैव नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावस्य

ज्ञानमयं तपः जो सर्वज्ञ सर्ववित है वह ज्ञानमय है **सन्निधिमात्रेणेश्वरस्य सिद्धिस्तु श्रुतिस्मृतिषु सर्वसम्मता]** सन्निधि मात्र से ईश्वर को श्रुति-स्मृतियों में सब जगह स्वीकार किया है - **[अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो मध्य आत्मनि तिष्ठति ।ईशानो भूतभव्यस्य...'']** जो परमात्मा अंगुष्ठमात्र है और वह जीवात्मा के अंदर रहता है तथा वह भूत भविष्यत सबका स्वामी है **[(सांख्य० ३.५६,५७ विज्ञानभिक्षुः) अत्र-आत्मनि विराजमानः पुरुषः सर्वज्ञः सर्वकर्ता सान्निध्यतः श्रुतिस्मृतिसम्मतः]** इन वाक्यों में विज्ञानभिक्षु ने स्वीकार किया है -वह जीवात्मा के अंदर विराजमान है, सर्वज्ञ है, सर्वकर्त्ता है, प्रकृति की सन्निधि से सृष्टि की रचना कर्ता है ऐसा श्रुति-स्मृति सम्मत है। **[सर्वज्ञ एवमीश्वरः स्वीकृतोऽथ च सन्निधानात् सर्वकर्ताऽपि स्वीकृतस्ताभ्याम्]** उन दोनों के द्वारा ईश्वर को स्वीकार किया गया है कि वह सर्वज्ञ है, सर्वकर्ता है। **[तथाभूत ईश्वरस्तु खल्वत्रापि पञ्चमाध्याये स्वीकार्य एव नह्यस्वीकारेण भवितव्यम्]** जैसे पहले (तीसरे अध्याय) में ईश्वर को स्वीकार किया था वैसे ही यहाँ पांचवे अध्याय में ईश्वर को स्वीकार करना था। **[अथ यत्तत्र भाष्ये प्रकृतिलयत्वमादिपुरुषत्वमिति विशेषणं तु ताभ्यां स्वकल्पनया हि दत्तं न तु सूत्रकृता]** और जो यहाँ वहाँ ईश्वर को प्रकृतिलय योग्यता वाला है और वह आदिपुरुष है ऐसा जो विशेषण दिया इन्होंने, ये विशेषण इन्होंने अपनी कल्पना से दिया है सूत्रकार ने ईश्वर को ऐसा नहीं कहा, **[सूत्रशैल्या तु स एवेश्वरो यः परम्परया स्वीक्रियते तदेतत्पश्यन्त खल्वस्मद्भाष्ये विपश्चितः]** सूत्र शैली से तो वही ईश्वर है जो परंपरा से स्वीकार किया जाता है, (सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, अजन्मा, निर्विकार) विद्वान लोग इस बात को देखें हमारे भाष्य में। **[अतस्ताभ्यामीश्वरस्य खण्डनपरमर्थविधानमत्र पञ्चमाध्यायेऽयुक्तमेव]** इसलिए उन दोनों के द्वारा जो खंडन परख अर्थ किया गया है पांचवे अध्याय में वो ठीक नहीं है गलत है, **[भेदस्तु खल्वियान् यत् पूर्वं तु नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावस्य पुरुषस्य सन्निधिमात्रात् कर्तृत्वं सूचितं न स्वतः]** भेद सिर्फ इतना है कि पहले तो परमात्मा को सृष्टि कर्ता स्वीकार किया गया, वह इस आधार पर किया कि वह नित्य शुद्ध-बुद्ध -मुक्त-स्वभाववाला है उसका अपना कोई स्वार्थ न होते हुए भी क्योंकि प्रकृति के निकट है और सृष्टि बनाने में समर्थ है। **[अत्र तस्यैव नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावस्य पुरुषविशेषस्येश्वरस्य जीवेभ्यः कर्मापेक्षं फलप्रदातृत्वं न स्वतः, इति प्रतिपाद्यते]** और यहाँ पांचवे अध्याय में ईश्वर के संदर्भ में कहा गया कि परमात्मा नित्य-शुद्ध -बुद्ध-मुक्त स्वभाववाला होते हुए भी यहाँ पुरुष विशेष ईश्वर का जो फल प्रदातृत्व है वो

पुरुषविशेषस्येश्वरस्य जीवेभ्यः कर्मापेक्षं फलप्रदातृत्वं न स्वतः, इति प्रतिपाद्यते । फलप्रदाने स ईश्वरो न सर्वथा स्वतन्त्रः किन्तु कर्मापेक्षः फलप्रदाता स इत्येव लक्ष्यमत्र । अथेदानीं सूत्राण्यर्थाप्यन्तेऽस्माभिः ।

मंगलाचरणं शिष्टाचारात् फलदर्शनात् श्रुतितश्चेति ।।१ ।।

(मंगलाचरण्) पूर्वानन्तराध्यायस्यान्तिमसूत्रे ''न भूतियोगे कृतकृत्यता'' विभूतियोगे सिद्धियोगे योगप्रतिपादितसाधनैः सिद्धिप्राप्तौ कृतकृत्यता नेत्युक्तं तद्विषयेऽत्रानुविधीयते यत्तत्र योगसाधनेषु खल्वपि यन्मंगलाचरणं मंगलानां सर्वप्राणिमंगलकारिणामहिंसासत्यादीनां कर्मणामाचरणमनुष्ठानं स्वात्मीकरणं तु नितान्तमावश्यकं मुमुक्षुणा विवेकिनाऽपि यतस्तदनुष्ठानाद् भवति हि कृतकृत्यता नात्र सन्देहः, तच्चेदं वृत्तम् (शिष्टाचारात् फलदर्शनात्-श्रुतितः-च-इति) शिष्टाचारात्-शिष्टानामाचरणात्, फलदर्शनात्

जीवात्मा के कर्मों के आधार पर देता है, स्वतः नहीं। [**फलप्रदाने स ईश्वरो न सर्वथा स्वतन्त्रः किन्तु कर्मापेक्षः फलप्रदाता स इत्येव लक्ष्यमत्र**] फल देने में ईश्वर सर्वथा स्वतंत्र नहीं है, किन्तु कर्मों के आधार पर फल प्रदाता है, यहाँ इतना लक्ष्य मात्र है। [**अथेदानीं सूत्राण्यर्थाप्यन्तेऽस्माभिः**] इतनी भूमिका बनाकर के अब हमारे द्वारा सूत्रों के अर्थ किए जाएंगे।

मंगलाचरणं शिष्टाचारात् फलदर्शनात् श्रुतितश्चेति ।।१ ।।

सूत्रार्थ= मंगल कर्मों का आचरण करना चाहिए, क्यों?- उत्तम बुद्धिमान लोगों के द्वारा आचरण किए जाने से, शास्त्रों में फल का देखे जाने से, श्रुति में विधान होने से।

[**(मंगलाचरण्) पूर्वानन्तराध्यायस्यान्तिमसूत्रे ''न भूतियोगे कृतकृत्यता'' विभूतियोगे सिद्धियोगे योगप्रतिपादितसाधनैः सिद्धिप्राप्तौ कृतकृत्यता नेत्युक्तं**] अभी पूर्व अध्याय के अंतिम सूत्र में ''बहुत सारी सिद्धियाँ प्राप्त करने पर भी कृतकृत्यता नहीं मानी जाती'' [**तद्विषयेऽत्रानुविधीयते**] उस विषय में यहाँ और बताया जाता है [**यत्तत्र योगसाधनेषु खल्वपि यन्मंगलाचरणं मंगलानां सर्वप्राणिमंगलकारिणामहिंसासत्यादीनां कर्मणामाचरणमनुष्ठानं स्वात्मीकरणं तु नितान्तमावश्यकं मुमुक्षुणा विवेकिनाऽपि यतस्तदनुष्ठानाद् भवति हि कृतकृत्यता नात्र सन्देहः**] योग साधनों में जो भी मंगलाचरण है, सभी प्राणियों का जो मंगलकारी अहिंसा का पालन सत्य का पालन आदि जो यम-नियम हैं इनका अनुष्ठान मुमुक्षु को नितांत आवश्यक है, अवश्य ही करना चाहिए, यम-नियमों का पालन करने से ही विवेकी को सफलता मिलती है इसमें कोई संदेह नहीं है, [**तच्चेदं वृत्तम् (शिष्टाचारात् फलदर्शनात्-श्रुतितः-च-इति) शिष्टाचारात्-शिष्टानामाचरणात्**] इस बात को कहने के तीन हेतु है- पूर्वज जो सफल, योगी, साधक, चरित्रवान व्यक्ति थे उनके जीवन में ये (यमों के पालन का) शिष्टाचार दिखता था, **फलदर्शनात् तत्फलप्रतिपादनात्** शास्त्रों में इन कर्मों का फल देखे जाने से, **श्रुतितः श्रुतिविधानाच्चेति हेतुत्रयात् सिध्यति** तीसरा श्रुतियों का विधान है अहिंसा आदि का पालन करना चाहिए। [**तत्र शिष्टाचारः-शिष्टानामाचारः**] इन तीन हेतुओं में पहले शिष्टाचार है- शिष्ट व्यक्तियों का आचरण, [**सन्ति हि ''शिष्टाः खलु विगतमत्सरा निरहंकाराः कुम्भीधान्या अलोलुपा दम्भदर्पलोभमोहक्रोधविवर्जिताः ''(बौधायनधर्मसू० १.१.५)**] शिष्टों के विषय में कहा वे विगतमत्सर होते हैं (मत्सर कहते हैं जलन को,वो लोग किसी से जलने वाले नहीं होते)

तत्फलप्रतिपादनात्, श्रुतितः श्रुतिविधानाच्चेति हेतुत्रयात् सिध्यति । तत्र शिष्टाचारः-शिष्टानामाचारः, सन्ति हि''शिष्टाः खलु विगतमत्सरा निरहङ्काराः कुम्भीधान्या अलोलुपा दम्भदर्पलोभमोहक्रोधविवर्जिताः'' (बौधायनधर्मसू० १.१.५) तैः शिष्टैराचरितत्वात् सर्वैरपि शिष्टैर्महात्मभिर्ऋषिभिराचरितत्वात् । फलदर्शनात् तथाभूतानामहिंसादिमंगलाचाराणां तथैव योगदर्शने फलं प्रदर्श्यते तस्मात् । तद्यथा ''अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः, सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्, अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम्, ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः, अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथन्तासम्बोधः, शौचात्स्वांगजुगुप्सा परैरसंसर्गः-सत्त्वशुद्धिसौमनस्यैकाग्र्येन्द्रियजयात्मदर्शनयोग्यत्वानि च, सन्तोषादनुत्तमः सुखलाभः, कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः, स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोगः, समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात्'' (योग०

और वह अहंकारी नहीं होते, एक मटका अनाज रखते हैं अर्थात् अन्न आदि का अधिक संग्रह नहीं करते। लोभी प्रकृति के नहीं होते, दम्भ= नाटक दिखावा आदि नहीं करते, दर्प= विद्या का अभिमान नहीं करते, लोभ=वस्तु धन आदि का लोभ नहीं करते, मोह= अविद्या से रहित रहते हैं, क्रोध= लड़ाई-झगड़ा करने वाले नहीं होते। ऐसे शिष्ट जन अहिंसा का पालन करते देखे जाते हैं, इसलिए हमको भी उनका अनुकरण करना चाहिए । **तैः शिष्टैराचरितत्वात् सर्वैरपि शिष्टैर्महात्मभिर्ऋषिभिराचरितत्वात्]** इन शिष्टों के द्वारा आचरण किया गया है, सभी शिष्टों, महात्माओं, ऋषियों के द्वारा आचरण किया गया है। **[फलदर्शनात् तथाभूतानामहिंसादिमंगलाचाराणां तथैव योगदर्शने फलं प्रदर्श्यते तस्मात्]** फल दर्शन होने से। उस प्रकार के अहिंसा आदि मगलाचरणों का उस क्रम से योगदर्शन में फल दिखलाया गया है इसलिए हमको फल की प्राप्ति के लिए इन यमों का पालन करना चाहिए। **[तद्यथा ''अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः,]** अहिंसा का पालन करने पर जो व्यक्ति अहिंसक के पास आएगा उसके उपदेश सुनेगा उस पर श्रद्धा रखेगा, तो उसका भी वैरत्याग हो जाएगा द्वेष को छोड़ देगा **[सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्]** जब जीवन में सत्य की प्रतिष्ठा हो जाती है तब उसकी सब क्रियाए सफल हो जाती हैं, **[अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम्]** अस्तेय का पालन करने से सब रत्नों (उत्तम-उत्तम पदार्थ) की प्राप्ति होती है, **[ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः]** ब्रह्मचर्य का पालन करने पर शक्ति (शारीरिक बौद्धिक बल)की प्राप्ति होती है, **[अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथन्तासम्बोधः अपरिग्रह]** की स्थिरता होने पर जन्म-मरण, आत्म-शरीर इन बातों को जानने की इच्छा तीव्र हो जाती है , **[शौचात्स्वांगजुगुप्सा परैरसंसर्गः-सत्त्वशुद्धिसौमनस्यैकाग्र्येन्द्रियजयात्मदर्शनयोग्यत्वानि च]** जब व्यक्ति आंतरिक शुद्धि करता है तो उससे अंतःकरण की शुद्धि हो जाती है उसके शुद्ध होने से मन प्रसन्न हो जाता है मन के प्रसन्न होने से एकाग्रता बढ़ती है तो इंद्रियों पर विजय प्राप्त होती है जिससे आत्मा परमात्मा को देखने की योग्यता बढ़ती है ये शौच का पालन करने का लाभ है, **[सन्तोषादनुत्तमः सुखलाभः]** संतोष करने से सुख लाभ होता है, **[कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः]** तप करने से अशुद्धि का क्षय होता है, शरीर मन इंद्रियों में जो कमजोरी है वह दूर हो जाती है जिससे इन सब में बल आ जाता है, **[स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोगः]** स्वाध्याय करने से इष्ट देव का संप्रयोग उसका ज्ञान होता है, **[समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात्'']** ईश्वर प्रणिधान से समाधि की सिद्धि होती है। ये यम-नियमों के मंगल आचरणों के लाभ बताए **[(योग० २.३५-४५) श्रुतितःश्रुतिविधानात् खल्वपि** श्रुतियों में विधान किया गया है - **''मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्। मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे'']**

२.३५-४५) श्रुतितःश्रुतिविधानात् खल्वपि - ''मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् । मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे''(यजु०३६.१८)''तयोर्यत्सत्यं यतरदृजीय-स्तदित्सोमोऽवति हन्त्यासन्त'' (ऋ० ७.१०४.१२) ''न स्तेयमद्मि'' (अथर्व० १४.१.५७) ''ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत'' (अथर्व० ११.५.१७) ''मा गृधः कस्यस्विद् धनम्'' (यजु० ४०.१) इति हेतुत्रयात् तन्मंगलाचरणं तु खल्वनिवार्यत्वेनानुष्ठेयम् ।।१।।

भवतु मंगलाचरणं मंगलानामहिंसादिकर्मणामाचरणं शिष्टाचारस्तथा च तन्मंगलानामाचरणं श्रुतिविहितं च परन्तु फलप्रदर्शनाद् यत्फलप्रदर्शनमुक्तं तन्न युक्तं नहि मंगलाचरणरूपाहिंसादिकर्माधीनं फलं सम्पद्यते किन्तु फलं त्वीश्वराधीनमेव तस्याधिष्ठातृत्वे हि जीवात्मानः फलं भुञ्जते स हि फलप्रदाता

सभी प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखें, मैं सभी प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखूँ [(**यजु० ३६.१८**) **''तयोर्यत्सत्यं यतरदृजीय-स्तदित्सोमोऽवति हन्त्यासन्''(ऋ० ७.१०४.१२)**] संसार में दो वस्तु हैं एक सत्य दूसरी असत्य। उन दोनों में से जो सत्य हो वह सरल है, शांति सुख देने वाला राजा सोम निश्चित रुप से सत्य को स्वीकार करने वाली की रक्षा करता है और झूठ बोलने वाले को मारता है [**''न स्तेयमद्मि''(अथर्व० १४.१.५७)**]मैं चोरी करके नहीं खाऊँगा [**''ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत''(अथर्व० ११.५.१७)**] बह्मचर्य की तपस्या करके देवों ने मृत्यु को भी मार डाला [**''मा गृधः कस्यस्विद् धनम्'' (यजु० ४०.१)**] लोभ मत करो यह धन तो ईश्वर का है [**इति हेतुत्रयात् तन्मंगलाचरणं तु खल्वनिवार्यत्वेनानुष्ठेयम्**] इस तीन प्रकार के हेतुओं से मंगलचारण का पालन निश्चित रूप से करना चाहिए ।।१।।

[**भवतु मंगलाचरणं मंगलानामहिंसादिकर्मणामाचरणं शिष्टाचारस्तथा च तन्मंगलानामाचरणं श्रुतिविहितं च**] ठीक है मंगलाचरण अर्थात् मंगल= जो अच्छे-अच्छे कर्म हैं अहिंसादि। इनको हम शिष्टाचार नाम से मान लेते हैं और जो मंगल कर्मों का आचरण है वह श्रुति में भी बताया गया । (परंतु तीन हेतुओं में से एक हेतु पर यहाँ चर्चा होती है) [**परन्तु फलप्रदर्शनाद् यत्फलप्रदर्शनमुक्तं तन्न युक्तं**] परंतु जो आपने फलप्रदर्शन कहा वह युक्त नहीं है [**नहि मंगलाचरणरूपाहिंसादिकर्माधीनं फलं सम्पद्यते**] जो कर्मों के फल के संदर्भ में कहा कि अहिंसादि मंगलाचरणरूपी कर्म करने से फल मिलता है। यह ठीक नहीं लगा [**किन्तु फलं त्वीश्वराधीनमेव**] किन्तु फल तो ईश्वर के अधीन है ईश्वर की मर्जी से फल मिलता है [**तस्याधिष्ठातृत्वे हि जीवात्मानः फलं भुञ्जते स हि फलप्रदाता**] ईश्वर के अधिकार से ही जीवात्माएँ अपना अपना फल भोगती हैं। [**उक्तं च ''यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम्।''(ऋ० १०.१२५.५)**] वेद में ऐसा कहा भी है- जिस जिसकों मै चाहता हूँ उस उसको तेजस्वी बना देता हूँ, उसको ब्रह्मा बना देता ऋषि बना देता हूँ [**''इन्द्रो विश्वस्य राजति शन्नोऽस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे।''(यजु० ३६.८)**] और प्रमाण दिया-इंद्र सारे जगत का राजा है, हम प्रार्थना करते हैं- हे ईश्वर! आप दो पैर और चार पैरों वालों की रक्षा करो सुख दीजिए [**''यो विदधाति कामान् तत्कारणम्''(श्वेता० ६.१३)**] जो सबकी कामनाए पूर्ण करता है वही इस जगत का कारण है [**अत्रोच्यते -**] इस पर सिद्धांती उत्तर देते हैं-

। उक्तं च ''यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम्।'' (ऋ० १०.१२५.५) ''इन्द्रो विश्वस्य राजति शन्नोऽस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ।'' (यजु०३६.८) ''यो विदधाति कामान् तत्कारणम्'' (श्वेता० ६.१३) अत्रोच्यते -

नेश्वराधिष्ठिते फलसम्पत्तिः * कर्मणा तत्सिद्धेः ।।२।।

(ईश्वराधिष्ठिते फलसम्पत्तिः-न) ईश्वरस्याधिष्ठितम्, अधिष्ठितमधिष्ठानम् ''नपुंसके भावे क्तः'' (अष्टा०३.३.११४) केवलमीश्वराधिष्ठाने फलसम्पत्तिर्न भवति । यतः (कर्मणा तत्सिद्धेः) कर्मणा हीश्वराधिष्ठानसिद्धेः, जीवात्मनां कर्मापेक्षं हि खल्वीश्वराधिष्ठानस्य सिद्धिरस्ति न कर्मणा विना । उक्तं यथा ''यदंग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि'' (ऋ० १.१.६) दाशुषे दत्तवते कर्मसूचना, तथा ''एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा कर्माध्यक्षः (श्वेताश्वतर० ६.११) स्पष्टमुच्यते हि स ईश्वरः कर्माध्यक्षः कर्मानुसारेण फलप्रदाता । अन्यच्च ''पुण्यः पुण्येन कर्मणा भवति पापः पापेन'' (बृह० ४.४.२) तस्मान्नेश्वरः कर्मानपेक्षः फलप्रदाता ।।२।।

नेश्वराधिष्ठिते फलसम्पत्तिः * कर्मणा तत्सिद्धेः ।।२।।

सूत्रार्थ= केवल ईश्वर के अधिकार में फल प्रदान करना नहीं है, ईश्वर में जीवों के कर्मों के अनुसार ही फल दातृत्व सिद्ध होने से।

[**(ईश्वराधिष्ठिते फलसम्पत्तिः-न) ईश्वरस्याधिष्ठितम्, अधिष्ठितमधिष्ठानम् ''नपुंसके भावे क्तः''**] अधिष्ठितम शब्द में ''क्त'' प्रत्यय है किन्तु यहाँ अर्थ भाव वाचक है [**(अष्टा० ३.३.११४) केवलमीश्वराधिष्ठाने फलसम्पत्तिर्न भवति**] केवल ईश्वर के अधीन फल संपत्ति=प्राप्ति नहीं है। [**यतः (कर्मणा तत्सिद्धेः) कर्मणा हीश्वराधिष्ठानसिद्धेः**] क्योंकि कर्म के द्वारा ही ईश्वर को फल देने का अधिकार होता है, [**जीवात्मनां कर्मापेक्षं हि खल्वीश्वराधिष्ठानस्य सिद्धिरस्ति न कर्मणा विना**] जीवात्मा के कर्मों की अपेक्षा= आधार पर ही ईश्वर को फल देने का अधिकार है, जीवों के कर्मों के बिना नहीं। [**उक्तं यथा ''यदंग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि''(ऋ० १.१.६)**] जैसा कि वेद में कहा भी है-हे प्रिय परमेश्वर! आप उत्तम कर्म करने वाले यज्ञादि दान देने वाले का कल्याण करेंगे ही (जो कर्म करेगा उसको फल देगा ईश्वर) [**दाशुषे दत्तवते कर्मसूचना**] दाशुषे का अर्थ है दान देने वाला। इस शब्द में कर्म सूचना है (कि कर्म के आधार पर फल मिल रहा है), [**तथा ''एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा कर्माध्यक्षः स्पष्टमुच्यते हि स ईश्वरः कर्माध्यक्षः कर्मानुसारेण फलप्रदाता**] और कहा है- वह देव एक ही है जो सर्वभूतों में बसा है सर्वव्यापी है सर्वान्तर्यामी है सभी के कर्मों का अध्यक्ष है तथा कर्मों के अनुसार फल देने वाला है । [**अन्यच्च ''पुण्यः पुण्येन कर्मणा भवति पापः पापेन''(बृह० ४.४.२)**] अन्यत्र भी कहा है- जो पुण्य कर्म करता है वह पुण्यात्मा हो जाता है और जो पाप कर्म करता है, वह पापात्मा कहलाता है [**तस्मान्नेश्वरः कर्मानपेक्षः फलप्रदाता**] इसलिए ईश्वर जो फल प्रदाता है वह फल अनपेक्ष नहीं है (कर्म को छोड़कर फल नहीं देता) ।।२।।

पूर्वपक्षत्वेनोच्यते - तीसरे सूत्र में पूर्वपक्षी कहता है-

पूर्वपक्षत्वेनोच्यते -

स्वोपकारादधिष्ठानं लोकवत् ।।३।।

(स्वोपकारात्-अधिष्ठानं लोकवत्) ईश्वरः स्वामी, स्वामी च स्वानां भवति तर्हि तस्येश्वरस्य ये सन्ति स्वरूपा जीवात्मानस्तेषामुपकारादुपकारकरणहेतोस्तस्येश्वरस्याधिष्ठातृत्वं भवतु लोकवत्, यथा लोके गृहपतेः परिवारस्वामिनः स्वान् भार्यापुत्रादीनुपकर्तुमधिष्ठातृत्वं भवति कर्मणा विनाऽपि तद्वदीश्वरस्यापि कर्मणा विनाऽधिष्ठातृत्वमस्तु। इदमपि सूत्रमनिरुद्धवृत्तौ विज्ञानभिक्षुभाष्ये चान्यथा व्याख्यातमत्र खलु पूर्वसूत्रस्थकर्मणा शब्दमाश्रित्य पूर्वपक्षेण भवितव्यम् ।।३।।

तत्रैव पूर्वपक्षे पुनरुच्यते -

लौकिकेश्वरवदितरथा ।।४।।

स्वोपकारादधिष्ठानं लोकवत् ।।३।।

सूत्रार्थ= ईश्वर सब जीवों का स्वामी है, और जो स्वामी होता है, वह बिना कार्य कराए अपने स्वजनों का उपकार करता है । गृहपति के समान। वैसे ही ईश्वर भी विना कर्म के जीवात्माओं को फल देने वाला हो जावे।

[(स्वोपकारात्-अधिष्ठानं लोकवत्) ईश्वरः स्वामी, स्वामी च स्वानां भवति] ईश्वर स्वामी है रक्षक है, अधिष्ठाता है, और स्वामी किसी स्व (अपने) का होता है **[तर्हि तस्येश्वरस्य ये सन्ति स्वरूपा जीवात्मानस्तेषामुपकारादुपकारकरणहेतोस्तस्येश्वरस्याधिष्ठातृत्वं भवतु लोकवत्]** इसलिए उस ईश्वर के जो स्वरूप है (वह उसके अपने है ईश्वर स्वामी है और जीवात्माएँ उसका स्व है) उन स्व रूपी जीवात्माओं के उपकार के लिए, उनका उपकार करने के कारण से ईश्वर का अधिष्ठातित्व हो जावे, जैसे संसार में देखा जाता है, **[यथा लोके गृहपतेः परिवारस्वामिनः स्वान् भार्यापुत्रादीनुपकर्तुमधिष्ठातृत्वं भवति]** जैसे संसार में परिवार के स्वामी का पत्नी-पुत्र आदि का वह अधिकारी होता है और वह अपने परिवारजनों का उपकार भी करता है **[कर्मणा विनाऽपि तद्वदीश्वरस्यापि कर्मणा विनाऽधिष्ठातृत्वमस्तु]** जैसे कर्मों के विना गृहपति सबका अधिष्ठाता होता है और सबको फल देता है, वैसे ही कर्मों के बिना ईश्वर भी सबका अधिष्ठाता हो जाए। **[इदमपि सूत्रमनिरुद्धवृत्तौ विज्ञानभिक्षुभाष्ये चान्यथा व्याख्यातमत्र]** यह सूत्र भी अनिरुद्धवृत्ति और विज्ञानभिक्षु भाष्य में ठीक से व्याख्यात नहीं हुआ **[खलु पूर्वसूत्रस्थकर्मणा शब्दमाश्रित्य पूर्वपक्षेण भवितव्यम्]** यहाँ पूर्वसूत्र में विद्यमान जो कर्मणा शब्द है, उसके आधार पर ही यहाँ पूर्वपक्ष होना चाहिए ।।३।।

तत्रैव पूर्वपक्षे पुनरुच्यते - इसी विषय में पूर्वपक्षी और कहता है-

लौकिकेश्वरवदितरथा ।।४।।

(इतरथा) अन्यथा यदि स ईश्वरः स्वान् भार्यापुत्रादीन् नोपकुर्वीत तर्हि (लौकिकेश्वरवत्) लौकिकानां पदार्थानामीश्वरः स्वामी भूमिस्वामी धनस्वामी यथा भवति तथा स्यात्, तिष्ठतु तथाभूत ईश्वरः कृपणः किं तेनेश्वरेण यद्वा किं तस्यैश्वर्येण ।।४।।

पुनरपि तत्रैव -

पारिभाषिको वा ।।५।।

(वा) अथवा स निरुपकारकः खल्वीश्वरो भवतु पारिभाषिकः कथनमात्रो वाचनिको नाममात्रो वा काष्ठधेनुवद् यो नोपकुर्वीत। परिभाषा-निन्दा, तद्भाक्-निन्दाभागुपहासभाक्-स्यात् ।।५।।

अथ समाधत्ते -

न रागादृते तत्सिद्धिः प्रतिनियतकारणत्वात् ।।६।।

(तत्सिद्धिः-रागात्-ऋते न) कर्माण्यनपेक्ष्योपकारसाधनं रागमन्तरा न सम्भवति

सूत्रार्थ= यदि ईश्वर बिना कर्म किए जीवों को फल नहीं देता तो वह लौकिक सेठ के समान कंजूस होगा।

[**(इतरथा) अन्यथा यदि स ईश्वरः स्वान् भार्यापुत्रादीन् नोपकुर्वीत तर्हि**] यदि वह ईश्वर अपने पत्नी बच्चों को न खिलाए पिलाए उपकार न करे [**(लौकिकेश्वरवत्) लौकिकानां पदार्थानामीश्वरः स्वामी भूमिस्वामी धनस्वामी यथा भवति तथा स्यात्**] (यदि कोई व्यक्ति पत्नी बच्चों का पालन न करे तो उसे अच्छा नहीं मानते) संसार में अनेक पदार्थों का स्वामी भूमि का स्वामी धन का स्वामी होता है यदि वह इनको अपने स्वजनों को न देवे तो उसका स्वामी होने का क्या अर्थ है, [**तिष्ठतु तथाभूत ईश्वरः कृपणः किं तेनेश्वरेण यद्वा किं तस्यैश्वर्येण**] ऐसा कंजूस ईश्वर से क्या लाभ? उससे हमें क्या लाभ? वह कैसा ईश्वर और फिर कैसा उसका ऐश्वर्य?।।४।।

पुनरपि तत्रैव - और इसी विषय में कहता है पूर्वपक्षी-

पारिभाषिको वा ।।५।।

सूत्रार्थ= बिना उपकार वाला ईश्वर कथन मात्र का होगा, लकड़ी की गाय के समान।

[**(वा) अथवा स निरुपकारकः खल्वीश्वरो भवतु पारिभाषिकः कथनमात्रो वाचनिको नाममात्रो वा काष्ठधेनुवद् यो नोपकुर्वीत**] अथवा ऐसा ईश्वर जो हमारा उपकार नहीं करेगा, वह तो पारिभाषिक मात्र होगा, नाम मात्र का कहने मात्र का होगा जैसे लकड़ी की गाय (लकड़ी की गाय से कोई लाभ नहीं ऐसे ही ईश्वर से क्या लाभ)। **परिभाषा-निन्दा, तद्भाक्-निन्दाभागुपहासभाक्-स्यात्** यहाँ परिभाषा शब्द से तात्पर्य है निंदा मज़ाक उड़ाना।।५।।

अथ समाधत्ते - अब समाधान करते हैं =सिद्धांती कहता है-

न रागादृते तत्सिद्धिः प्रतिनियतकारणत्वात् ।।६।।

(प्रतिनियतकारणत्वात्) कर्मानपेक्षितोपकारे रागः प्रतिनियतकारणमनिवार्यकारणमस्ति तस्मात् कर्मापेक्षं तस्येश्वरत्वम् ।।६।।

पुनश्च -

तद्योगेऽपि न नित्यमुक्तः ।।७।।

(अपि तद्योगे) अपिः सम्भावनायाम् । सम्भवे तद्योगे रागयोगे, यदि तस्येश्वरस्य रागेण सह योगः सम्बन्धः सम्भवो यद्वा तस्मिन्नीश्वरे रागस्य योगः, सम्भवति तर्हि (नित्यमुक्तः-न) स नित्यमुक्तो न स्यात्, प्रतिपाद्यते हि स खल्वीश्वरो नित्यमुक्तः ''स तु सदैव मुक्तः सदैवेश्वरः'' (योग० १.२४ व्यासः) उक्तं हि पूर्वमत्रापि ''नित्यमुक्तत्वम्'' (सांख्य० १.१६२) ।।७।।

पक्षान्तरं निराकरोति -

प्रधानशक्तियोगाच्चेत् संगापत्तिः ।।८।।

सूत्रार्थ= राग के बिना मुफ्त में सुख देने की सिद्धि नहीं हो सकती, राग उसमें नियत=अनिवार्य करना होने से।

[**(तत्सिद्धिः-रागात्-ऋते न) कर्माण्यनपेक्ष्योपकारसाधनं रागमन्तरा न सम्भवति**] पूर्वपक्षी ने अपनी बात को बल, युक्ति, तर्क पूर्वक प्रस्तुत किया। अब सिद्धांती पक्ष रखते हैं-जो कर्मों के बिना ही किसी को सुख देना होता है यह राग के बिना संभव नहीं [**(प्रतिनियतकारणत्वात्) कर्मानपेक्षितोपकारे रागः प्रतिनियतकारणमनिवार्यकारणमस्ति तस्मात् कर्मापेक्षं तस्येश्वरत्वम्**] बिना कर्म किए फल देना उपकार करना इसमें राग नियत कारण है, इसलिए ईश्वर जो कर्मफल प्रदाता है, वह कर्म के आधार पर है, ईश्वर में राग नहीं है ।।६।।

पुनश्च - सिद्धांती फिर कहता है-

तद्योगेऽपि न नित्यमुक्तः ।।७।।

सूत्रार्थ= ईश्वर में राग का सम्बंध मानने पर वह सर्वथा मुक्त नहीं रह पाएगा। इसलिए राग नहीं मान सकते।

[**(अपि तद्योगे) अपिः सम्भावनायाम्**] सूत्र में ''अपि'' शब्द है, ये संभावना अर्थ में नहीं अपितु संभव अर्थ में है। [**सम्भवे तद्योगे रागयोगे, यदि तस्येश्वरस्य रागेण सह योगः सम्बन्धः सम्भवो यद्वा तस्मिन्नीश्वरे रागस्य योगः, सम्भवति तर्हि (नित्यमुक्तः-न) स नित्यमुक्तो न स्यात्**] यदि ईश्वर में राग का योग मान लिया जाए, तो उस ईश्वर का राग के साथ सम्बंध हो जाएगा, राग का सम्बंध मान लेने पर वह नित्यमुक्त नहीं रह पाएगा, [**प्रतिपाद्यते हि स खल्वीश्वरो नित्यमुक्तः**] जबकि शास्त्रों में उसे नित्यमुक्त बताया है [**''स तु सदैव मुक्तः सदैवेश्वरः''(योग० १.२४ व्यासः)**] योगदर्शन के व्यासभाष्य में कहा- ईश्वर सदा से ही नित्यमुक्त है [**उक्तं हि पूर्वमत्रापि ''नित्यमुक्तत्वम्''(सांख्य० १.१६२)**] और इस दर्शन में भी

(प्रधानशक्तियोगात्-चेत्) प्रधानस्याव्यक्तस्य प्रकृत्याख्यस्य या शक्तिर्भोगप्रदानप्रवृत्तिस्तया सह सम्बन्धत्वात् तया बाध्यमानत्वादीश्वरस्य स्वतन्त्रं कर्मनिरपेक्षमधिष्ठातृत्वं फलप्रदाने, इति चेत् कल्प्येत तर्हि (संगापत्तिः) प्रधानस्य प्रवृत्तिशक्त्या सह स सक्तो भविष्यतीति संगापत्तिः, असंगाश्च स उच्यते "स यत् तत्र किञ्चित् पश्यत्यनन्वागतस्तेन भवति, असंगो ह्ययं पुरुषः" (बृह० ४.३.५) ।।८।।

पुनरपरपक्षं निराकरोति -

सत्तामात्राच्चेत् सर्वैश्वर्यम् ।।९।।

(सत्तामात्रात्-चेत्-सर्वैश्वर्यम्) अस्ति हि प्रकृतितो भिन्ना चेतनसत्ता तस्येश्वरस्य यद्वा प्रकृतिभिन्ना चेतना हीश्वरसत्ता, सत्तामात्रात्सत्तासद्भावात्तस्याः सत्तायाः स्वधर्मवत्त्वेन भवितव्यमेव तच्च स्वधर्मवत्त्वं कर्मनिरपेक्षं स्वतन्त्रं फलप्रदातृत्वमिति चेदुच्येत तर्हि सर्वेषां प्रकृतितो भिन्नानां सत्तावतां चेतनानां

पहले अध्याय में कहा गया- ईश्वर सदा नित्यमुक्त है ।।७।।

पक्षान्तरं निराकरोति - अब अन्य पक्ष का खंडन करता है सूत्रकार-

प्रधानशक्तियोगाच्चेत् संगापत्तिः ।।८।।

सूत्रार्थ= यदि कोई ऐसा माने कि प्रकृति की भोग देने वाली शक्ति से प्रेरित होकर ईश्वर -जीवात्माओं को बिना कर्म किए ही फल देता है तो ईश्वर में प्रकृति से प्रभावित होने (दबने) का दोष आएगा।

[(प्रधानशक्तियोगात्-चेत्) प्रधानस्याव्यक्तस्य प्रकृत्याख्यस्य या शक्तिर्भोगप्रदानप्रवृत्तिस्तथा सह सम्बन्धत्वात् तया बाध्यमानत्वादीश्वरस्य स्वतन्त्रं कर्मनिरपेक्षमधिष्ठातृत्वं फलप्रदाने] प्रधान (प्रकृति) अव्यक्त है प्रकृति नाम वाली है उसकी एक शक्ति है वह जीवात्माओं को भोग प्रदान करने वाली है, इस भोग देने वाली प्रवृत्ति से परमात्मा सम्बद्ध हो जाता है ऐसा पूर्वपक्षी कह रहा है। वह प्रवृत्ति ईश्वर को बाध्य करती है जिसके कारण ईश्वर प्रकृति के दबाव से जीवात्माओं को बिना कर्म किए ही फल देते रहते हैं। ऐसा पूर्वपक्ष है, **इति चेत् कल्प्येत तर्हि** यदि कोई ऐसी कल्पना करे (कि जीव के कर्म के आधार पर ईश्वर ने सृष्टि नहीं बनाई ये तो प्रकृति के दवाव के कारण बनाई) **[(संगापत्तिः) प्रधानस्य प्रवृत्तिशक्त्या सह स सक्तो भविष्यतीति संगापत्तिः]** प्रधान=प्रकृति कि प्रवृत्ति शक्ति के कारण वह= ईश्वर दब जाएगा। कमजोर माना जाएगा ईश्वर को, ऐसा मानना दोष युक्त है, **[असंगाश्च स उच्यते]** जबकि परमात्मा को असंग बताया गया है वह किसी के दवाव से दबता नहीं है **["स यत् तत्र किञ्चित् पश्यत्यनन्वागतस्तेन भवति, असंगो ह्ययं पुरुषः"(बृह० ४.३.५)]** वह जो कुछ भी देखता है उससे असम्बद्ध=असंग रहता है,अप्रभावित रहता है, क्योंकि वह असंग है सबसे अलग है किसी से दबता नहीं ।।८।।

पुनरपरपक्षं निराकरोति - फिर अगले पक्ष का खंडन करते हैं-

सत्तामात्राच्चेत् सर्वैश्वर्यम् ।।९।।

जीवात्मनामपीश्वरत्वमापततीति दोषापातो यतस्तेऽपि प्रकृतिभिन्नाश्चेतनसत्तावन्तस्ततः स्वयमेवेश्वरमनपेक्ष्य भोगं भोक्ष्यन्ते । तस्मात् कर्मनिरपेक्षमीश्वरस्य फलसम्पत्तौ नाधिष्ठातृत्वम् ।।९।।

तथाभूतस्य कर्मनिरपेक्षफलप्रदातुरीश्वरस्य -

प्रमाणाभावान्न तत्सिद्धिः ।।१०।।

(प्रमाणाभावात् तत्सिद्धिः-न) तथाभूतस्य कर्मनिरपेक्षफलप्रदातुरीश्वरस्य सिद्धिर्नास्ति प्रमाणाभावात् प्रत्यक्षप्रमाणाभावात् । न हि प्रत्यक्षं कश्चिदीश्वरो जनेश्वरः कर्मनिरपेक्षः पुरस्कारं दण्डं वा कस्मैचित् प्रयच्छति । अत्र प्रमाणशब्दात् प्रत्यक्षं प्रमाणमभिप्रेयतेऽग्रेऽनुमानशब्दप्रमाणयोः प्रतिपादनात् ।।१०।।

सूत्रार्थ=यदि ईश्वर की चेतन सत्ता मात्र से जीवों को फल मिल जाता हो और जीव कर्म न करे तब तो सब जीवों की चेतन सत्ता होने से सब जीव ईश्वर ही बन जाएंगे। और स्वयं फल भोग लेंगे।

[(सत्तामात्रात्-चेत्-सर्वैश्वर्यम्) अस्ति हि प्रकृतितो भिन्ना चेतनसत्ता तस्येश्वरस्य यद्वा प्रकृतिभिन्ना चेतना हीश्वरसत्ता] प्रकृति से एक अलग अस्तित्व है ईश्वर का अथवा प्रकृति से भिन्न ईश्वर की सत्ता अलग है, **[सत्तामात्रात्सत्तासद्भावात्तस्याः सत्तायाः स्वधर्मवत्त्वेन भवितव्यमेव तच्च स्वधर्मवत्त्वं कर्मनिरपेक्षं स्वतन्त्रं फलप्रदातृत्वमिति चेदुच्येत]** यदि ऐसा कोई कहे कि- ईश्वर और प्रकृति दो अलग अलग पदार्थ हैं उसकी अलग सत्ता मात्र मानने के लिए कोई विशेष धर्म उसका होना चाहिए, और वो धर्मवत्व क्या है? वो है -''बिना कर्मों की अपेक्षा किए स्वतंत्र रूप से फल देना'' अर्थात् सत्तामात्र से कर्मों का फल देना। ऐसा कोई कहे **[तर्हि सर्वेषां प्रकृतितो भिन्नानां सत्तावतां चेतनानां जीवात्मनामपीश्वरत्वमापततीति दोषापातो]** फिर तो सारे सत्ता वाले प्रकृति से भिन्न जीव भी तो हैं उनका अस्तित्व तो प्रकृति से भिन्न है (और सत्ता मात्र से ही फल मान लिया जाए) तो जीवों की भी सत्ता है, फिर सारे जीव ईश्वर जो जाएंगे **[यतस्तेऽपि प्रकृतिभिन्नाश्चेतनसत्तावन्तस्ततः स्वयमेवेश्वरमनपेक्ष्य भोगं भोक्ष्यन्ते]** क्योंकि वे भी प्रकृति से भिन्न चेतन सत्ता वाले हैं फिर तो ईश्वर की अनपेक्षा से स्वयं ही भोग भोग लेंगे ईश्वर की आवश्यकता ही न रहेगी। **[तस्मात् कर्मनिरपेक्षमीश्वरस्य फलसम्पत्तौ नाधिष्ठातृत्वम्]** इसलिए सार यह निकला कर्मों के आधार के बिना ही ईश्वर फल देने का अधिकारी नहीं है ।।९।।

तथाभूतस्य कर्मनिरपेक्षफलप्रदातुरीश्वरस्य - उस तरह को जो कर्म निरपेक्ष ईश्वर हो (बिना कर्म किए फल देने वाला) ऐसे ईश्वर की कोई सिद्धि ही नहीं है-

प्रमाणाभावान्न तत्सिद्धिः ।।१०।।

सूत्रार्थ=प्रत्यक्ष प्रमाण न होने से ऐसे ईश्वर की सत्ता सिद्ध नहीं होती जो बिना कर्म किए ही जीवों को फल देता हो।

सम्बन्धाभावान्नानुमानम् ।।११।।

(सम्बन्धाभावात्-अनुमानं न) सम्बन्धाभावात् कर्मनिरपेक्षफलप्रदातुरीश्वरस्य विषये नियतसम्बन्धाभावाद् व्याप्तिसम्बन्धाभावादनुमानं नास्ति ।।११।।

श्रुतिरपि प्रधानकार्यत्वस्य ।।१२।।

(प्रधानकार्यत्वस्य श्रुतिः-अपि) नेत्यनुवर्तते । प्रधानस्य कार्यपरिणयनविषयिका श्रुतिरपि न कर्मनिरपेक्षाऽपितु जीवकर्मापेक्षाऽस्ति''एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च । एको वशी निष्क्रियाणां बहूनामेकं बीजं बहुधा यः करोति'' (श्वेता० ६.११, १२) स ईश्वरः कर्माध्यक्षः सन्नेकं बीजं प्रधानं कार्यत्वेन बहुधा करोतीति स्पष्टम्, वक्ष्यति ह्यग्रे ''न धर्मापलापः प्रकृतिकार्यवैचित्र्यात्''(सांख्य० ५.२०) । अथ च कर्मनिरपेक्षस्तु

[**(प्रमाणाभावात् तत्सिद्धिः-न) तथाभूतस्य कर्मनिरपेक्षफलप्रदातुरीश्वरस्य सिद्धिर्नास्ति प्रमाणाभावात् प्रत्यक्षप्रमाणाभावात्**] उस तरह के ईश्वर की सिद्धि नहीं है जो कर्मनिरपेक्ष हो (बिना कर्म किए ही फल देता हो) इस संदर्भ में कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है। [**न हि प्रत्यक्षं कश्चिदीश्वरो जनेश्वरः कर्मनिरपेक्षः पुरस्कारं दण्डं वा कस्मैचित् प्रयच्छति**] कहीं भी ऐसा नहीं दिखता कि किसी का ईश्वर (स्वामी) बिना कर्म के ही पुरस्कार अथवा दण्ड दे रहा हो। [**अत्र प्रमाणशब्दात् प्रत्यक्षं प्रमाणमभिप्रेयतेऽग्रेऽनुमानशब्दप्रमाणयोः प्रतिपादनात्**] यहाँ इस सूत्र में प्रमाण शब्द से प्रत्यक्ष प्रमाण अभिप्रेत है, अगले सूत्र में अनुमान व शब्द प्रमाण का प्रतिपादन करेंगे ।।१०।।

सम्बन्धाभावान्नानुमानम् ।।११।।

सूत्रार्थ=व्याप्ति सम्बंध का अभाव होने से उक्त विषय में अनुमान प्रमाण भी नहीं है।

[**(सम्बन्धाभावात्-अनुमानं न) सम्बन्धाभावात् कर्मनिरपेक्षफलप्रदातुरीश्वरस्य विषये नियतसम्बन्धाभावाद् व्याप्तिसम्बन्धाभावादनुमानं नास्ति**] कर्म निरपेक्ष फल दाता ईश्वर के संबंध में निश्चित संबंध का अभाव होने से अर्थात् व्याप्ति सम्बंध का अभाव होने से इस विषय में अनुमान प्रमाण भी नहीं है ।।११।।

श्रुतिरपि प्रधानकार्यत्वस्य ।।१२।।

सूत्रार्थ= श्रुति भी प्रकृति का कार्य जगत के रूप में परिवर्तित होना जीवों के कर्मों के बिना नहीं मानती है ।

[**(प्रधानकार्यत्वस्य श्रुतिः-अपि) नेत्यनुवर्तते** ''न'' शब्द की उपर से अनुवृत्ति आ रही है। **प्रधानस्य कार्यपरिणयनविषयिका श्रुतिरपि न कर्मनिरपेक्षाऽपितु जीवकर्मापेक्षाऽस्ति**] श्रुति भी ये कह रही है कि - प्रकृति से जो जगत बनाया गया वह जीव के कर्मों के आधार पर बनाया गया। जैसे कि- [**''एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च। एको वशी निष्क्रियाणां बहूनामेकं बीजं बहुधा यः करोति''(श्वेता० ६.११, १२)**] एक देव परमात्मा

स प्रधानं तत्कार्याणि प्रति हि प्रवर्तते प्रधानस्य तत्कार्याणां च जडत्वाद् धर्माधर्मरूपकर्मणो ज्ञानाभावात् तथाभूतानां कर्माभावाच्च, तथैव वदति सा श्रुतिरपि ''निष्क्रियाणां बहूनामेकं बीजं निष्क्रियं बीजं बहुधा यः करोति'' (श्वेता० ६.१२) जीवान् प्रति तु कर्मापेक्ष एव प्रवर्तते स ईश्वरो न हि कर्मनिरपेक्षः फलं प्रयच्छति, अतएव प्रधानस्य कार्यरूपे परिणाममपि जीवकर्मापेक्षः सन्नेव करोतीत्यपि सिद्धम् । अत्रापि ''प्रमाणाभावान्न तत्सिद्धिः'' (१०) इति सूत्रात् प्रस्तुतसूत्रपर्यन्तमनिरुद्धविज्ञानभिक्षुभ्यामीश्वरखण्डनं कृतम् । महदाश्चर्यं यत् ताभ्यां पूर्वमेव प्रमाणप्रसंगे ''ईश्वरासिद्धेः'' (सांख्य० १.९२) इति सूत्रेणेश्वरस्य खण्डनं कृतमेवात्रापि तथाकरणं तयोरर्थविधानं सूत्रैनैरर्थक्यं बालप्रलपनं प्रसज्यते तदेतत्पश्यन्तु मतिमन्तः ।।१२।।

प्रधानकार्यत्वं जीवकर्मापेक्षं प्रधानस्य कार्यरूपे परिणाममीश्वरो जीवकर्मापेक्षः सन् करोतीति यच्छ्रूतितः साधितं तदेव पुनर्युक्तितोऽपि पोष्यतेऽन्यपक्षोत्थापनसमाधानाभ्याम् -

---

सब भूतों में विद्यमान है सर्वव्यापी सवा५तरात्मा है सबके कर्मों का अध्यक्ष है सब भूतों का निवास स्थान है वह सबका साक्षी है वह अकेला है तथा सत्वादि गुणों से रहित है, एक ही है वह सब जगत को वश में रखता है जो निष्क्रिय बीज है उन सबको एक ही करने वाला है और उस मूल बीज (प्रकृति से)एक से बहुत बनाने वाला है **[स ईश्वरः कर्माध्यक्षः सन्नेकं बीजं प्रधानं कार्यत्वेन बहुधा करोतीति स्पष्टम्]** यहाँ इन वचनों में यह स्पष्ट है कि वह कर्माध्यक्ष है और कर्मों का अध्यक्ष होता हुआ एक बीज प्रकृति से बहुत रूप बना देता है, **[वक्ष्यति ह्यग्रे ''न धर्मापलापः प्रकृतिकार्यवैचित्र्यात्''(सांख्य० ५.२०)।]** आगे सूत्रकार कहेंगे ही इस बात को कि- धर्म का खण्डन नहीं हो सकता प्रकृति के विचित्र कार्यों से **[अथ च कर्मनिरपेक्षस्तु स प्रधानं तत्कार्याणि प्रति हि प्रवर्तते प्रधानस्य तत्कार्याणां च जडत्वाद् धर्माधर्मरूपकर्मणो ज्ञानाभावात् तथाभूतानां कर्माभावाच्च, तथैव वदति सा श्रुतिरपि ''निष्क्रियाणां बहूनामेकं बीजं बहुधा यः करोति''(श्वेता० ६.१२)]** और कर्म निरपेक्ष ईश्वर हो यदि तो प्रधान और उसके कार्यों की ओर जो प्रवृत्त होता है जो क्रियाशील होता है, प्रधान और उसकी क्रिया के जड़ होने से धर्म-अधर्म रूप कर्म के ज्ञान का अभाव होने से और उस प्रकार के कर्म भी न होने से (धर्माधर्म रूप कर्म के ज्ञान का अभाव रहेगा, प्रकृति में, उस प्रकार के वह कर्म भी नहीं करती जैसे जीव कर्म करता है, तो प्रकृति एक तो जड़ है दूसरा वह कर्म भी नहीं करती फिर प्रकृति के कर्मों के आधार पर ईश्वर सृष्टि क्यों बनाएगा? इसलिए कोई ये कल्पना करे कि जीव के कर्मों को हटा दो तो प्रकृति के कर्मों के आधार पर प्रकृति से जगत बनाया। ये संभव नहीं) वो श्रुति भी ऐसा ही कह रही है - वह प्रकृति निष्क्रिय है जड़ है ऐसे बहुत सारे निष्क्रिय जड़ पदार्थों का एक बीज प्रकृति है इसलिए जो निष्क्रिय जड़ झुंड रूप प्रकृति को बहुत रूप में बनाता है वह ईश्वर है **[जीवान् प्रति तु कर्मापेक्ष एव प्रवर्तते स ईश्वरो न हि कर्मनिरपेक्षः फलं प्रयच्छति]** जीवों के प्रति तो कर्म सापेक्ष ही ईश्वर प्रवृत्त होता है, वह ईश्वर बिना कर्मों के जीवात्मा को कोई फल नहीं देता है, **[अतएव प्रधानस्य कार्यरूपे परिणाममपि जीवकर्मापेक्षः सन्नेव करोतीत्यपि सिद्धम्]** इसलिए प्रधान का जो कार्यरूप परिणाम है प्रकृति से जगत को बनाया ये भी जीव कर्मों के आधार पर ईश्वर ने कार्य किया है ये सिद्ध हुआ, बिना कर्मों के कुछ नहीं किया। **[अत्रापि ''प्रमाणाभावान्न तत्सिद्धिः'' (१०) इति सूत्रात् प्रस्तुतसूत्रपर्यन्तमनिरुद्धविज्ञानभिक्षुभ्यामीश्वरखण्डनं**

नाविद्याशक्तियोगो नि:संगस्य ।।१३।।

(अविद्याशक्तियोग:-न नि:संगस्य) यद्युच्येत प्रधानकार्यत्वं न जीवकर्मापेक्षं किन्तु तत्र कारणमविद्याशक्तियोग:, अविद्याशक्तिसम्बन्धात् स ईश्वर: प्रधानं कार्यरूपे परिणमयेदिति न युक्तं यतो हीश्वरो नि:संगो नि:संगस्य च नाविद्याशक्तिसम्बन्ध: ।।१३।।

भवतु पुरुषो नि:संगो परन्तु प्रधानकार्यत्वाय-प्रधानं कार्यरूपे परिणमयितुं पुरुषस्याविद्याशक्तियोगेन भाव्यम्। अत्रोच्यते -

तद्योगे तत्सिद्धावन्योऽन्याश्रयत्वम् ।।१४।।

(तद्योगे तत्सिद्धौ-अन्योऽन्याश्रयत्वम्) पुरुषस्याविद्याशक्तियोगे सति तत्सिद्धौ प्रधानकार्यत्वसिद्धौ सत्यां खल्वन्योऽन्याश्रयत्वदोष प्रसज्यते। यतोऽविद्याशक्तियोगात् प्रधानकार्यत्वं पुन: प्रधानकार्यत्वनिमित्तेनाविद्यायोगेन भाव्यम् ।।१४।।

कृतम्] इस सूत्र में भी इन दोनों ने (विज्ञानभिक्षु और अनिरुद्ध ने) ईश्वर का खण्डन किया। **[महदाश्चय५ यत् ताभ्यां पूर्वमेंव प्रमाणप्रसंगे ''ईश्वरासिद्धे:'' (सांख्य० १.९२) इति सूत्रेणेश्वरस्य खण्डनं कृतमेवात्रापि तथाकरणं तयोरर्थविधानं सूत्रनैरर्थक्यं बालप्रलपनं प्रसज्यते तदेतत्पश्यन्तु मतिमन्त:]** महद आश्चर्य है कि पहले भी इन्होने प्रमाण के प्रसंग में ''ईश्वरासिद्धे'' सूत्र में ईश्वर का खण्डन किया, फिर यहाँ पांचवे अध्याय में भी यही प्रसंग लिया। ऐसा बार-बार करने से सूत्र की निरर्थकता सिद्ध होती है और बालक के प्रलाप जैसा होता है इस बात को बुद्धिमान लोग समझें देखें ।।१२।।

प्रधान का जो कार्य बनाया जगत, वो जीव के कर्मों के आधार पर हुआ और प्रधान का जो कार्य रूप में जो परिणाम किया गया वह ईश्वर जीव के कर्मों के आधार पर करता है, ये बात जो अभी श्रुति से सिद्ध की गयी उसी को फिर युक्तियों से पुष्ट करते हैं अन्य पक्ष को उठाकर के और उसका समाधान करके इस प्रक्रिया से इस बात को पुष्ट करते हैं-

नाविद्याशक्तियोगो नि:संगस्य ।।१३।।

सूत्रार्थ= ईश्वर के साथ अविद्या शक्ति का सम्बंध हो जाने पर उसके दबाव से ईश्वर ने जगत को रचा हो ऐसा नहीं है।

[(अविद्याशक्तियोग:-न नि:संगस्य) यद्युच्येत प्रधानकार्यत्वं न जीवकर्मापेक्षं किन्तु तत्र कारणमविद्याशक्तियोग:] यदि कोई ऐसा कहे कि प्रकृति को जो कार्य रूप में परिवर्तित किया ये जीवों के कर्मों के आधार पर नहीं किया, किन्तु उसका कारण अविद्या शक्ति का योग है, **[अविद्याशक्तिसम्बन्धात् स ईश्वर: प्रधानं कार्यरूपे परिणमयेदिति न युक्तं यतो हीश्वरो नि:संगो नि:संगस्य च नाविद्याशक्तिसम्बन्ध:]** सिद्धांती ये कहता है ये बात उचित नहीं कि कोई अविद्या शक्ति हो और वह ईश्वर पर दबाव डाले फिर ईश्वर को सृष्टि बनानी पड़े। ऐसा कहना ठीक नहीं क्योंकि ईश्वर नि:संग है किसी से दबता नहीं और न ही अविद्या

अविद्याप्रधानकार्यत्वयोरनादिसम्बन्धो बीजाङ्कुरवदस्ति तस्मान्नान्योऽन्याश्र- यत्वं दोषयुक्तमित्यत्रोच्यते -

न बीजाङ्कुरवत् सादिसंसारश्रुतेः ।।१५।।

(बीजाङ्कुरवत्-न) अविद्याप्रधानकार्यत्वयोः-अविद्यासंसारयोः खलु बीजाङ्कुरवदनादिसम्बन्धो नास्ति (सादिसंसारश्रुतेः) सादिसंसारस्य श्रुतौ प्रतिपादनात्, संसारो नानादिः किन्त्वादिमान् संसारोऽस्तीति श्रुतिर्वदति ''इयं विसृष्टिर्यत आबभूव'' (ऋ० १०.१२९.७) ''द्यावाभूमी जनयन् देव एकः'' (यजु० १७.१९) ।।१५।।

पुनश्चाविद्यास्वरूपे दोषोऽयम् -

शक्ति उसे दबा सकती है ।।१३।।

चलो मान लिया कि पुरुष निःसंग है, किसी से डरता नहीं, दबता नहीं, परंतु प्रधान को कार्य रूप में परिणित करने के लिए पुरुष का अविद्या शक्ति से योग हो जावे। यहाँ इसका उत्तर देते हैं-

तद्योगे तत्सिद्धावन्योऽन्याश्रयत्वम् ।।१४।।

सूत्रार्थ= ईश्वर के साथ अविद्या का सम्बन्ध होने पर जगत बने फिर जगत बनने के बाद अविद्या उत्पन्न हो इस मान्यता में अन्योन्य आश्रय दोष है।

[(तद्योगे तत्सिद्धौ-अन्योऽन्याश्रयत्वम्) पुरुषस्याविद्याशक्तियोगे सति तत्सिद्धौ प्रधानकार्यत्वसिद्धौ सत्यां खल्वन्योऽन्याश्रयत्वदोष प्रसज्यते] ईश्वर का अविद्या शक्ति के साथ योग होने पर तब तो प्रकृति से जगतरूप की सिद्धि होवे। इस मान्यता में एक दूसरे पर आधारित होने का दोष आएगा। **[यतोऽविद्याशक्तियोगात् प्रधानकार्यत्वं पुनः प्रधानकार्यत्वनिमित्तेनाविद्यायोगेन भाव्यम्]** पहले अविद्या शक्ति के योग से प्रधान जगत बना फिर प्रकृति से जब जगत बन गया उसके कारण फिर बाद में अविद्या पैदा हुई फिर उसने ईश्वर पर दवाव डाला ये अन्योन्य आश्रित दोष है ।।१४।।

अविद्या और प्रकृति से जो जगत बना इनका जो आपस में सम्बन्ध है वह बीज और अंकुर के समान है । इसलिए इसमें अन्योन्य आश्रित दोष नहीं है । इसका उत्तर देते हैं-

न बीजाङ्कुरवत् सादिसंसारश्रुतेः ।।१५।।

सूत्रार्थ= बीज और अंकुर के समान अविद्या और जगत का अनादि सम्बन्ध नहीं है, जगत की उत्पत्ति श्रुति में कही जाने से।

विद्यातोऽन्यत्वे ब्रह्मबाधप्रसंगः ।।१६।।

(विद्यातः-अन्यत्वे) ब्रह्मणि खल्वविद्याशक्तियोगात् प्रधानकार्यत्वं भवेदिति स्वीकारेऽविद्या स्याद् वस्तुरूपा यस्याः शक्त्या सह ब्रह्म युज्यते पुनस्तस्या अविद्यायाः किल विद्यातोऽन्यत्वे भिन्नवस्तुत्वे ब्रह्मणो बाधप्रसंगो भवति, यतो हि यत्खलु विद्यातोऽन्यत्तद् वस्तु खल्वविद्येति कथने ब्रह्म स्यादविद्या तदपि विद्यातोऽन्यत्, विद्या हि ज्ञानं परन्तु ब्रह्म तु द्रव्यं ज्ञानतोऽन्यत् पुनस्तस्यापि बाधः स्याद् विद्यातोऽन्यद् विद्यया बाध्यते यतः, विद्या स्वान्यामविद्यां बाधते यथा। अथवाऽविद्या हि विद्यां बाधते विद्यातोऽन्यत्वाद् यदा किलाविद्या तदा न विद्याऽवतिष्ठते पुनस्तयाऽविद्यया युक्तं ब्रह्म बाधितं भवेद् विद्याशून्यं स्यात्। यद्वा ब्रह्मैव न स्यात् तदनिष्टं यतः ''यः सर्वज्ञः सर्वविद् यस्य ज्ञानमयं तपः'' (मुण्ड० १.१.९) इत्थं ब्रह्मबाधप्रसंगदोषान्नैतन्मन्तव्यमुचितम्, अत्र 'ब्रह्म' सूत्रकारेण मतमेवेति स्पष्टम् ।।१६।।

[(बीजाङ्कुरवत्-न)अविद्याप्रधानकार्यत्वयोः-अविद्यासंसारयोः खलु बीजाङ्कुरवदनादिसम्बन्धो नास्ति] सिद्धांती कहता है- अविद्या और कार्य जगत का(प्रधान से जो कार्य जगत बना) इन दोनों का बीज और अंकुर के समान सम्बन्ध नहीं है **[(सादिसंसारश्रुतेः) सादिसंसारस्य श्रुतौ प्रतिपादनात्]** श्रुति में तो ऐसा बताया गया है कि संसार आदि सहित है आरंभ वाला है, **[संसारो नानादिः किन्त्वादिमान् संसारोऽस्तीति श्रुतिर्वदति]** संसार अनादि नहीं है वह तो आदिमन है आरंभ वाला है संसार है ऐसा श्रुति बता रही है **[''इयं विसृष्टिर्यत आबभूव''(ऋ० १०.१२९.७)]** ये जो विविध सृष्टि है ये जिससे उत्पन्न हुई वह प्रकृति है (ये तो उत्पन्न हो रहा है) **[''द्यावाभूमी जनयन् देव एकः'' ब्रह्म]** द्यावा भूमि को उत्पन्न करने वाला एक परमात्मा है यहाँ तो संसार की उत्पत्ति बता रहे है जबकि आप कह रहे हैं कि संसार अनादि है। इसलिए आपकी बात ठीक नहीं ।।१५।।

पुनश्चाविद्यास्वरूपे दोषोऽयम् - अविद्या के स्वरूप में ये भी दोष है-

विद्यातोऽन्यत्वे ब्रह्मबाधप्रसंगः ।।१६।।

सूत्रार्थ= विद्या से भिन्न सभी पदार्थों को अविद्या मानने पर ब्रह्म के विनाश का दोष आएगा, जो कि ठीक नहीं।

[(विद्यातः-अन्यत्वे) ब्रह्मणि खल्वविद्याशक्तियोगात् प्रधानकार्यत्वं भवेदिति स्वीकारेऽविद्या स्याद् वस्तुरूपा यस्याः शक्त्या सह ब्रह्म युज्यते] ब्रह्म में अविद्या शक्ति योग हो जाने से प्रकृति से कार्य जगत उत्पन्न हो जावे ऐसा स्वीकार कर लेने पर तब अविद्या को एक वस्तु रूप मानना पड़ेगा (एक सत्तात्मक पदार्थ मानना पड़ेगा जो ब्रह्म पर दबाव बनाती है) जिसकी शक्ति से ब्रह्म जगत बनाने में लग जाएगा **[पुनस्तस्या अविद्यायाः किल विद्यातोऽन्यत्वे भिन्नवस्तुत्वे ब्रह्मणो बाधप्रसंगो भवति]** उस स्थिति में अविद्या के विद्या से भिन्न होने में ब्रह्म के विनाश का प्रसंग आएगा (क्योंकि पूर्वपक्षी का ये सिद्धान्त है कि - विद्या से जो भी अतिरिक्त है वह अविद्या है) ऐसी स्थिति में ब्रह्म भी विद्या से भिन्न है (विद्या है ज्ञान=द्रव्य , ब्रह्म वस्तु है), **[यतो हि यत्खलु विद्यातोऽन्यत्तद् वस्तु खल्वविद्येति कथने ब्रह्म स्यादविद्या तदपि**

अथ च -

अबाधे नैष्फल्यम् ।।१७।।

(अबाधे नैष्फल्यम्) अबाधे सति-यदि पुनरविद्यया ब्रह्म न बाध्यते तदा विद्यातोऽन्यत्वमन्तव्यस्य निष्फलत्वं स्यादविद्यायाः पुनरकिञ्चित्करत्वं सिध्येत् ।।१७।।

विद्यातोऽन्यत्] क्योंकि आपके सिद्धान्त के अनुसार- जो भी वस्तु विद्या से भिन्न है वह सब अविद्या है। इस कथन में ब्रह्म भी अविद्या बन जाएगा क्योंकि वह भी विद्या से अन्य है। तो उसका नाम भी अविद्या ही रखना पड़ेगा, और जो विद्या है शुद्ध ज्ञान वह अविद्या का नाशक होगा (ब्रह्म अविद्या बन रहा है और विद्या उसका विनाश कर देगी तो ब्रह्म का ही विनाश हो जाएगा), **[विद्या हि ज्ञानं परन्तु ब्रह्म तु द्रव्यं ज्ञानतोऽन्यत् पुनस्तस्यापि बाधः स्याद् विद्यातोऽन्यद् विद्यया बाध्यते यतः]** विद्या ज्ञान है परंतु ब्रह्म तो द्रव्य है ज्ञान से भिन्न है, विद्या अविद्या का नाश करती है ब्रह्म अविद्या बन गया क्योंकि वह ज्ञान से भिन्न वस्तु है, इस प्रकार उसका भी विनाश हो जाएगा, क्योंकि विद्या से जो अन्यत होगा वह सब विद्या से नष्ट कर दिया जाएगा, **[विद्या स्वान्यामविद्यां बाधते यथा]** विद्या जैसे अपने से भिन्न अविद्या को मार देती है । [अब इस सूत्र कि दूसरी व्याख्या **अथवाऽविद्या हि विद्यां बाधते विद्यातोऽन्यत्वाद्]** अथवा अविद्या विद्या का नाश करेगी विद्या से भिन्न होने से **[यदा किलाविद्या तदा न विद्याऽवतिष्ठते]** क्योंकि दोनों में टकराव है- जिस समय विद्या रहेगी उस समय अविद्या नहीं रहेगी **[पुनस्तयाऽविद्यया युक्तं ब्रह्म बाधितं भवेद् विद्याशून्यं स्यात्]** जब अविद्या आएगी तब विद्या नहीं रहेगी, जब अविद्या ब्रह्म पर वार करेगी तो उसमें से विद्या को उखाड़ फेंक देगी, फिर ब्रह्म विद्या से शून्य हो जाएगा। **[यद्वा ब्रह्मैव न स्यात् तदनिष्टं यतः]** जब ब्रह्म ही नहीं रहेगा अथवा उसमें ज्ञान ही न रहेगा, यह तो ठीक नहीं=अनिष्ट है, क्योंकि - **[''यः सर्वज्ञः सर्वविद् यस्य ज्ञानमयं तपः'']** जो सर्वज्ञ है सर्ववित् है जिसका अनन्त ज्ञानमय तप सामर्थ्य है, वह ब्रह्म कभी नष्ट हो ही नहीं सकता **[(मुण्ड० १.१.९) इत्थं ब्रह्मबाधप्रसंगदोषान्नैतन्मन्तव्यमुचितम्]** इसलिए ब्रह्म के विनाश का प्रसंग दोष आने से ये मान्यता उचित नहीं है ''विद्या से भिन्न जो कुछ भी है वह अविद्या है'', **[अत्र 'ब्रह्म' सूत्रकारेण मतमेवेति स्पष्टम्]** अब सूत्रकार ने ब्रह्म कि सत्ता को स्वीकार किया है, ''ब्रह्म के बाध'' का प्रसंग आएगा तभी तो दोष आएगा अर्थात सूत्रकार ब्रह्म को मानते हैं, तभी तो इसमें दोष दिखाएंगे कि ''विद्या से भिन्न जो कुछ भी है वह अविद्या है'' ऐसा मानने पर तो ब्रह्म का ही विनाश हो जाएगा। ये बात वही कहेगा जो ब्रह्म की सत्ता को मानता हो, जो ब्रह्म को मानता ही न हो वह क्यों कहेगा? इसलिए सूत्रकार स्वयं ब्रह्म को मानता है आस्तिक है ।१६।।

अथ च -

अबाधे नैष्फल्यम् ।।१७।।

सूत्रार्थ= यदि अविद्या ब्रह्म का विनाश नहीं कर पाती है तो पूर्वपक्षी की मान्यता व्यर्थ है।

[(अबाधे नैष्फल्यम्) अबाधे सति-यदि पुनरविद्यया ब्रह्म न बाध्यते तदा विद्यातोऽन्यत्वमन्तव्यस्य निष्फलत्वं स्यादविद्यायाः पुनरकिञ्चित्करत्वं सिध्येत्] पूर्वपक्षी अपनी बात को थोड़ा सुधारते हुए कहता है-अविद्या ब्रह्म को मारेगी नहीं, सिद्धांती कहते हैं = यदि अविद्या के द्वारा ब्रह्म का

पक्षान्तरमाक्षिप्यते -

विद्याबाध्यत्वे जगतोऽप्येवम् ।।१८।।

(विद्याबाध्यत्वे) अविद्याया विद्यातोऽन्यत्वं न, किन्तु विद्याबाध्यत्वमेव सैवा विद्यया बाध्यते न हि सा बाधे समर्था न तयाऽन्यद् बाध्यते तस्मान्न ब्रह्मबाधप्रसंगः। यदा हि पुरुषे विद्या प्रवर्ततेऽथाविद्या निवर्तते तथारूपाऽविद्या चेदुच्येत तर्हि (जगतः-अपि-एवम्) जगदपि खल्वेवं विद्यया बाध्यते-विद्यावतः पुरुषस्य सकाशात् खलु जगदपि निवर्तते ''अथात आदेशो नेति नेति'' (बृह० २.३.६) एवं जगतोऽपि विद्यया बाध्यत्वाज्जगदपि स्यादविद्या ।।१८।।

भवतु जगदप्यविद्या । अत्रोच्यते -

तद्रूपत्वे सादित्वम् ।।१९।।

विनाश नहीं किया जाएगा तब आपकी वह मान्यता निष्फल हो जाएगी कि ''विद्या से भिन्न जो कुछ भी है वह अविद्या है'', इस मान्यता का कोई औचित्य नहीं रहा, फिर वह अविद्या किसी को नहीं मारेगी ऐसा आप कह रहे हैं फिर तो वह निर्बल हो जाएगी (ऐसी अविद्या माननी पड़ेगी जो कुछ नहीं करेगी) ।।१७।।

फिर इससे अलग पक्ष पर आक्षेप करता है सिद्धांती-

विद्याबाध्यत्वे जगतोऽप्येवम् ।।१८।।

सूत्रार्थ=विद्या से अविद्या नष्ट हो जाती है, ऐसा मानने पर विद्या से जगत भी नष्ट होता है। ''मुक्तात्मा के लिए'' तो क्या ये जगत भी अविद्या है।

[**(विद्याबाध्यत्वे) अविद्याया विद्यातोऽन्यत्वं न**] विद्या से भिन्न जो कुछ भी हो वह अविद्या है, हम ऐसा नहीं मानते, [**किन्तु विद्याबाध्यत्वमेव सैवा विद्यया बाध्यते**] वह विद्या को नहीं मारती किन्तु वह स्वयं विद्या से मर जाती है [**न हि सा बाधे समर्था**] वह किसी को मारने में समर्थ नहीं [**न तयाऽन्यद् बाध्यते**] न उस= अविद्या के द्वारा दूसरी वस्तु नहीं मारी जाती [**तस्मान्न ब्रह्मबाधप्रसंगः**] इसलिए ब्रह्म के विनाश का प्रसंग नहीं आएगा। [**यदा हि पुरुषे विद्या प्रवर्ततेऽथाविद्या निवर्तते**] जब जीवात्मा में विद्या आ जाएगी और अविद्या नष्ट हो जाएगी [**तथारूपाऽविद्या चेदुच्येत तर्हि**] यदि पूर्वपक्षी इस तरह की अविद्या कहे तो क्या समस्या है? [**(जगतः-अपि-एवम्) जगदपि खल्वेवं विद्यया बाध्यते-विद्यावतः पुरुषस्य सकाशात् खलु जगदपि निवर्तते**] यदि आप अविद्या को ऐसी मानते हैं कि- वह स्वयं तो किसी को मारेगी नहीं, ''बल्कि वह इतनी कमजोर है कि दूसरे से खुद मर जाएगी'', (ऐसी है अविद्या ऐसी जब मानो तो विद्या के आने पर अविद्या मर जाएगी) सिद्धांती कहता है- यूं तो जगत भी विद्या के द्वारा मार दिया जाता है। कैसे? विद्या वाले पुरुष के पास से जगत भी निवृत हो जाता है। अब इसकी पुष्टि में कहते हैं- [**''अथात आदेशो नेति नेति''(बृह० २.३.६)**] जिसने संसार में दुख देखा अविद्या नष्ट कर ली वह कहता है अब संसार में जन्म नहीं लेना [**एवं जगतोऽपि विद्यया बाध्यत्वाज्जगदपि स्यादविद्या**] इस प्रकार जगत का भी विद्या से विनाश हो जाने पर अर्थात पुनर्जन्म रुक जाने पर पुनर्जन्म को भी अविद्या मानना पड़ेगा जो ठीक नहीं ।।१८।।

(तद्रूपत्वे) जगतोऽविद्यारूपत्वे सति-यदि हि जगदप्यविद्या तर्हि (सादित्वम्) अविद्यायाः सादित्वं सिद्धं भवति यतो जगत् सादि तच्च पूर्वं साधितं जगतः सादित्वम् ''न बीजाङ्कुरवत् सादिसंसारश्रुतेः'' (१५) ''इयं विसृष्टिर्यत आबभूव'' (ऋ० १०.१२९.७) ''द्यावाभूमी जनयन् देव एकः'' (यजु० १७.१९) इत्थं ह्यविद्या नानादिः पुनश्चाविद्याशक्तियोगाद् ब्रह्मकार्यरूपे प्रधानं परिणमयेदिति न सिध्यति किन्तु जीवकर्मापेक्षः सन्नेवेश्वरः प्रधानं कार्यरूपे परिणमयतीति ''श्रुतिरपि प्रधानकार्यत्वस्य'' (१२) इत्यनेन यदुक्तं पूर्वं तदेवावतिष्ठते ।।१९।।

अत एव -

न धर्मापलापः प्रकृतिकार्यवैचित्र्यात ।।२०।।

जगत यदि अविद्या बन जाए। इस विषय पर कहते हैं-

तद्रूपत्वे सादित्वम् ।।१९।।

सूत्रार्थ= जगत को भी अविद्या मानने पर तब आपकी मानी हुई अविद्या स्वरूप से अनादि नहीं रहेगी।

[(तद्रूपत्वे) जगतोऽविद्यारूपत्वे सति-यदि हि जगदप्यविद्या तर्हि (सादित्वम्) अविद्यायाः सादित्वं सिद्धं भवति यतो जगत् सादि तच्च पूव५ साधितं जगतः सादित्वम् ''न बीजाङ्कुरवत् सादिसंसारश्रुतेः''] जगत को भी अविद्या रूप मानने पर, ''अविद्या भी उत्पन्न हुई'' ऐसा मानना पड़ेगा, क्योंकि जगत तो उत्पन्न होता है ये पहले ही सिद्ध कर चुके हैं -**''न बीजाङ्कुरवत् सादिसंसारश्रुतेः''** कि जगत उत्पन्न होता है, और आपकी मान्यता है कि अविद्या अनादि है (इसमें टकराव आएगा) (१५) **[''इयं विसृष्टिर्यत आबभूव''(ऋ० १०.१२९.७)]** ये जो विविध प्रकार कि सृष्टि है ये परमात्मा से उत्पन्न होती है **[''द्यावाभूमी जनयन् देव एकः''(यजु० १७.१९)]** एक देव परमात्मा है जो भूमि द्यौलोक को उत्पन्न करता है **[इत्थं ह्यविद्या नानादिः पुनश्चाविद्याशक्तियोगाद् ब्रह्म कार्यरूपे प्रधानं परिणमयेदिति न सिध्यति]** इस प्रकार से अविद्या अनादि नहीं रहेगी यदि आप जगत को अविद्या मानेंगे तो, इस स्थिति में अविद्या शक्ति के दबाव से परमात्मा प्रकृति को जगत रूप में परिणित करे। फिर ये बात सिद्ध नहीं होगी क्योंकि वह तो अनादि है ही नहीं, जब अविद्या पहले है ही नहीं फिर ब्रह्म पर दबाव कौन डाले? **[किन्तु जीवकर्मापेक्षः सन्नेवेश्वरः प्रधानं कार्यरूपे परिणमयतीति]** किन्तु सत्य सिद्धान्त तो यह है कि जीव के कर्मों के आधार पर ही ईश्वर प्रकृति को जगत रूप में कार्य रूप में परिणित करता है। जैसा कि पहले बताया था **[''श्रुतिरपि प्रधानकार्यत्वस्य'']** इस सूत्र में बताया था कि- श्रुति भी कहती है कि परमात्मा ने जीवों के कर्मों के आधार पर प्रकृति से जगत बनाया **[(१२) इत्यनेन यदुक्तं पूर्वं तदेवावतिष्ठते]** इस बारहवें सूत्र से जो बात कही थी वही ठीक है ।।१९।।

अत एव -

न धर्मापलापः प्रकृतिकार्यवैचित्र्यात् ।।२०।।

सूत्रार्थ= उत्तम धर्माचरण का खण्डन नहीं हो सकता, प्रकृति के कार्य योनियां भिन्न-भिन्न होने से।

(धर्मापलापः-न) धर्मस्याहिंसादिमंगलाचरणरूपस्य कर्मणोऽपलापो न भवति यदपेक्षमीश्वरस्याधिष्ठातृत्वं फलप्रदानाय द्वितीयसूत्रे व्यक्तीकृतं तद्युक्तमेव। कुतः (प्रकृतिकार्यवैचित्र्यात्) प्रकृतेः कार्याणां वैचित्र्यादुच्चावचत्वात् सुखदुःखरूपत्वात् सकलविकलांगत्वाच्च वक्ष्यति ह्यग्रे ''कर्मवैचित्र्यात् सृष्टिवैचित्र्यम्'' (सांख्य० ६.४२) ।।२०।।

धर्माचरणात्प्रकृतिकार्यवैचित्र्यं सुखित्वादिकमस्तीत्यत्र किं प्रमाणमित्याकांक्षा-यामुच्यते -

श्रुतिलिंगादिभिस्तत्सिद्धिः ।।२१।।

(श्रुतिलिंगादिभिः-तत्सिद्धिः) श्रुतिप्रमाणेन लिंगप्रमाणेनानुमानप्रमाणेनेति यावत्, तथाऽऽदिशब्दाद् योगिनामबाह्यप्रत्यक्षेण च धर्माचरणात्सुखित्वादिकस्य प्रकृतिकार्यवैचित्र्यस्य सिद्धिर्भवति। श्रुतिस्तावत् - ''पुण्यो वै पुण्येन कर्मणा भवति।'' (बृह०३.२.१३)

[**(धर्मापलापः-न) धर्मस्याहिंसादिमंगलाचरणरूपस्य कर्मणोऽपलापो न भवति यदपेक्षमीश्वरस्याधिष्ठातृत्वं फलप्रदानाय द्वितीयसूत्रे व्यक्तीकृतं तद्युक्तमेव**] धर्म का जो अहिंसा आदि रूप मंगलाचरण रूप कर्म बताया था, उसका खण्डन नहीं हो सकता। जिन शुभ कर्मों कि अपेक्षा से ईश्वर का अधिकार है फल देने के लिए। जो बात दूसरे सूत्र में प्रकट कि गयी थी, वह सही है । [**कुतः (प्रकृतिकार्यवैचित्र्यात्) प्रकृतेः कार्याणां वैचित्र्यादुच्चावचत्वात् सुखदुःखरूपत्वात् सकलविकलांगत्वाच्च वक्ष्यति ह्यग्रे ''कर्मवैचित्र्यात् सृष्टिवैचित्र्यम्'' (सांख्य० ६.४२)**] प्रकृति के जो कार्य है उनमें विचित्रता होने से शरीर ऊंचे-नीचे हैं, कोई सुख वाला है तो कोई दुख वाला। कोई सकलांग है कोई विकलांग है। ऐसा ही आगे कहा - कर्मों की विचित्रता से सृष्टि की विचित्रता है ।।२०।।

धर्माचरण से प्रकृति के विभिन्न कार्य उत्पन्न होते हैं, और ये जो अनेक प्रकार का सुख दुःख हो रहा है इस विषय में क्या प्रमाण है? इस पर कहते हैं-

श्रुतिलिंगादिभिस्तत्सिद्धिः ।।२१।।

सूत्रार्थ= शब्द प्रमाण, अनुमान प्रमाण और योगियों के आन्तरिक प्रत्यक्ष से सिद्ध होता है कि धर्म आचरण से सुख उत्तम योनियाँ और अधर्म आचरण से दुख निकृष्ट योनियाँ प्राप्त होती है।

[**(श्रुतिलिंगादिभिः-तत्सिद्धिः) श्रुतिप्रमाणेन लिंगप्रमाणेनानुमानप्रमाणेनेति यावत्**] श्रुति के प्रमाण से (शब्द प्रमाण से) अच्छे कार्य से अच्छा फल सुख और बुरे कार्यों से दण्ड और दुःख मिलता है, दूसरा अनुमान प्रमाण से, [**तथाऽऽदिशब्दाद् योगिनामबाह्यप्रत्यक्षेण च धर्माचरणात्सुखित्वादिकस्य प्रकृतिकार्यवैचित्र्यस्य सिद्धिर्भवति**] श्रुति में लिंग आदि शब्द है यहाँ आदि शब्द से अभिप्रेत योगियों का अबाह्य (आंतरिक) प्रत्यक्ष है, इन सब प्रमाणों से ये सिद्ध होता है कि धर्माचरण से सुख होता है और प्रकृति के विचित्र कार्यों की सिद्धि हो जाएगी। **श्रुतिस्तावत्** पहले श्रुति का प्रमाण देते हैं - [**''पुण्यो वै पुण्येन कर्मणा भवति।''(बृह० ३.२.१३)**] पुण्य कर्म से पुण्य लोक की प्राप्ति होती है [**लिंगप्रमाणमनुमानप्रमाणं तु जन्मतः सुखसम्पत्तिः सकलांगत्वादिका भोगरूपा पूर्वजन्माचरितधर्मणः फलमिहजन्माचरितोचितकर्मणः सुखभोगफलमिव**] अब ये लिंग प्रमाण है अनुमान प्रमाण है, उससे देखते हैं कि जन्म से ही किसी को सुख

लिंगप्रमाणमनुमानप्रमाणं तु जन्मतः सुखसम्पत्तिः सकलांगत्वादिका भोगरूपा पूर्वजन्माचरितधर्मणः फलमिहजन्माचरितोचितकर्मणः सुखभोगफलमिव। योगिनामान्तरिकप्रत्यक्षेणापि सिद्धिर्भवति ।।२१।।

श्रुत्यादीनि प्रमाणानि स्युः प्रत्यक्षं-लौकिकप्रत्यक्षप्रमाणं तु न तत्सिद्धावित्याकांक्षायामुच्यते -

न नियमः प्रमाणान्तरावकाशात् ।।२२।।

(नियमः-न) प्रत्यक्षप्रमाणेनैव वस्तुसिद्धिः स्यादिति न नियमोऽस्ति, न हि सर्वं प्रत्यक्षप्रमाणेन सिध्यति (प्रमाणान्तरावकाशात्) वस्तुसिद्धौ प्रत्यक्षप्रमाणादतिरिक्त-प्रमाणानामनुमानादीनामवकाशसद्भावात् ।।२२।।

अथ च -

उभयत्राप्येवम् ।।२३।।

मिला सुख संपत्ति प्राप्त हो गयी और सब अंग भी उत्तम मिले। इस प्रकार से जो भोग रूप पूर्व जन्म में आचरण किए धर्म का फल है ये जो वर्तमान में हम देखते हैं। **[योगिनामान्तरिकप्रत्यक्षेणापि सिद्धिर्भवति]** योगियों के आन्तरिक प्रत्यक्ष से भी इस बात कि सिद्धि होती है, अच्छा कार्य करने से आनंद उत्साह कि प्राप्ति होती है ।।२१।।

कर्म फल के विषय में श्रुति का प्रमाण दिया और अनुमान प्रमाण भी दिया कि कर्मों का फल मिलता है परन्तु कर्मों का फल मिलता है ये लौकिक प्रत्यक्ष प्रमाण से तो सिद्ध नहीं होती। इसके उत्तर में कहते हैं-

न नियमः प्रमाणान्तरावकाशात् ।। २२।।

सूत्रार्थ= प्रत्येक वस्तु लौकिक प्रत्यक्ष प्रमाण से ही सिद्ध हो ऐसा नियम नहीं है, अन्य अनुमान आदि प्रमाणों से भी वस्तुओं कि सिद्धि होने से।

[(नियमः-न) प्रत्यक्षप्रमाणेनैव वस्तुसिद्धिः स्यादिति न नियमोऽस्ति] हर वस्तु आँख से ही दिखाई देने पर सिद्ध हो ऐसा नियम नहीं है, **न हि सर्वं प्रत्यक्षप्रमाणेन सिध्यति** प्रत्येक की सिद्धि प्रत्यक्ष प्रमाण से हो ऐसा संभव नहीं है **[(प्रमाणान्तरावकाशात्) वस्तुसिद्धौ प्रत्यक्षप्रमाणादतिरिक्त-प्रमाणानामनुमानादीनामवकाशसद्भावात्]** वस्तु की सिद्धि करने में प्रत्यक्ष प्रमाण के अतिरिक्त अन्य अनुमानादि प्रमाणों की सत्ता है उनकी सहता से किसी भी बात को सिद्ध कर सकते हैं ।।२२।।

अथ च -

उभयत्राप्येवम् ।।२३।।

सूत्रार्थ= धर्म करने से सुख मिलता है, और अधर्म करने से दुख मिलता है । दोनों ही क्षेत्रों में शब्द प्रमाण और अनुमान प्रमाण प्राप्त होने से।

[(एवम्-उभयत्र-अपि) इत्थं श्रुतिलिंगादिभिर्धर्मसिद्धिरेवेति न किन्तूभयत्रापि धर्मसिद्धौ तथाऽधर्मसिद्धौ च समानप्रमाणनिर्देशो विज्ञेयः] इस प्रकार श्रुति लिंगादि प्रमाणों से केवल धर्म की ही सिद्धि होती हो ऐसा नहीं है अपितु दोनों क्षेत्रों में धर्म की सिद्धि में और अधर्म की सिद्धि में समान रूप से

(एवम्-उभयत्र-अपि) इत्थं श्रुतिलिंगादिभिर्धर्मसिद्धिरेवेति न किन्तूभयत्रापि धर्मसिद्धौ तथाऽधर्मसिद्धौ च समानप्रमाणनिर्देशो विज्ञेयः। तेनाधर्मसिद्धिरपि भवति तैः श्रुतिलिंगादिभिः प्रमाणैः। श्रुतिस्तावत् ''पापः पापेन'' (बृह०३.२.१५) लिंगप्रमाणादिकं वैपरीत्येन विज्ञेयम् ।।२३।।

धर्मसिद्धौ तु श्रुत्यादिप्रमाणमपेक्ष्यतेऽधर्मसिद्धौ न, तत्सिद्धिस्तु भविष्यत्य-र्थापत्त्या हि । अत्रोच्यते -

अर्थात् सिद्धिश्चेत् समानमुभयोः ।।२४।।

(अर्थात् सिद्धिः) अर्थापत्त्या हि खल्वधर्मस्य सिद्धिर्भविष्यति (उभयोः समानं चेत्) उभयोर्धर्माधर्मयोः समानं क्षेत्रं प्रकरणं वर्णनं वा स्यात्, परन्तु यत्र क्षेत्रं-प्रकरणं-वर्णनं वा समानं नास्ति

प्रमाण का निर्देश समझना चाहिए (अर्थात् श्रुति लिंगादि जो प्रमाण है ये इस बात को भी बताते हैं कि धर्म का फल सुख है और अधर्म का फल दुःख है, दोनों क्षेत्रों में श्रुति प्रमाण और अनुमान प्रमाण आदि चलते हैं)। [**तेनाधर्मसिद्धिरपि भवति तैः श्रुतिलिंगादिभिः प्रमाणैः**] इस कारण से अधर्म की भी सिद्धि होती है,श्रुति लिंगादि प्रमाणों से जैसे कि ।[**श्रुतिस्तावत् ''पापः पापेन''**] श्रुति का वचन है जब व्यक्ति पाप करता है तो पापी कहलाता है [**(बृह० ३.२.१५) लिंगप्रमाणादिकं वैपरीत्येन विज्ञेयम्**] अनुमान प्रमाण को इससे विपरीत मानलो जैसे पहले बताया था।।२३।।

[**धर्मसिद्धौ तु श्रुत्यादिप्रमाणमपेक्ष्यतेऽधर्मसिद्धौ न, तत्सिद्धिस्तु भविष्यत्यर्थापत्त्या हि । अत्रोच्यते -**] पूर्वपक्षी एक शंका रखता है- धर्म के क्षेत्र में तो माना कि श्रुति आदि का प्रमाण है, किन्तु अधर्म कि सिद्धि में कोई आवश्यकता नहीं दिखती । उसकी (अधर्म की) सिद्धि तो अर्थापत्ति से भविष्य में हो ही जाएगी? इसके उत्तर में सिद्धांती कहता है-

अर्थात् सिद्धिश्चेत् समानमुभयोः ।।२४।।

सूत्रार्थ= यदि अधर्म की सिद्धि अर्थापत्ति से हो जाए तो वहाँ-वहाँ होगी जहां-जहां धर्म और अधर्म के वर्णन के प्रकरण समान हो किन्तु जहां इसमें असमानता हो वहाँ श्रुति के प्रमाण देना ही पड़ेगा।

[**(अर्थात् सिद्धिः) अर्थापत्त्या हि खल्वधर्मस्य सिद्धिर्भविष्यति (उभयोः समानं चेत्) उभयोर्धर्माधर्मयोः समानं क्षेत्रं प्रकरणं वर्णनं वा स्यात्**] सिद्धांती कहता है- एक अंश में आपकी बात ठीक है, अर्थापत्ति से अधर्म की सिद्धि जाएगी, जहां धर्म और अधर्म का क्षेत्र समान होगा वहाँ तो अर्थापत्ति से सिद्ध हो जाएगा, [**परन्तु यत्र क्षेत्रं-प्रकरणं-वर्णनं वा समानं नास्ति तत्र नाधर्मसिद्धिर्भवेत्**] परंतु जहां-जहां क्षेत्र प्रकरण समान नहीं होगा तो वहाँ-वहाँ अर्थापत्ति से अधर्म की सिद्धि नहीं होगी, [**तस्मादधर्मार्थमपि श्रुत्यादिप्रमाणप्रदर्शनं युक्तमेव**] इसलिए अधर्म को दिखलाने के लिए श्रुति आदि का प्रमाण भी उचित है।

तत्र नाधर्मसिद्धिर्भवेत्, तस्मादधर्मार्थमपि श्रुत्यादिप्रमाणप्रदर्शनं युक्तमेव । तद्यथा ''मा हिंसीः पुरुषं जगत्'' (यजु० १६.३, श्वेता०३.६) ''न स्तेयमद्मि'' (अथर्व० १४.१.५७) ''अक्षैर्मा दीव्यः'' (ऋ० १०.३४.१३) ''पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात्'' (ऋ० १०.१०.१२) ''मा गृधः कस्यस्विद् धनम्'' (यजु० ४०.१) इत्याद्यनुसन्धेयम् ।।२४।।

सिध्यन्तु धर्माधर्मौ तत्फले सुखदुःखे च परन्तु ततः पुरुषे संगापत्तिर्भविष्यति, उच्यते हि ''असंगो ह्ययं पुरुषः'' (बृह० ४.३.१५) अत्रोच्यते -

अन्तःकरणधर्मत्वं धर्मादीनाम् ।।२५।।

(धर्मादीनाम्-अन्तःकरणधर्मत्वम्) धर्माधर्मसुखदुःखानामन्तःकरणगुणत्वमस्ति, सन्ति हि धर्माधर्मसुखदुःखानि किलान्तःकरणगुणाः । अन्तःकरणं हि करणं साधनमान्तरिकं पुरुषस्य बहिष्करणवत्, यथा ह्यादानादीनि हस्तादिबहिष्करणस्य कर्मेन्द्रियजातस्य यथा च रूपादीनि नेत्रादिबहिष्करणस्य ज्ञानेन्द्रियगणस्य गुणाः सन्ति तथैव धर्माधर्मसुखदुःखानि खल्वन्तःकरणस्योभयेन्द्रियात्मकस्य गुणाः

तद्यथा जैसे कहा - [**''मा हिंसीः पुरुषं जगत्''**] पुरुषों को जगत में मत मारो [**''न स्तेयमद्मि''(अथर्व० १४.१.५७)**] चोरी करके नहीं खाऊँगा [**''अक्षैर्मा दीव्यः''(ऋ० १०.३४.१३)**] जुआ मत खेलो [**''पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात्''(ऋ० १०.१०.१२)**] जो व्यक्ति अपनी सगी बहिन से विवाह करता है, वह पाप है [**''मा गृधः कस्यस्विद् धनम्''(यजु० ४०.१)**] धन का लोभ मत करो, ये सोचो कि ये धन किसका है? इत्यादि अनुशंधान करना चाहिए ।।२४।।

धर्म और अधर्म की सत्ता सिद्ध हो गयी तथा धर्म-अधर्म से सुख दुःख मिलता है ये मान लिया, परंतु उससे पुरुष में संगापत्ति का दोष आएगा। (यदि जीवात्मा सुखी दुःखी होने लगा तो उसमें बाह्य संग की प्राप्ति आरंभ हो जाएगी ।) जबकि शास्त्रों में ये कहा है कि ''पुरुष असंग है'' इस बात का विरोध आएगा । इस पर कहते हैं-

अन्तःकरणधर्मत्वं धर्मादीनाम् ।।२५।।

सूत्रार्थ= धर्म-अधर्म, सुख-दुःख, आदि मन के गुण हैं जैसे नेत्रादि के देखना और हस्त आदि ग्रहण करना आदि गुण हैं, इसलिए आत्मा के स्वरूप में कोई विकृति नहीं आती।

[(धर्मादीनाम्-अन्तःकरणधर्मत्वम्) धर्माधर्मसुखदुःखानामन्तःकरणगुणत्वमस्ति, सन्ति हि धर्माधर्मसुखदुःखानि किलान्तःकरणगुणाः] धर्म, अधर्म, सुख-दुःख आदि ये अन्तःकरण (मन, बुद्धि आदि) के गुण हैं, यदि अन्तःकरण सुखी-दुःखी होता है ऐसा मानते हैं तो ऋषियों के वचनों के विरुद्ध होगा, इसलिए वैदिक सिद्धान्त के अनुसार यह अर्थ ठीक होगा- धर्म-अधर्म के जो संस्कार हैं वो मन में जमा होते हैं (सुख दुःख कि प्राप्ति मन के द्वारा आत्मा को होती है) ।**[अन्तःकरणं हि करणं साधनमान्तरिकं पुरुषस्य बहिष्करणवत्]** अन्तःकरण (मन, बुद्धि)ये जीवात्मा के साधन हैं बाह्य करणों के समान, **[यथा ह्यादानादीनि हस्तादिबहिष्करणस्य कर्मेन्द्रियजातस्य]** जैसे कि लेना-देना आदि कर्म हैं ये बाह्य इंद्रियों के कर्मेन्द्रियों के

सन्ति करणसामान्याद् यतो ह्यत्रैवाधीयन्तेऽनेनैव प्रतीयन्ते चेति तस्मान्न पुरुषे संगापत्तिः ।।२५।।

यद्येवं तर्ह्यलं विवेकेनेत्यत्रोच्यते -

गुणानां (गुणादीनां ?*) नात्यन्तबाधः ।।२६।।

(गुणानां-अत्यन्तबाधः-न) विवेकमन्तरेण तेषां धर्माधर्मसुखदुःखानामन्तःकरणगुणानां सतामप्यत्यन्तबाधो न भविष्यति किन्तु धर्माधर्मयोरदृष्टवशाद् यद्वा धर्माधर्मनिष्पन्नसंस्कारात् तत्फलयोः सुखदुःखयोरनुभूतिस्तु खल्वनिवार्या भविष्यति हीहजन्मनि परजन्मनि वा ।।२६।।

यतः -

गुण हैं [**यथा च रूपादीनि नेत्रादिबहिष्करणस्य ज्ञानेन्द्रियगुणस्य गुणाः सन्ति**] और जैसे रूपादि नेत्रादि बाह्य करणों के ज्ञानेन्द्रियों के गुण हैं [**तथैव धर्माधर्मसुखदुःखानि खल्वन्तःकरणस्योभयेन्द्रियात्मकस्य गुणाः सन्ति**] उसी प्रकार से धर्म-अधर्म और सुख-दुःख आदि भी अन्तःकरण मन आदि के गुण हैं जो कि उभय इंद्रिय है सुख-दुःख आदि का भोग करना मन का कर्म है न कि करना [**करणसामान्याद् यतो ह्यत्रैवाधीयन्तेऽनेनैव प्रतीयन्ते चेति तस्मान्न पुरुषे संगापत्तिः**] ये समस्त सुख दुःख मन आदि के द्वारा ही प्रतीत होते हैं इनके संस्कार मन में ही जमा होते हैं, साधन होने से। इसलिए संगापत्ति का दोष जीव में नहीं आएगा ।।२५।।

पूर्वपक्षी कहता है कि- यदि जीवात्मा असंग रहता है, उसको फिर विवेक प्राप्त करने कि कोई आवश्यकता ही नहीं है -

गुणानां (गुणादीनां?*) नात्यन्तबाधः ।।२६।।

सूत्रार्थ= तत्वज्ञान प्राप्त किए बिना धर्माधर्म, सुख दुःख गुणों का अत्यंत विनाश नहीं हो पाएगा।

[**(गुणानां-अत्यन्तबाधः-न) विवेकमन्तरेण तेषां धर्माधर्मसुखदुःखानामन्तःकरणगुणानां सतामप्यत्यन्तबाधो न भविष्यति**] विवेक प्राप्त किए बिना उन धर्म-अधर्म, सुख-दुःख जो अन्तःकरण के गुण बताए उनका अत्यंत विराम (विनाश) नहीं हो पाएगा किन्तु [**धर्माधर्मयोरदृष्टवशाद् यद्वा धर्माधर्मनिष्पन्नसंस्कारात् तत्फलयोः सुखदुःखयोरनुभूतिस्तु खल्वनिवार्या भविष्यति हीहजन्मनि परजन्मनि वा**] किन्तु धर्म-अधर्म का जो अदृष्ट के कारण से अथवा धर्म-अधर्म से जो उत्पन्न संस्कार हैं उनका जो फल है सुख दुःख इनकी अनुभूति निश्चित रूप से होगी ही, चाहे इस जन्म में हो चाहे परजन्म में हो ।।२६।।

यतः -क्योंकि

पञ्चावयवयोगात् सुखसंवित्तिः ।।२७।।

पञ्चावयवयोगात् सुखसंवित्तिः ।।२७।।

(पञ्चावयवयोगात्-सुखसंवित्तिः) निर्णयसाधनानामनुमानविषयकाणां पञ्चावयवानां योगात् प्रतिज्ञाहेतुदृष्टान्तोपनयनिगमनानां प्रवर्तनात् खलु भवति हि सुखसंवित्तिः सुखानुभूतिः । यथा सुखसंवित्तिर्धर्मफलं तथा दुःखसंवित्तिरधर्मफलमपि पञ्चावयवयोगात् सिध्यति ।।२७।।

तत्रानुमाने -

न सकृद् ग्रहणात् सम्बन्धसिद्धिः ।।२८।।

(न सकृद्ग्रहणात् सम्बन्धसिद्धिः) पुनःपुनर्ग्रहणात् पुनः पुनः कार्यकारणयोर्दर्शनात् कार्यकारणयोर्नैकस्मिन् देशे काले वा दर्शनात् किन्तु देशे देशे काले काले च तथैव दर्शनात् खलु

सूत्रार्थ= प्रतिज्ञा हेतु आदि पंचावयव के प्रयोग से धर्म का फल सुख और अधर्म का फल दुःख मिलता है, इसकी सिद्धि होती है।

[(पञ्चावयवयोगात्-सुखसंवित्तिः) निर्णयसाधनानामनुमानविषयकाणां पञ्चावयवानां योगात् प्रतिज्ञाहेतुदृष्टान्तोपनयनिगमनानां प्रवर्तनात् खलु भवति हि सुखसंवित्तिः सुखानुभूतिः] जो सत्यासत्य के निर्णय करने वाले साधन है उन अनुमान के विषय में जो पंचावयव प्रतिज्ञा, हेतु, दृष्टांत, उपनय और निगमन। उन पंचावयव के योग से जब व्यक्ति कुछ कर्म करता है तो उसको सुख संपत्ति सुख की अनुभूति होती है। **[यथा सुखसंवित्तिर्धर्मफलं तथा दुःखसंवित्तिरधर्मफलमपि पञ्चावयवयोगात् सिध्यति]** जैसे सुख कि अनुभूति धर्म का फल है और दुःख कि अनुभूति अधर्म का फल है, ये बात भी पंचावयव योग से सिद्ध होती है।।२७।।

तत्रानुमाने - अब अनुमान प्रमाण से संबन्धित विषय आरम्भ होता है-

न सकृद् ग्रहणात् सम्बन्धसिद्धिः ।।२८।।

सूत्रार्थ= किन्हीं दो वस्तुओं को एक बार साथ-साथ देखने से उन दोनों के सम्बंध की सिद्धि नहीं होती है।

[(न सकृद्ग्रहणात् सम्बन्धसिद्धिः) पुनःपुनर्ग्रहणात् पुनः पुनः कार्यकारणयोर्दर्शनात् कार्यकारणयोर्नैकस्मिन् देशे काले वा दर्शनात् किन्तु देशे देशे काले काले च तथैव दर्शनात् खलु कार्यकारणसम्बन्धसिद्धिरनुमाने निमित्तं भवति] बार-बार देखने से, बार-बार कार्य कारण को साथ-साथ देखने से, कार्य कारण की एक बार किसी में देख अथवा काल में देखने से सम्बन्धों की सिद्धि नहीं होती । भिन्न-भिन्न स्थानों पर समय-समय पर भी देखा। इस प्रकार बार-बार देखने से कार्य कारण के सम्बंध की सिद्धि अनुमान के निमित से हो जाती है।।२८।।

कार्यकारणसम्बन्धसिद्धिरनुमाने निमित्तं भवति ।।२८।।

सा हि -

नियतधर्मसाहित्यमुभयोरेकतरस्य वा व्याप्तिः ।।२९।।

(वा) अथवा (उभयोः-नियतधर्मसाहित्यम्) कार्यकारणयोर्नियतस्य धर्मस्य सहभावः (एकतरस्य व्याप्तिः) एकतरस्यानुमाने ज्ञाने विषये व्याप्तिर्भवति, यथा धूमाद् अग्नेः सिद्धिः-अग्नेर्वा धूमस्य प्रवर्तनम् ।।२९।।

ननु कार्यकारणयोर्नियतधर्मसाहित्यं व्याप्तिर्या खलूक्ता सा किं ताभ्यां कार्यकारणाभ्यां तत्त्वान्तरमस्तीत्याकांक्षायामुच्यते -

न तत्त्वान्तरं वस्तुकल्पनाप्रसक्तेः ।।३०।।

सा हि - वह सम्बंध सिद्धि-

नियतधर्मसाहित्यमुभयोरेकतरस्य वा व्याप्तिः ।।२९।।

सूत्रार्थ= कार्य और कारण के नियम पूर्वक साथ रहने पर उनमें से कार्य को देखकर कारण का ज्ञान कराने में जो नियम साधन बनता है, उसका नाम व्याप्ति है जैसे धुएँ से अग्नि का ज्ञान होता है।

[(वा) अथवा (उभयोः-नियतधर्मसाहित्यम्) कार्यकारणयोर्नियतस्य धर्मस्य सहभावः] अथवा इसको इस प्रकार से भी कह सकते हैं- कार्य कारण के नियत धर्म का साथ-साथ रहना **[(एकतरस्य व्याप्तिः) एकतरस्यानुमाने ज्ञाने विषये व्याप्तिर्भवति]** जैसे धुएं को देखकर अग्नि का अनुमान कर लेते हैं दोनों साथ-साथ रहते हैं एक को देखकर दूसरे का अनुमान कर लेते हैं इसमें व्याप्ति कारण होता है, **[यथा धूमाद् अग्नेः सिद्धिः-अग्नेर्वा धूमस्य प्रवर्तनम्]** जहां धुआँ होगा वहाँ अग्नि की सिद्धि होती है अथवा अग्नि से धुआँ की सिद्धि होती है ।।२९।।

एक प्रश्न है- कार्य कारण का नियत रूप से साथ-साथ रहना, इसका नाम है व्याप्ति। ये जो व्याप्ति है सम्बंध है इन दोनों में क्या ये कार्य कारण इन दोनों वस्तुओं से अलग कोई तीसरी वस्तु है? इस आकांक्षा पर कहते हैं-

न तत्त्वान्तरं वस्तुकल्पनाप्रसक्तेः ।।३०।।

सूत्रार्थ= व्याप्ति कार्य और कारण दो पदार्थों से अलग कोई तीसरा पदार्थ नहीं है, इसमें नई वस्तु की कल्पना करने का दोष आने से।

[(तत्त्वान्तरं न) व्याप्तिः खलु कार्यकारणाभ्यां तत्त्वान्तरं वस्त्वन्तरं ताभ्यां भिन्नं तृतीयं वस्तु

(तत्त्वान्तरं न) व्याप्तिः खलु कार्यकारणाभ्यां तत्त्वान्तरं वस्त्वन्तरं ताभ्यां भिन्नं तृतीयं वस्तु नास्ति । कुतः (वस्तुकल्पनाप्रसक्तेः) वस्तुकल्पनाप्रसंगदोषात्, न हि धर्मः कदाचिद् धर्मी भवति व्याप्तिस्तु धर्मः कार्यकारणयोः सहभावे नियतो धर्मः । तस्माद् व्याप्तिः कार्यकारणाभ्यां भिन्नं वस्त्वन्तरं नास्ति ।।३०।।

अवस्तुत्वे पुनः किंस्वरूपा व्याप्तिरित्यत्रोच्यते -

निजशक्त्युद्भवमित्याचार्याः ।।३१।।

(निजशक्त्युत्भवम्-इति-आचार्याः) निजशक्तेः कार्यकारणयोर्या निजा शक्तिरस्ति तस्या उद्भवमर्थात् कार्यकारणभावे प्रवृत्तयोः पदार्थयोः समानदेशकालवतोः कार्यकारणतामपन्नयोर्व्याप्ता या शक्तिस्तस्या उद्भवं व्याप्तिं मन्येऽहमितीत्थमेवानेके किलाचार्याः सांख्याचार्या मन्यन्ते ।।३१।।

नास्ति] ये व्याप्ति कार्य और कारण से भिन्न कोई तीसरी वस्तु नहीं है। **[कुतः क्यों? (वस्तुकल्पनाप्रसक्तेः) वस्तुकल्पनाप्रसंगदोषात्]** तीसरी वस्तु नाम से प्रसंग में दोष आ जाएगा, **[न हि धर्मः कदाचिद् धर्मी भवति व्याप्तिस्तु धर्मः कार्यकारणयोः सहभावे नियतो धर्मः]** एक नियम बताया-कि धर्म होता है वह कभी भी धर्मी नहीं होता (जो चीज किसी पर आश्रित है वह धर्म है। अग्नि धर्मी ''द्रव्य'' है धुआँ भी धर्मी है, इनमें जो सम्बंध है वह कोई वस्तु नहीं अपितु धर्म है)। **[तस्माद् व्याप्तिः कार्यकारणाभ्यां भिन्नं वस्त्वन्तरं नास्ति]** इसलिए व्याप्ति एक सम्बंध का नाम है, कार्य कारण से भिन्न कोई तीसरी वस्तु नहीं है।।३०।।

माना की व्याप्ति कोई स्वतंत्र वस्तु नहीं है, फिर वस्तु न होने पर व्याप्ति का सही स्वरूप क्या है? इस पर कहते हैं-

निजशक्त्युद्भवमित्याचार्याः ।।३१।।

सूत्रार्थ= कार्य और कारण द्रव्यों कि अपनी ही शक्ति कि उत्पत्ति व्याप्ति कहलाती है ऐसा सांख्य के अनेक आचार्य मानते हैं।

[(निजशक्त्युत्भवम्-इति-आचार्याः) निजशक्तेः कार्यकारणयोर्या निजा शक्तिरस्ति तस्या उद्भवमर्थात् कार्यकारणभावे प्रवृत्तयोः पदार्थयोः समानदेशकालवतोः कार्यकारणतामपन्नयोर्व्याप्ता या शक्तिस्तस्या उद्भवं व्याप्तिं मन्येऽहमितीत्थमेवानेके किलाचार्याः सांख्याचार्या मन्यन्ते] जो कार्य कारण की निज शक्ति है उस निजशक्ति का प्रकट हो जाना, अर्थात् कार्य कारण के रूप में जो प्रवृत्त पदार्थ हैं (धुआँ और अग्नि, लकड़ी और कुर्सी) ''ये दो कार्य कारण है ये इस प्रकार प्रवृत्त हो रहे है कि लकड़ी कारण बने और कुर्सी कार्य'' ऐसे दो पदार्थो में जो समान देश काल वाले हैं उसी स्थान पर कारण (लकड़ी), और कार्य (कुर्सी) है । ऐसे कार्य कारणता को प्राप्त हुए जो दो पदार्थ है उनमें जो व्याप्त है शक्ति। उन शक्ति के प्रकट होने वाली शक्ति को ही मैं मानता हूँ वही व्याप्ति है। ऐसा अनेक सांख्य पढ़ने-पढ़ाने वाले आचार्य मानते हैं (कि कार्य कारण कि जो अपनी शक्ति है वही प्रकट हो जाती है उसी का नाम व्याप्ति है)।।३१।।

आधेयशक्तियोग इति पञ्चशिखः ।।३२।।

(आधेयशक्तियोगः-इति पञ्चशिखः) आधारभूते हि कार्यकारणे तयोः कार्यकारणभाव आधेयः, आधेयस्य शक्तियोगः शक्तिसंयोगः समानदेशकालापेक्षः सम्बन्धो व्याप्तिरस्तीति पञ्चशिखो मन्यते ।।३२।।

न स्वरूपशक्तिनियमः पुनर्वादप्रसक्तेः ।।३३।।

(स्वरूपशक्तिनियमः-न) व्याप्तिः खलु निजशक्त्युद्भवः कार्यकारणशक्त्युद्भवो वा आधेयशक्तियोगो वोभयविधलक्षणलक्षिता भवितुमर्हति परन्तु स्वरूपशक्तिनियमो न, कार्यद्रव्यस्य कारणद्रव्यस्य च स्वरूपशक्तेर्नियमनं कार्यत्वं कारणत्वं हि तत्र द्रव्ये स्थितं देशकालमनपेक्ष्य वर्तमानं तत्तद्द्रव्यमात्रं कार्यत्वं कारणत्वं चाप्रादुर्भूतं व्याप्तिर्नास्ति । यतः (पुनर्वादप्रसक्तेः) पुनरुक्तिदोषप्रसंगात्, यथा घटस्य कार्यस्य देशकालावनपेक्ष्य मृत्तिकास्वरूपं मृत्तिकैव यथा मृत्तिकायाः कारणस्य देशकालावनपेक्ष्य घटस्वरूपं घट एव यथा धूमस्य कार्यस्य देशकालावनपेक्ष्याग्निस्वरूपमग्निरेव यथाग्नेः

आधेयशक्तियोग इति पञ्चशिखः ।।३२।।

सूत्रार्थ= पंचशिख आचार्य के मत में दो द्रव्यों में जो कार्य कारण भाव आश्रित है उसका नाम व्याप्ति है।

[(आधेयशक्तियोगः-इति पञ्चशिखः) आधारभूते हि कार्यकारणे तयोः कार्यकारणभाव आधेयः] (अब इस बात को नए प्रकार से कह रहे हैं- एक लकड़ी है जिससे कुर्सी बन चुकी है, तब कहा गया लकड़ी एक कार्य वस्तु है जो प्रकृति से उत्पन्न हुई, यही इसका कारण द्रव्य है) लकड़ी और कुर्सी ये दो द्रव्य हैं कारणभूत (आधारभूत) कार्यकारण आधारभूत है और जिस पर इन दोनों का संबंध टिका है वह आधेय(आश्रित) है, **[आधेयस्य शक्तियोगः शक्तिसंयोगः समानदेशकालापेक्षः सम्बन्धो व्याप्तिरस्तीति पञ्चशिखो मन्यते]** आधेय की शक्ति का संयोग होना उसी देश और उसी काल में (जब कुर्सी और लकड़ी दोनों उपस्थित हैं) ये कहना कि इन दोनों में संबंध है। यह जो सम्बंध बताया उसी का नाम व्याप्ति है ऐसा पञ्चशिख आचार्य का मत है।।३२।।

न स्वरूपशक्तिनियमः पुनर्वादप्रसक्तेः ।।३३।।

सूत्रार्थ= एक वस्तु के स्वरूप में व्याप्ति की परिभाषा नहीं बन पाती है, उसमें वस्तु के स्वरूप का पुनरुक्त दोष होने से।

[(स्वरूपशक्तिनियमः-न) व्याप्तिः खलु निजशक्त्युद्भवः कार्यकारणशक्त्युद्भवो वा आधेयशक्तियोगो वोभयविधलक्षणलक्षिता भवितुमर्हति परन्तु स्वरूपशक्तिनियमो न] व्याप्ति को किसी भी प्रकार से समझ सकते हैं निज शक्ति उद्भव (जो ेग३१ वे सूत्र में बताई), कार्य कारण शक्ति का उद्भव हो जाना अथवा आधेय शक्ति के योग से। दोनों में से किसी भी प्रकार से व्याप्ति को समझ सकते हैं, परंतु स्वरूप शक्ति का नियम नहीं है, **[कार्यद्रव्यस्य कारणद्रव्यस्य च स्वरूपशक्तेर्नियमनं कार्यत्वं कारणत्वं हि तत्र द्रव्ये स्थितं देशकालमनपेक्ष्य वर्तमानं तत्तद्द्रव्यमात्रं कार्यत्वं कारणत्वं चाप्रादुर्भूतं व्याप्तिर्नास्ति]** कार्य द्रव्य का और कारण द्रव्य का जो स्वरूप शक्ति का नियम है वो है कार्यत्व और कार्णत्व। उस द्रव्य में जो देश

कारणस्य देशकालावनपेक्ष्य धूमस्वरूपं धूम एवेति कथने पुनरुक्तिरेव वस्तुनो भवति। इदं सूत्रमनिरुद्धवृत्तौ विज्ञानभिक्षुभाष्ये चान्यथाव्याख्यातं तत्र शक्तो मल्लः, घटः कलशः, इति पर्यायत्वमाश्रित्य पुनरुक्तिर्दर्शिता नह्यत्र पर्यायत्वपुनरुक्तिरभीष्टाऽपि तु स्वरूपपुनरुक्तिदोषोऽभीष्टः ।।३३।।

तथा -

विशेषणानर्थक्यप्रसक्तेः ।।३४।।

(विशेषणानर्थक्यप्रसक्तेः) स्वरूपशक्तिनियमो व्याप्तिरितिमन्तव्ये विशेषणस्यानर्थकता प्रसज्यते, मल्लः शक्तः, इति कथनेन किं शक्तिसिद्धकार्यमन्तरेण, यत् कारणं वस्तु कारणं यत् काय५ वस्तु कार्यमिति कारणविशेषणं कार्यविशेषणं व्यर्थं स्यात् यावता कार्यकारणतायाः खलु देशे काले च सहभावप्रसंगो न भवेत् ।।३४।।

काल को बिना अपेक्षा किए वर्तमान है, केवल वही-वही द्रव्य केवल एक ही वस्तु को देखेंगे तो उस एक वस्तु में कार्यत्व और कार्णत्व उत्पन्न नहीं होगा वह अपेक्षा करने पर ही होगा। [**यतः (पुनर्वादप्रसक्तेः) पुनरुक्तिदोषप्रसंगात्**] यदि एक ही वस्तु में व्याप्ति कहेंगे तो वहाँ पुनरुक्ति दोष आएगा, **यथा घटस्य कार्यस्य देशकालावनपेक्ष्य मृत्तिकास्वरूपं मृत्तिकैव** जैसे घट कार्य का देश काल की अपेक्षा न करते हुए केवल मिट्टी ही हो एक ही द्रव्य होने से तत समय व्याप्ति नहीं होगी, तब मिट्टी का स्वरूप केवल मिट्टी ही है [**यथा मृत्तिकायाः कारणस्य देशकालावनपेक्ष्य घटस्वरूपं घट एव**] अथवा जैसे मिट्टी कारण कि देश काल की अपेक्षा किए बिना केवल घड़े को एक ही वस्तु के रूप में देखें तो वह एक ही वस्तु है (घड़े को घड़े ही कह सकते है कारण नहीं) [**यथा धूमस्य कार्यस्य देशकालावनपेक्ष्याग्निस्वरूपमग्निरेव यथाग्नेः कारणस्य देशकालावनपेक्ष्य धूमस्वरूपं धूम एवेति कथने पुनरुक्तिरेव वस्तुनो भवति**] ऐसे ही धुएँ रूपी कार्य को जो कि देश काल की अपेक्षा न करके अग्नि के स्वरूप को देखें तो वह केवल अग्नि ही है, ऐसे ही अग्नि कारण रूप द्रव्य है उसके कारण कि अपेक्षा किए बिना केवल धुएँ को देखना इस कथन में केवल वस्तु कि पुनरुक्ति ही है सम्बंध की सिद्धि नहीं होती है। [**इदं सूत्रमनिरुद्धवृत्तौ विज्ञानभिक्षुभाष्ये चान्यथाव्याख्यातं**] यहाँ इस सूत्र को अनिरुद्ध वृत्ती में और विज्ञानभिक्षु भाष्य में ठीक से व्याख्या नहीं की गई [**तत्र शक्तो मल्लः, घटः कलशः, इति पर्यायत्वमाश्रित्य पुनरुक्तिर्दर्शिता**] इन्होनें जो पुनरुक्ति दिखाई वो एक ही वस्तु के दो पर्यायवाची शब्द दिखाकर के की है जैसे की पहलवान ताकतवर है, घड़ा है, कलश है, इस प्रकार से पर्यायवाची शब्दों से पुनरुक्ति दोष दिखाया है [**नह्यत्र पर्यायत्वपुनरुक्तिरभीष्टाऽपि तु स्वरूपपुनरुक्तिदोषोऽभीष्टः**] यहाँ पर्यायवाची शब्द दिखाकर पुनरुक्ति दोष दिखाना उचित नहीं है, यहाँ सूत्रकार को दिखाना अभीष्ट नहीं है, सूत्रकार तो वस्तु स्वरूप में पुनरुक्ति दोष दिखाना चाहता है ।।३३।।

तथा -

विशेषणानर्थक्यप्रसक्तेः ।।३४।।

अपरञ्च -

पल्लवादिष्वनुपपत्तेश्च ।।३५।।

(पल्लवादिषु-अनुपपत्तेः-च) कार्यकारणयोः स्वरूपशक्तिनियमो व्याप्तिरिति मन्तव्येऽपरोऽयं दोषो यत् पल्लवादिषु दृश्यमानेषु वृक्षादिरनुमीयते तत्र स्वरूपशक्तिमात्रं कार्यस्य स्वस्मात् कारणात् पृथग्भूतं सदपि विद्यते तदा छिन्नेषु पल्लवादिषु वृक्षोऽत्रेत्यनुमानस्यायुक्तता स्यान्न तत्र वृक्षादयः सन्ति केवलं पल्लवादय एव सन्ति। तस्मान्न स्वरूपशक्तिनियमो व्याप्तिरस्ति ।।३५।।

किन्तु -

सूत्रार्थ= स्वरूप शक्ति ही (एक वस्तु में) व्याप्ति है, इस मान्यता में कार्य अथवा कारण ये विशेषण शब्द व्यर्थ सिद्ध होगा।

[(विशेषणानर्थक्यप्रसक्तेः) स्वरूपशक्तिनियमो व्याप्तिरितिमन्तव्ये विशेषणस्यानर्थकता प्रसज्यते, मल्लः शक्तः, इति कथनेन किं शक्तिसिद्धकार्यमन्तरेण] अगर ये माना जाए की एक ही वस्तु में व्याप्ति है और ऐसा कोई व्याप्ति माने भी तो विशेषण की अनर्थकता होगी जैसे कि ये ''पहलवान बलवान है'' ऐसा कहने से क्या प्रयोजन सिद्ध हो रहा है? जब तक आप शक्ति से सिद्ध होने वाला कोई कार्य न बताए (इसलिए स्वरूप शक्ति में व्याप्ति का नियम नहीं बनता), **[यत् कारणं वस्तु कारणं यत् काय५ वस्तु कार्यमिति कारणविशेषणं कार्यविशेषणं व्यथ५ स्यात्]** कारण वस्तु को कहा जाए कि वह कारण है ऐसे ही कार्य वस्तु को कार्य कहा जाए तो कार्य विशेषण और कारण विशेषण लगाना व्यर्थ है **[यावता कार्यकारणतायाः खलु देशे काले च सहभावप्रसंगो न भवेत्]** जब तक उस देश काल में कार्य कारण सा सहभाव प्रसंग न हो, तब तक एक ही वस्तु में विशेषण लगाना व्यर्थ है ।।३४।।

अपरञ्च -

पल्लवादिष्वनुपपत्तेश्च ।।३५।।

सूत्रार्थ=वृक्ष से कटे हुए पत्तों को देखकर उन पत्तों से वृक्ष का अनुमान नहीं होता, इसलिए एक वस्तु के स्वरूप में व्याप्ति नहीं बनती है।

[(पल्लवादिषु-अनुपपत्तेः-च) कार्यकारणयोः स्वरूपशक्तिनियमो व्याप्तिरिति मन्तव्येऽपरोऽयं दोषो यत् पल्लवादिषु दृश्यमानेषु वृक्षादिरनुमीयते] कार्य कारण में स्वरूप शक्ति का नियम व्याप्ति है, यदि ऐसा माना जाए तो इस मान्यता में एक और दोष आता है कि पत्ते आदि केवल देखने पर वृक्ष आदि है ऐसा अनुमान होगा जो कि गलत होगा **[तत्र स्वरूपशक्तिमात्रं कार्यस्य स्वस्मात् कारणात् पृथग्भूतं सदपि विद्यते]** कार्य का वहाँ स्वरूप शक्ति मात्र है अपने कारण वृक्ष से कट करके पृथक-पृथक होकर के केवल पत्ते ही दिख रहे हैं, इसलिए अनुमान ठीक नहीं है **[तदा छिन्नेषु पल्लवादिषु वृक्षोऽत्रेत्यनुमानस्यायुक्तता स्यान्न तत्र वृक्षादयः सन्ति केवलं पल्लवादय एव सन्ति]** इसलिए केवल वहाँ पत्ते देखकर ये अनुमान लगाना की वृक्ष भी है, ये अनुचित है। वहाँ वृक्ष आदि कुछ नहीं है केवल पत्ते ही पत्ते हैं इसलिए एक वस्तु में स्वरूप शक्ति में व्याप्ति का नियम नहीं बनता। **[तस्मान्न स्वरूपशक्तिनियमो व्याप्तिरस्ति]** इसलिए स्वरूप

आधेयशक्तिसिद्धौ निजशक्तियोगः समानन्यायात् ।।३६।।

(आधेयशक्तिसिद्धौ) आधेयशक्तियोगो व्याप्तिरुक्ता तत्राधेयशक्तिसिद्धौ कार्यकारणयोराधारयोराधेयशक्तिः कार्यकारणयोर्नियतधर्मसहभावो व्याप्तिस्तत्सिद्धौ (निजशक्तियोगः) निजशक्तियोगः कार्यकारणयोः कार्यत्वकारणत्वरूपा निजा शक्तिर्व्याप्तिरस्ति हि । कुतः (समानन्यायात्) कार्यकारणयोः सहभावस्य स्वीकारात् खलु व्याप्तिलक्षणं न दोषयुक्तम् ।।३६।।

धर्मरूपकर्मणः फलसिद्धावनुमानस्य स्वरूपमुक्तं यदनुमानं लिंगलिंगिनावभिलक्ष्य प्रवर्तते । अधुना तत्रैव शब्दप्रमाणं शब्दार्थावधिकृत्य प्रसिध्यति तत्र शब्दार्थयोः कः सम्बन्ध इत्यत्रोच्यते -

वाच्यवाचकभावः सम्बन्धः शब्दार्थयोः ।।३७।।

शक्ति का नियम व्याप्ति नहीं है एक वस्तु में व्याप्ति नहीं होती ।।३५।।

किन्तु -

आधेयशक्तिसिद्धौ निजशक्तियोगः समानन्यायात् ।।३६।।

सूत्रार्थ= व्याप्ति के रूप में आधेय शक्ति का होना और कार्य कारण की निजशक्ति का होना, ये दोनों बातें ठीक हैं दोनों का उत्तर ठीक है।

[**(आधेयशक्तिसिद्धौ) आधेयशक्तियोगो व्याप्तिरुक्ता तत्राधेयशक्तिसिद्धौ कार्यकारणयोराधारयोराधेयशक्तिः कार्यकारणयोर्नियतधर्मसहभावो व्याप्तिस्तत्सिद्धौ**] आपने आधेय शक्ति का युक्त होना व्याप्ति बताया था वहाँ आधेय शक्ति का व्याप्ति के रूप में सिद्ध हो जाने पर कार्य कारण दोनों वस्तुए आधार थीं और आधेय शक्ति उन पर आश्रित थी, कार्य कारण का साथ रहना यह व्याप्ति है यह भी सिद्ध हो गया [**(निजशक्तियोगः) निजशक्तियोगः कार्यकारणयोः कार्यत्वकारणत्वरूपा निजा शक्तिर्व्याप्तिरस्ति**] हि ऐसी स्थिति में जैसे उपर बताया था -उस स्थिति में निज शक्ति का होना अर्थात् कार्य कारण की निजशक्ति को व्याप्ति का नाम दें तो ठीक है। [**कुतः (समानन्यायात्) कार्यकारणयोः सहभावस्य स्वीकारात् खलु व्याप्तिलक्षणं न दोषयुक्तम्**] क्योंकि कार्य कारण का दोनों का साथ-साथ रहना ये व्याप्ति के स्वरूप में स्वीकार किया गया था ये दोष युक्त नहीं है।।३६।।

धर्म रूपी कर्म की सिद्धि में अनुमान का रूप कह दिया (कि धर्म करेंगे तो सुख मिलेगा, अधर्म करेंगे तो दु:ख मिलेगा)अनुमान प्रमाण लिंग और लिंगी के आधार पर चलता है। इसी प्रकार से इस विषय में शब्द प्रमाण कि बात करते हैं वो भी शब्द और अर्थ के आधार पर प्रसिद्ध होता है, शब्द और अर्थ में क्या संबंध है इस विषय में बताएँगे-

वाच्यवाचकभावः सम्बन्धः शब्दार्थयोः ।।३७।।

सूत्रार्थ=शब्द और उसके अर्थ में वाच्य-वाचक सम्बंध होता है।

(शब्दार्थयोः सम्बन्धः-वाच्यवाचकभावः) शब्दार्थयोः सम्बन्धः खलु वाच्यवाचकभावोऽस्ति । तत्र शब्दो वाचकोऽर्थो वाच्यः ।।३७।।

तस्य वाच्यवाचकसम्बन्धस्य सिद्धेरुपायमाह -

त्रिभिः सम्बन्धसिद्धिः ।।३८।।

(त्रिभिः सम्बन्धसिद्धिः) त्रिभिः प्रकारैः-आप्तोपदेशात्, वृद्धव्यवहारात्, प्रसिद्धपदसहचारात् सम्बन्धसिद्धिः शब्दार्थयोः सम्बन्धसिद्धिर्भवति । आप्तोपदेशात्-सास्नावती गौः। वृद्धव्यहारात्-वत्स गामानय दोहनाय । प्रसिद्धपदसहचारात्-गुरुर्गां दोग्धि ।।३८।।

ननु शब्दस्य प्रामाण्यं क्रियार्थमेव यद्वा वस्तुस्वरूपप्रदर्शनार्थमपि । अत्रोच्यते -

न कार्ये नियम उभयथा दर्शनात् ।।३९।।

[**(शब्दार्थयोः सम्बन्धः-वाच्यवाचकभावः) शब्दार्थयोः सम्बन्धः खलु वाच्यवाचकभावोऽस्ति**] शब्द और अर्थ इनमें जो संबंध है वह है वाच्य वाचक सम्बंध। [**तत्र शब्दो वाचकोऽर्थो वाच्यः**] जिस वस्तु के लिए शब्द उच्चारण किया गया (वो उसका नाम है अथवा शब्द है) यहाँ शब्द है वाचक और अर्थ है वाच्य (कहने वाला = वाचक, कहने योग्य पदार्थ ये है वाच्य)।।३७।।

उस वाच्य वाचक सम्बंध कि सिद्धि का उपाय बताते हैं -

त्रिभिः सम्बन्धसिद्धिः ।।३८।।

सूत्रार्थ= तीन प्रकार से शब्द और अर्थ के सम्बंध का ज्ञान होता है, आप्तों के उपदेश से, वृद्धों के व्यवहार से, प्रसिद्ध पदों के सहचार से।

[**(त्रिभिः सम्बन्धसिद्धिः) त्रिभिः प्रकारैः-आप्तोपदेशात्, वृद्धव्यवहारात्, प्रसिद्धपदसहचारात् सम्बन्धसिद्धिः शब्दार्थयोः सम्बन्धसिद्धिर्भवति**] तीन प्रकार से सम्बंध कही सिद्धि होती है एक तो आप्तोप्देश (अनुभवी व्यक्तियों ने जो सिखाया बताया), वृद्धव्यवहार= वयोवृद्ध व्यक्तियों का व्यवहार, प्रसिद्ध शब्द के साथ किसी अन्य का व्यवहार होने से उन शब्द और अर्थ के सम्बंध की जानकारी हमें हो जाती है। [**आप्तोपदेशात्-सास्नावती गौः**] किसी ने पूछा गाय कैसी होती है? किसी आप्त ने गाय के (गलकम्बल वाली) लक्षण बता दिये। [**वृद्धव्यहारात्-वत्स गामानय दोहनाय**] बड़ों के व्यवहार से भी हमें पता चल जाता है जैसे-जाओ गाय को लेके आओ दूध दोहेंगे। [**प्रसिद्धपदसहचारात्-गुरुर्गां दोग्धि**] प्रसिद्ध शब्द के साथ व्यवहार होने से =गुरुजी गाय का दूध निकाल रहे हैं।।३८।।

एक प्रश्न है- शब्द की जो प्रामाणिकता है वह क्रियाओं को बताने के लिए ही सीमित है अथवा वस्तु

(कार्ये नियमः-न) शब्दस्य प्रामाण्यं क्रियार्थमेवास्तीति नियमो न । यतः (उभयथा दर्शनात्) शब्दस्य मन्त्रात्मकस्य क्रियार्थत्वं वस्तुस्वरूपप्रदर्शनार्थत्वं चोभयथा प्रयोजनं दृश्यते ''कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः'' (यजु० ४०.२) इति क्रियाविधानम् ''अग्निर्होता कविक्रतुः सत्यश्चित्रः श्रवस्तमः'' (ऋ०र १.१.३) ''सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'' (तै० उ० २.१.१) इति स्वरूपवर्णनम् ।।३९।।

लोके तु व्यवहारेण शब्दा ज्ञानसम्बन्धाः, कथं हि वैदिकशब्दानामर्थप्रतीतिः स्यादित्यत्रोच्यते -

लोक (वद्) व्युत्पन्नस्य * वेदार्थप्रतीतिः ।।४०।।

(लोकवत्-व्युत्पन्नस्य वेदार्थप्रतीतिः) लोके यथा लौकिकशब्देषु व्युत्पन्नो जनो विज्ञातवाच्यवाचकत्वसम्बन्धो लौकिकानां शब्दानामर्थान् ज्ञातुं शक्नोति तथैव वैदिकशब्देषु व्युत्पन्नो

के स्वरूप को बताने में भी शब्द को प्रमाण माना जाता है? इस प्रश्न के उत्तर में कहते हैं-

न कार्ये नियम उभयथा दर्शनात् ।।३९।।

सूत्रार्थ= शब्द प्रमाण केवल क्रियाओं का ही विधान करे ऐसा नियम नहीं है, शब्द प्रमाण में क्रिया विधान और वस्तु का स्वरूप दोनों देखा जाने से।

[**(कार्ये नियमः-न) शब्दस्य प्रामाण्यं क्रियार्थमेवास्तीति नियमो**] न शब्द प्रमाण केवल क्रियाओं को बताने तक सीमित है, ऐसा नियम नहीं है। [**यतः क्योंकि (उभयथा दर्शनात्) शब्दस्य मन्त्रात्मकस्य क्रियार्थत्वं वस्तुस्वरूपप्रदर्शनार्थत्वं चोभयथा प्रयोजनं दृश्यते**] शब्द क्रियाओं को भी बताता है और वस्तुओं के स्वरूप को भी बताता है क्योंकि मंत्रात्मक जो शब्द है उसका प्रयोजन केवल क्रियाओं का बताना मात्र नहीं है अपितु वस्तु के स्वरूप को भी बताना है ऐसा दोनों प्रकार का दिख रहा है। जैसे कि उदाहरण दिया- [**''कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः'' (यजु० ४०.२) इति क्रियाविधानम्**] शब्द प्रमाण में ये क्रिया का विधान किया कि मनुष्य को कर्म करते हुए सौ वर्षों तक जीने कि इच्छा करनी चाहिए । अब वस्तु का स्वरूप बताते हैं- [**''अग्निर्होता कविक्रतुः सत्यश्चित्रः श्रवस्तमः''(ऋ०र १.१.३)**] ईश्वर अग्नि स्वरूप है, कवि है विद्वान है, कर्मशील है, वह सत्यस्वरूप है, विचित्र है, सबकी सुनने वाला है [**''सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'' (तै० उ० २.१.१)**] ईश्वर सत्य है, ज्ञानवान है, अनंत है व्यापक है [**इति स्वरूपवर्णनम्**] यह वस्तु का स्वरूप वर्णन हुआ ।।३९।।

लोक में तो व्यवहार से सम्बन्धों का पता चल जाता है, अब वैदिक शब्दों का अर्थ कैसे पता चलेगा इसका उत्तर देते हैं-

लोक (वद्) व्युत्पन्नस्य * वेदार्थप्रतीतिः ।।४०।।

सूत्रार्थ= जैसे लौकिक शब्दार्थ सम्बंध को जानने वाला व्यक्ति लौकिक शब्दों को सुनकर उनका

जनो विज्ञातवाच्यवाचकत्वसम्बन्धो वेदार्थं वैदिकशब्दानामर्थानपि प्रत्येति वाच्यवाचकत्वसम्बन्धसामान्यात् ।।४० ।।

लोकवद् व्युत्पन्नस्य वेदार्थप्रतीतिरुच्यते भवतु वेदेऽपि व्युत्पन्नस्य वेदार्थप्रतीतिः, परन्तु वेदे व्युत्पन्नता भवेत् कथम् ? लोके तु त्रिभिरुपायैराप्तोपदेशाद् वृद्धव्यवहारात् प्रसिद्धपदसहचाराद् भविष्यति लौकिकशब्देषु मनुष्यस्य व्युत्पन्नता किन्तु वेदे -

न त्रिभिरपौरुषेयत्वाद् वेदस्य तदर्थस्याप्यतीन्द्रियत्वात् ।।४१ ।।

(वेदस्य-अपौरुषेयत्वात्) वेदस्यामनुष्यकृतत्वात् (तदर्थस्य-अतीन्द्रियत्वात्-अपि) पुनश्च वेदार्थस्याप्रत्यक्षत्वादपि (त्रिभिः-न) त्रिभिरुपायैराप्तोपदेशवृद्धव्यवहारप्रसिद्ध पदसहचारैः सह सम्बन्धो

अर्थ जान लेता है, वैसे ही वैदिक शब्दार्थ सम्बंध को जानने वाला व्यक्ति शब्दों को सुनकर उनका अर्थ जान लेता है।

[(लोकवत्-व्युत्पन्नस्य वेदार्थप्रतीतिः) लोके यथा लौकिकशब्देषु व्युत्पन्नो जनो विज्ञातवाच्यवाचकत्वसम्बन्धो लौकिकानां शब्दानामर्थान् ज्ञातुं शक्नोति] जैसे लोक में लौकिक शब्दों में विशेषज्ञ व्यक्ति वाच्य वाचक संबंध को जान लेता है और लौकिक सम्बन्धों के अर्थों को जानने में समर्थ हो जाता है **[तथैव वैदिकशब्देषु व्युत्पन्नो जनो विज्ञातवाच्यवाचकत्वसम्बन्धो वेदार्थं वैदिकशब्दानामर्थानपि प्रत्येति वाच्यवाचकत्वसम्बन्धसामान्यात्]** वैसे ही वैदिक शब्दों के जानकार व्यक्ति इन वैदिक शब्दों का विशेषज्ञ होता है वह वैदिक शब्दों के अर्थों को जानने में समर्थ हो जाता है वैदिक शब्दों का भी अर्थों के साथ वाच्य वाचक संबंध होने से ।।४० ।।

लोकवत् सांसारिक शब्दार्थ में जो जानकार व्यक्ति है वैसे ही जो वेद में जानकार होगा वो वेदार्थ को जानने में विशेषज्ञ हो जाएगा। परंतु प्रश्न है कि वेद में व्यक्ति कुशल होगा कैसे? लोक में तो व्यक्ति तीन उपायों से व्यक्ति कुशल बन जाएगा आप्तोपदेश से, वृद्ध व्यक्तियों के व्यवहार से, प्रसिद्ध पद के सहचार से लौकिक शब्दों में मनुष्य की कुशलता हो जाती है। किन्तु वेद में कैसे होगा?

न त्रिभिरपौरुषेयत्वाद् वेदस्य तदर्थस्याप्यतीन्द्रियत्वात् ।।४१ ।।

सूत्रार्थ= पूर्वपक्षी कहता है- पूर्वोक्त तीनों उपायों से वेद के अर्थ का ज्ञान नहीं हो सकता, क्योंकि वेद मनुष्य कृत नहीं है, और वेद का अर्थ भी अप्रत्यक्ष है।

[(वेदस्य-अपौरुषेयत्वात्) वेदस्यामनुष्यकृतत्वात् (तदर्थस्य-अतीन्द्रियत्वात्-अपि) पुनश्च वेदार्थस्याप्रत्यक्षत्वादपि (त्रिभिः-न) त्रिभिरुपायैराप्तोपदेशवृद्धव्यवहार- प्रसिद्ध पदसहचारैः सह सम्बन्धो न भवति पुनः कथं वैदिकशब्देषु स्याद् व्युत्पन्नो जनः] पूर्वपक्षी कहता है-वेद किसी मनुष्य ने तो बनाया नहीं और फिर उसका अर्थ भी अप्रत्यक्ष है (उसके उपदेश का अर्थ अप्रत्यक्ष रहता है) वेद का आप्तोपदेश, वृद्ध व्यवहार और प्रसिद्ध पद सहचार ऐसा कोई सम्बंध मनुष्य को बनाता नहीं, फिर कैसे वैदिक शब्दों में

न भवति पुनः कथं वैदिकशब्देषु स्याद् व्युत्पन्नो जनः, न स्याद् व्युत्पन्न इत्यर्थः। इति पूर्वपक्षोक्तिः ।।४१।।

अथ समाधत्ते पूर्वं वेदार्थस्यातीन्द्रियत्वे समाधानमुच्यते -

न यज्ञादेः स्वरूपतो धर्मत्वं वैशिष्ट्यात् ।।४२।।

(न) वेदार्थस्यातीन्द्रियत्वं नास्ति (यज्ञादेः) यज्ञदानाध्ययनानाम् (वैशिष्ट्यात्) विशिष्टविधिपूर्वकानुष्ठानात् (स्वरूपतः-धर्मत्वम्) स्वरूपतस्तत्तद्व्यवहारेण प्रत्यक्षतो धर्मत्वं धर्मफलमुपलभ्यते हि, तस्माद् वेदार्थो नातीन्द्रियः ।।४२।।

यच्चोक्तमपौरुषेयत्वाद् वेदस्य त्रिभिः सह सम्बन्धाभावाद् वैदिकशब्देषु मनुष्यस्य व्युत्पत्तिर्न स्यात्। अत्र प्रतिविधीयते -

निजशक्तिर्व्युत्पत्त्या व्यवच्छिद्यते ।।४३।।

व्यक्ति कुशल बनेगा?, [**न स्याद् व्युत्पन्न इत्यर्थः**] किसी भी प्रकार से व्यक्ति वेद में कुशल नहीं होगा। ये पूर्वपक्ष का कथन हुआ।।४१।।

सिद्धांती कहता है- वेद का अर्थ अतीन्द्रिय है, इसका पहले समाधान करते हैं-

न यज्ञादेः स्वरूपतो धर्मत्वं वैशिष्ट्यात् ।।४२।।

सूत्रार्थ= वेदार्थ अप्रत्यक्ष नहीं है, यज्ञ आदि शुभ कर्मों का अनुष्ठान करने से स्वतः ही सुख शान्ति धर्म कि प्राप्ति होने से।

[**(न) वेदार्थस्यातीन्द्रियत्वं नास्ति**] वेद का अर्थ अतीन्द्रिय नहीं है, बहुत सा प्रत्यक्ष भी है जैसे- [**(यज्ञादेः) यज्ञदानाध्ययनानाम् (वैशिष्ट्यात्) विशिष्टविधिपूर्वकानुष्ठानात्**] वेद में बताया गए कर्म जैसे यज्ञ करना, दान देना, अध्ययन करना आदि कर्मों का विशेष विधिपूर्वक अनुष्ठान किया जाए तो इनका प्रत्यक्ष फल दिखता है [**(स्वरूपतः-धर्मत्वम्) स्वरूपतस्तत्तद्व्यवहारेण प्रत्यक्षतो धर्मत्वं धर्मफलमुपलभ्यते हि, तस्माद् वेदार्थो नातीन्द्रियः**] विधि पूर्वक अनुष्ठान करने पर उस-उस स्वरूप का ठीक-ठीक व्यवहार करने पर प्रत्यक्ष रूप से उन-उन कर्मों का धर्म फल मिलता ही है, इसलिए वेदार्थ अतीन्द्रिय नहीं है ।।४२।।

[**यच्चोक्तमपौरुषेयत्वाद् वेदस्य त्रिभिः सह सम्बन्धाभावाद् वैदिकशब्देषु मनुष्यस्य व्युत्पत्तिर्न स्यात् । अत्र प्रतिविधीयते -**] सिद्धांती और आगे कहता है कि- जो आपने आरोप लगाया था कि वेद अपौरुषेय होने से मनुष्य का तीन उपायों से वैदिक शब्दार्थ सम्बंध अभाव रहेगा (वैदिक शब्दों को तीन उपायों से नहीं जान पाएगा), इसलिए वैदिक शब्दों में मनुष्य की कुशलता कैसे होगी अर्थात नहीं होगी। इस बात का यहाँ खंडन करते हैं-

(निजशक्तिः-व्युत्पत्त्या व्यवच्छिद्यते) अपौरुषयत्वेऽपि वेदस्य वैदिकशब्दानामर्थे निजशक्तिः स्वाभाविकी शक्तिरस्ति, शब्दो न ह्यर्थमन्तरेण भवति ''शब्दार्थसम्बन्धो नित्यः'' (महाभाष्ये) शब्दैः सह खल्वर्थसम्बन्धेनावश्यं भाव्यमेव स्वाभाविकी साऽर्थशक्तिर्व्युत्पत्त्या व्यवच्छिद्यते विशेषतोऽवच्छिद्यते सम्बध्यते तद्व्युत्पत्त्या मनुष्योऽपि व्युत्पन्नो वेदार्थज्ञाने भवति, सा चादिमहर्षिभिरध्यात्मप्रत्यक्षेण साक्षात्कृता पुनश्च नैरुक्तशैल्या निर्वचनेन शिष्येभ्यो विश्लिष्य ज्ञाप्यते। तस्मान्न दोषः।।४३।।

एवम् -

योग्यायोग्येषु प्रतीतिजनकत्वात् तत्सिद्धिः ।।४४।।

(योग्यायोग्येषु प्रतीतिजनकत्वात्) इन्द्रिययोग्येषु लौकिकशब्दार्थेषु तथेन्द्रियायोग्येष्वतीन्द्रियेषु वैदिकशब्दार्थेषु प्रतीतिजनकत्वाज्ज्ञानजनकत्वसाम्यात् (तत्सिद्धिः) व्युत्पत्तिसिद्धिर्भवति यया वेदार्थज्ञाने

निजशक्तिर्व्युत्पत्त्या व्यवच्छिद्यते ।।४३।।

सूत्रार्थ= शब्दों के अर्थो को प्रकट करने कि जो अपनी शक्ति है वह ईश्वर के द्वारा दी गई है, वह शक्ति व्युत्पत्ति के माध्यम से मनुष्य के साथ जुड़ जाती है फिर वह वेदार्थ को समझने में कुशल हो जाता है।

[**(निजशक्तिः-व्युत्पत्त्या व्यवच्छिद्यते) अपौरुषयत्वेऽपि वेदस्य वैदिकशब्दानामर्थे निजशक्तिः स्वाभाविकी शक्तिरस्ति**] वेद के अपौरुषेय होने पर भी वैदिक शब्दों की अर्थ के प्रकट करने में शब्दों की स्वाभाविक शक्ति है (जिससे मनुष्य कुशल हो जाएगा), [**शब्दो न ह्यर्थमन्तरेण भवति**] कोई भी शब्द अर्थ के विना नहीं होता [**''शब्दार्थसम्बन्धो नित्यः''**] व्याकरण महाभाष्य में बताया कि ''शब्द अर्थ सम्बन्ध नित्य है'' [**(महाभाष्ये) शब्दैः सह खल्वर्थसम्बन्धेनावश्यं भाव्यमेव**] शब्द के साथ अर्थ का सम्बन्ध अवश्य ही होना चाहिए [**स्वाभाविकी साऽर्थशक्तिर्व्युत्पत्त्या व्यवच्छिद्यते विशेषतोऽवच्छिद्यते सम्बध्यते तद्व्युत्पत्त्या मनुष्योऽपि व्युत्पन्नो वेदार्थज्ञाने भवति**] शब्दों में जो स्वाभाविकी अर्थ शक्ति है वह व्युत्पत्ति के माध्यम से मनुष्य उस शब्दार्थ के साथ जुड़ जाता है, उस व्युत्पत्ति की सहायता से मनुष्य भी वेद का अर्थ जानने में कुशल हो जाता है, [**सा चादिमहर्षिभिरध्यात्मप्रत्यक्षेण साक्षात्कृता**] शब्दों की जो निज शक्ति है वह आरंभ के जो चार ऋषि हुए थे उनके अध्यात्म प्रत्यक्ष के द्वारा साक्षात की गई [**पुनश्च नैरुक्तशैल्या निर्वचनेन शिष्येभ्यो विश्लिष्य ज्ञाप्यते**] फिर उन्होने निरुक्त शैली से निर्वाचन करके अपने शिष्यों को विश्लेषण करके बता दिया। [**तस्मान्न दोषः**] इसलिए इसमें कोई दोष नहीं है ।।४३।।

एवम् -

योग्यायोग्येषु प्रतीतिजनकत्वात् तत्सिद्धिः ।।४४।।

सूत्रार्थ= योग्य= जो प्रत्यक्ष है लौकिक अर्थ वाले हैं, अयोग्य = जो इंद्रियों से नहीं जाने जाते परोक्ष पदार्थ हैं, उनमें भी दोनों प्रकार के अर्थो को बताने में शब्दों की ज्ञान उत्पादकत्व होने से वैदिक शब्दों का अर्थ भी पता चल जाता है।

मनुष्यो व्युत्पन्नो जायते ।।४४।।

यद्यपि वैदिकशब्दानामर्थे स्वाभाविकी शक्तिरस्ति तथापि -

न नित्यत्वं वेदानां कार्यत्वश्रुतेः ।।४५।।

(वेदानां नित्यत्वं न) स्वाभाविकार्थशक्तिमतामपि वेदानां मन्त्रसमूहानां नित्यत्वं यथास्वं वर्तमानत्वं नास्ति (कार्यत्वश्रुतेः) तेषां कार्यत्वश्रुतिदर्शनात् ''तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे। छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत ।।'' (यजु०३१-७) ''त्रयो वेदा अजायन्त'' (शत० ११.५.८.३) ।।४५।।

वेदानां कार्यत्वं यद्यपि प्रतिपाद्यते तथापि तेषाम् -

न पौरुषेयत्वं तत्कर्तुः पुरुषस्याभावात् ।।४६।।

[(योग्यायोग्येषु प्रतीतिजनकत्वात्) इन्द्रिययोग्येषु लौकिकशब्दार्थेषु तथेन्द्रियायोग्येष्वतीन्द्रियेषु वैदिकशब्दार्थेषु प्रतीतिजनकत्वाज्ज्ञानजनकत्वसाम्यात् (तत्सिद्धिः) व्युत्पत्तिसिद्धिर्भवति यया वेदार्थज्ञाने मनुष्यो व्युत्पन्नो जायते] इंद्रियों के योग्य विषयों में अर्थात् लौकिक शब्दों के अथो५ में और जो इंद्रियों से नहीं जाने जाते (अतीन्द्रिय हैं) उन वैदिक शब्दों के अर्थों में इन दोनों में एक विशेषता है की लौकिक शब्दों में विशेषता है की वह अर्थों का ज्ञान कराती है और वैदिक शब्दों में ये क्षमता है की वह अर्थ का ज्ञान उत्पन्न करते हैं । इस कारण से शब्द की व्युत्पत्ति सिद्ध हो जाती है उसके अर्थ का ज्ञान हो जाता है। जिस व्युत्पत्ति कि सहायता से वेदार्थ ज्ञान में मनुष्य कुशल हो जाता है ।।४४।।

यद्यपि वैदिक शब्दों में अर्थों को प्रकट करने की स्वाभाविक शक्ति है, फिर भी-

न नित्यत्वं वेदानां कार्यत्वश्रुतेः ।।४५।।

सूत्रार्थ= वेद नित्य नहीं है क्योंकि वो उत्पन्न हुए हैं, ऐसा सुनाई देने से।

[**(वेदानां नित्यत्वं न) स्वाभाविकार्थशक्तिमतामपि वेदानां मन्त्रसमूहानां नित्यत्वं यथास्वं वर्तमानत्वं नास्ति**] स्वाभाविक रूप से अर्थ को प्रकट करने की शक्ति है जिनमें ऐसे वेदों के मंत्र समूहों का नित्यत्व नहीं है जैसे वेद रहेंगे वैसे ये (मंत्र समूह आदि) नहीं रहेंगे। [**(कार्यत्वश्रुतेः) तेषां कार्यत्वश्रुतिदर्शनात्**] क्योंकि उनका कार्यत्व देखी जाने वाली श्रुति बताती है [**''तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे । छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत ।।'' (यजु० ३१-७) ''त्रयो वेदा अजायन्त'' (शत० ११.५.८.३)**] यहाँ कहा गया कि चारों वेद उत्पन्न हुए फिर नित्य कैसे हुए? ।।४५।।

यद्यपि वेदों का कार्यत्व बताया जा रहा है, फिर भी उन वेदों का -

न पौरुषेयत्वं तत्कर्तुः पुरुषस्याभावात् ।।४६।।

सूत्रार्थ= वेद पुरुष कृत नहीं है= मनुष्य कृत नहीं है, वेद बनाने वाले पुरुष के विद्यमान न होने से।

[**(पौरुषेयत्वं न) पुरुषकृतत्वं नास्ति तद्भिन्नस्येश्वरस्यैव कार्यमस्ति तेन कृतत्वात्**] यद्यपि वेद

(पौरुषेयत्वं न) पुरुषकृतत्वं नास्ति तद्भिन्नस्येश्वरस्यैव कार्यमस्ति तेन कृतत्वात् । उक्तं यथा ''तस्माद् यज्ञात् सर्वहूत ऋचः सामानि जज्ञिरे...'' (यजु० ३.७) कुतो न पुरुषकृतत्वं वेदानाम् । उच्यते (तत्कर्तुः पुरुषस्य-अभावात्) तेषां कर्तुः पुरुषस्याविद्यमानत्वात् ।।४६।।

कथमुच्यते तत्कर्तृपुरुषस्याभावो यावता पुरुषाः सन्ति मुक्ता अमुक्ताश्च । अत्रोच्यते -

न मुक्तामुक्तयोरयोग्यत्वात् ।।४७।।

(मुक्तामुक्तयोः-न) वेदानां कर्ता मुक्तामुक्तयोः कश्चनापि न भवितुमर्हति (अयोग्यत्वात्) योग्यत्वाभावात्। मुक्तस्यैश्वर्यं जगद्व्यापारवर्जं भवतीत्यतस्तथा प्रयोजनाभावाच्च, अमुक्तस्याल्पज्ञत्वात्। तस्मात् सर्वज्ञ एव जगदीश्वरो वेदानां कर्ता ।।४७।।

कथमेवं वेदानामपौरुषेयत्वं च प्रतिपाद्यते नित्यत्वं च निवार्यते, इत्याकांक्षाया- मुच्यते -

---

कार्य रूप है नष्ट हो जाएंगे, फिर भी वे पुरुष कृत तो नहीं है। क्योंकि मनुष्यों से भिन्न ईश्वर का भी कार्य है, वेद उत्पत्ति उसी के द्वारा की गयी है।[**उक्तं यथा ''तस्माद् यज्ञात् सर्वहूत ऋचः सामानि जज्ञिरे...''(यजु० ३.७)**] जैसा कि श्रुति में बताया गया है-उसी परमात्मा से उत्पन्न हुए [**कुतो न पुरुषकृतत्वं वेदानाम्**] प्रश्न किया- वेद मनुष्य कृत क्यों न मान लिए जाएँ?। [**उच्यते (तत्कर्तुः पुरुषस्य-अभावात्) तेषां कर्तुः पुरुषस्याविद्यमानत्वात्**] इसका उत्तर दिया- उनका कर्ता पुरुष कोई भी विद्यमान नहीं (वेद कि पुस्तक पर किसी लेखक का नाम नहीं)।।४६।।

प्रश्न किया- आप ये कैसे कहते हैं कि वेद का कर्ता पुरुष का अभाव है् जबकि बहुत सारे पुरुष हैं कुछ मुक्त हैं और कुछ बद्ध हैं। इसका उत्तर देते हैं-

न मुक्तामुक्तयोरयोग्यत्वात् ।।४७।।

सूत्रार्थ= मुक्त आत्मा और बद्ध जीवात्मा दोनों ही वेदों के बनाने में समर्थ नहीं हैं, दोनों में योग्यता न होने से।

[**(मुक्तामुक्तयोः-न) वेदानां कर्ता मुक्तामुक्तयोः कश्चनापि न भवितुमर्हति (अयोग्यत्वात्) योग्यत्वाभावात्**] वेदों का बनाने वाला मुक्त हो अथवा बद्ध इन दोनों में से कोई भी नहीं हो सकता योग्यता का अभाव होने से। [**मुक्तस्यैश्वर्यं जगद्व्यापारवर्जं भवतीत्यतस्तथा प्रयोजनाभावाच्च, अमुक्तस्याल्पज्ञत्वात्**] मुक्तात्मा के लिए जगत व्यापार निषिद्ध हैं और उसका कोई प्रयोजन भी नहीं है, ''अमुक्त आत्मा को अल्पज्ञ कहना'' (ये हेतु ठीक नहीं क्योंकि आत्मा बद्ध हो अथवा मुक्त दोनों में योग्यता नहीं है वेद बनाने कि)।[**तस्मात् सर्वज्ञ एव जगदीश्वरो वेदानां कर्ता**] इसलिए जो सर्वज्ञ जगत का स्वामी है परमात्मा वही वेदों का कर्ता है।।४७।।

कैसे आप वेदों का अपौरुषेयत्व स्वीकार कर रहे हैं (वेद ईश्वर कृत हैं ये तो आप स्वीकार कर रहे हैं

नापौरुषेयत्वान्नित्यत्वमङ्कुरादिवत् ।।४८।।

(अपौरुषेयत्वात्-न नित्यत्वम्-अंकुरादिवत्) वेदानमपौरुषेयत्वात् खल्वपि नास्ति नित्यत्वमङ्कुरादिवत्, यथाङ्कुरशाखापत्रपुष्पफलानि खल्वपौरुषेयाणि सन्त्यपि न नित्यानि तान्यपि वेदवदीश्वरकृतानि कार्याणि। तथापि यथा ह्यङ्कुरादीनि प्रवाहेण नित्यानि प्रतिकल्पे प्रवर्तनात् तथैव वेदानां प्रावाहिकनित्यत्वं त्वस्त्येव प्रतिकल्पे प्रवर्तनान्, एवं ज्ञानरूपो वेदस्तु नित्य एव ।।४८।।

पुनः -

तेषामपि तद्योगे दृष्टबाधादिप्रसक्तेः ।।४९।।

(तेषाम्-अपि तद्योगे अंकुरादीनामपि पुरुषकर्तृत्वयोगे स्वीकारे (दृष्टबाधादिप्रसक्तेः) लोकदृष्टबाधोऽदृष्टकल्पनं च प्रसज्यते, लोकदृष्टस्य प्रत्यक्षस्य बाधस्तथाऽयुक्तानुमानकल्पनं भवेत् ।।४९।।

) और वेद नित्य नहीं हैं (नित्यत्व का खंडन कर रहे हैं)। इस आकांक्षा पर कहते हैं-

नापौरुषेयत्वान्नित्यत्वमङ्कुरादिवत् ।।४८।।

सूत्रार्थ= मनुष्य कृत न होने पर भी अंकुरादि के समान वेद भी नित्य नहीं हैं, वेद का ज्ञान नित्य है, वेद तो प्रवाह से नित्य हैं अंकुरादि के समान प्रत्येक सृष्टि में उत्पन्न होने से।

[(अपौरुषेयत्वात्-न नित्यत्वम्-अंकुरादिवत्) वेदानमपौरुषेयत्वात् खल्वपि नास्ति नित्यत्वमङ्कुरादिवत्] वेद भले ही अपौरुषेय हैं (मनुष्य कृत नहीं हैं) फिर भी वो नित्य नहीं हैं ये बात ठीक है, अंकुरादि के समान, **[यथाङ्कुरशाखापत्रपुष्पफलानि खल्वपौरुषेयाणि सन्त्यपि न नित्यानि तान्यपि वेदवदीश्वरकृतानि कार्याणि]** जैसे अंकुर हैं, शाखा है, पत्र, पुष्प, फल, तना है ये सब भी तो अपौरुषेय हैं। ईश्वर के द्वारा बनाए होने पर भी वह नित्य नहीं हैं, ये सब वेद के समान ईश्वर द्वारा किया गया कार्य है। **[तथापि यथा ह्यङ्कुरादीनि प्रवाहेण नित्यानि प्रतिकल्पे प्रवर्तनात् तथैव वेदानां प्रावाहिकनित्यत्वं त्वस्त्येव प्रतिकल्पे प्रवर्तनान्]** जैसे अंकुर आदि प्रवाह से नित्य हैं प्रत्येक सृष्टि में अंकुर से वृक्ष शाखा होते जाते हैं फिर अगला बीज बनता है फिर बीज से अंकुर अंकुर से वृक्ष ये क्रम चलता रहता है और जब प्रलय हो जाती है तब सारा समाप्त हो जाता है, फिर अगली सृष्टि में अंकुर शाखा पत्र पुष्प आदि उत्पन्न होने लग जाते हैं। प्रवाह रूप से वह भी नित्य हैं। इसी प्रकार से वेदों का प्रवाहिक नित्यत्व तो है ही, प्रत्येक कल्प में वेदों की प्रवृति चलती रहती है, **[एवं ज्ञानरूपो वेदस्तु नित्य एव]** इस प्रकार से ज्ञान के रूप में वेद तो नित्य ही है परंतु वेद पुस्तक अनित्य है।।४८।।

पुनः -

तेषामपि तद्योगे दृष्टबाधादिप्रसक्तेः ।।४९।।

सूत्रार्थ= उन अंकुरादि का भी पुरुष कर्तृत्व में योग मानने पर अंकुरादि का कर्ता पुरुष को मानने पर लौकिक प्रत्यक्ष से विरुद्ध कथन होगा और प्रत्यक्ष अदृश्य की व्यर्थ कल्पना करनी पड़ेगी।

वस्तुतः -

यस्मिन्नदृष्टेऽपि कृतबुद्धिरुपजायते तत्पौरुषेयम् ।।५०।।

(यस्मिन्-अदृष्टे-अपि) यस्मिन् ह्यदृष्टेऽपि कर्तृत्वयोगे (कृतबुद्धिः-उपजायते) पुरुषकृतत्वनिश्चयः सञ्जायते (तत् पौरुषेयम्) तत्खलु पुरुषकृतं पुरुषकार्यं न च तथाऽङ्कुरादौ जायते न हि वेदेष्वपि ।।५०।।

वेदानां तु -

निजशक्त्यभिव्यक्तेः स्वतः प्रामाण्यम् ।।५१।।

(निजशक्त्यभिव्यक्तेः) वेदानां तु स्वाभाविक्या शक्त्याऽभि व्यक्तिमत्त्वात्-अपौरुषेयशक्त्या।

[(तेषाम्-अपि) तद्योगे अंकुरादीनामपि पुरुषकर्तृत्वयोगे स्वीकारे (दृष्टबाधादिप्रसक्तेः) लोकदृष्टबाधोऽदृष्टकल्पनं च प्रसज्यते] अंकुरादि को भी मनुष्य कृत मान लें ऐसा स्वीकार करने में जो लोक दृष्ट है बाध होता है उसका खण्डन होता है और जो कभी देखी नहीं ऐसी कल्पना करनी पड़ती है, **[लोकदृष्टस्य प्रत्यक्षस्य बाधस्तथाऽयुक्तानुमानकल्पनं भवेत्]** मनुष्य वृक्ष शाखा आदि बनाता हो ऐसा मानने पर लौकिक प्रत्यक्ष का विरोध होता है अदृष्ट बात कि कल्पना करनी पड़ेगी ।।४९।।

वस्तुतः -

यस्मिन्नदृष्टेऽपि कृतबुद्धिरुपजायते तत्पौरुषेयम् ।।५०।।

सूत्रार्थ= जिस परोक्ष कार्य में कोई प्रामाणिक बुद्धि उत्पन्न होती है, उसका कोई कर्ता है यह अनुमान से सिद्ध होती है तो उस वस्तु को पौरुषेय=मनुष्यकृत कहते हैं।

[(यस्मिन्-अदृष्टे-अपि) यस्मिन् ह्यदृष्टेऽपि कर्तृत्वयोगे (कृतबुद्धिः-उपजायते) पुरुषकृतत्वनिश्चयः सञ्जायते (तत् पौरुषेयम्) तत्खलु पुरुषकृतं पुरुषकार्यं न च तथाऽङ्कुरादौ जायते न हि वेदेष्वपि] जिसको बनाते हुए न देखने पर भी उसकी रचना देखकर ऐसा लगता है की ये मनुष्य कृत है , वो पुरुष का कृत कार्य है परंतु अंकुर आदि में ऐसी अनुभूति नहीं होती और न ही वेदों के संदर्भ में ऐसा लगता है की ये मनुष्य कृत हों ।।५०।।

वेदानां तु -

निजशक्त्यभिव्यक्तेः स्वतः प्रामाण्यम् ।।५१।।

सूत्रार्थ= अपनी शक्ति= सामर्थ्य को अभिव्यक्त करने में स्वतः समर्थ होने से वेद स्वतः प्रामाणिक हैं तथा ईश्वर की निज शक्ति से प्रकट होने से भी वेद स्वतः प्रमाण हैं।

जगदीश्वरस्य निजशक्त्याऽभिव्यक्तिमत्त्वात् (स्वतः प्रामाण्यम्) स्वतः प्रामाण्यमस्ति न हि परतः प्रामाण्यं पौरुषेयाणामिव ।।५१।।

अथ पञ्चचत्वारिंशं सूत्रमारभ्यैकपञ्चाशत्तमसूत्रपर्यन्तसूत्रक्रमस्यान्यो व्याख्या- मार्गः -

ननु कथमुच्यते वैदिकशब्दानामर्थे स्वाभाविकी शक्तिर्यावता -

न नित्यत्वं वेदानां कार्यत्वश्रुतेः ।।४५।।

(वेदानां नित्यत्वं न) वेदानां नित्यत्वं नास्ति, न हि वेदा नित्याः सन्ति (कार्यत्वश्रुतेः) तेषां कार्यत्वश्रुतिदर्शनात् ''तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे। छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत।।'' (ऋ० १०.९०.९) ''त्रयो वेदा अजायन्त'' (शत० ११.५.८.३) ।।४५।।

~~समाधत्ते -~~

[(निजशक्त्यभिव्यक्तेः) वेदानां तु स्वाभाविक्या शक्त्याऽभि व्यक्तिमत्त्वात्-अपौरुषेयशक्त्या जगदीश्वरस्य निजशक्त्याऽभिव्यक्तिमत्त्वात् (स्वतः प्रामाण्यम्) स्वतः प्रामाण्यमस्ति न हि परतः प्रामाण्यं पौरुषेयाणामिव] वेदों की जो अभिव्यक्ति है वह ईश्वर की स्वाभाविक शक्ति से हुई है, अपौरुषेय शक्ति से ईश्वर की निज शक्ति से प्रकट होने के कारण वेद स्वत: प्रमाण हैं उसे प्रामाणिक करने के लिए अन्य किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। जैसे पुरुष कृत ग्रन्थों को प्रामाणिक करने के लिए अन्य ग्रन्थों के प्रमाणों की आवश्यकता होती है, ईश्वर की बनाई हुए वेद को किसी अन्य प्रमाण की आवश्यकता नहीं सर्वज्ञ परमात्मा की वाणी होने से ।।५१।।

४५ वे सूत्र से आरंभ करके और ५१ वें सूत्र तक इन सभी सूत्रों की दूसरी व्याख्या करेंगे-

वैदिक शब्दों के अर्थ में स्वाभाविक शक्ति होते हुए भी वेदों का नित्यत्व क्यों नहीं है? इस बात को अलग प्रकार से नए ढंग से प्रस्तुत करते हैं-

न नित्यत्वं वेदानां कार्यत्वश्रुतेः ।।४५।।

सूत्रार्थ= वेदों का नित्यत्व नहीं हैं कार्यपन सुनाई देने से।

[(वेदानां नित्यत्वं न) वेदानां नित्यत्वं नास्ति, न हि वेदा नित्याः सन्ति (कार्यत्वश्रुतेः) तेषां कार्यत्वश्रुतिदर्शनात्] वेदों का नित्यत्व नहीं है वेद नित्य नहीं हैं क्योंकि वेदों की उत्पत्ति श्रुति में दिखाई जाने से **[''तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे। छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत ।।'' (ऋ० १०.९०.९) ''त्रयो वेदा अजायन्त'' (शत० ११.५.८.३)]** ।।४५।।

समाधत्ते - समाधान करते हैं-

न पौरुषेयत्वं तत्कर्तुः पुरुषस्याभावात् ।।४६।।

सुत्रार्थः-वेद पुरूष कृत=मनुष्य कृत नहीं है वेद बनाने वाले पुरूष के विद्यमान न होने से।

न पौरुषेयत्वं तत्कर्तुः पुरुषस्याभावात् ।।४६।।

(तत्कर्तुः पुरुषस्य-अभावात् पौरुषेयत्वं न) वेदानां कार्यत्वमुच्यते पुनः कार्यत्वमाश्रित्य हि तेषामनित्यत्वं साध्यते परन्तु कार्यस्य कर्त्रा भाव्यं किन्तु तत्कर्तुस्तेषां वेदानां कर्तुः पुरुषस्याभावात् पौरुषेयत्वं पुरुषकृतत्वं कार्यत्वं नास्ति पुनः कार्यत्वमवलम्ब्यनित्यत्वं वेदानां न सिध्यति ।।४६।।

कुतो हि वेदानां कर्तुः पुरुषस्याभावः । अत्रोच्यते -

न मुक्तामुक्तयोरयोग्यत्वात् ।।४७।।

(मुक्तामुक्तयोः-न) वेदानां कर्ता मुक्तामुक्तयोः कश्चनापि न भवितुमर्हति (अयोग्यत्वात्) तयोर्योग्यत्वाभावात्। मुक्तस्यैश्वर्यं जगद्व्यापारवर्जं भवति ''जगद्व्यापारवर्जं प्रकरणादसन्निहितत्वाच्च'' (वेदा० ४.४.१७) तथा प्रयोजनाभावाच्च, अमुक्तस्याल्पज्ञत्वात्। या हि खलु श्रुतिर्दर्शिता वेदानां कार्यत्वं साधयितुं तत्र तु वेदानां जायमानत्वमुक्तं न हि कार्यत्वम्, जायमानत्वं प्रादुर्भावः ''जनी प्रादुर्भावे''

[(तत्कर्तुः पुरुषस्य-अभावात् पौरुषेयत्वं न) वेदानां कार्यत्वमुच्यते पुनः कार्यत्वमाश्रित्य हि तेषामनित्यत्वं साध्यते] सिद्धांती कहता है वेद कार्य रूप हैं और कार्य रूप होने से उनका अनित्यत्व सिद्ध करते हैं (क्योंकि जो वस्तु उत्पन्न होती भी वह अनित्य होती है- आप इस प्रकार से अपनी बात को प्रस्तुत कर रहे हैं) **[परन्तु कार्यस्य कर्त्रा भाव्यं किन्तु तत्कर्तुस्तेषां वेदानां कर्तुः पुरुषस्याभावात् पौरुषेयत्वं पुरुषकृतत्वं कार्यत्वं नास्ति]** परंतु किसी भी कार्य का कर्ता होना चाहिए (ये नियम है) कर्ता के बिना कोई कार्य होता नहीं। किन्तु वेदों को बनाने वाला कोई पुरुष तो है ही नहीं, इसलिए वेदों के कर्ता पुरुष का अभाव होने से वेदों का पुरुष कृतत्व नहीं है **[पुनः कार्यत्वमवलम्ब्यनित्यत्वं वेदानां न सिध्यति]** फिर जब वेदों का कार्यपन ही सिद्ध नहीं हो रहा उस आधार पर अनित्यता कैसे सिद्ध कर सकते हैं, इसलिए वेदों की अनित्यता भी सिद्ध नहीं होती।।४६।।

वेदों के बनाने वाले पुरुष का अभाव कैसे है? इस पर कहते हैं-

न मुक्तामुक्तयोरयोग्यत्वात् ।।४७।।

सूत्रार्थः-मुक्त जीवात्मा और बद्ध जीवात्मा दोनों ही वेदों के बनाने में समर्थ नहीं

[(मुक्तामुक्तयोः-न) वेदानां कर्ता मुक्तामुक्तयोः कश्चनापि न भवितुमर्हति (अयोग्यत्वात्) तयोर्योग्यत्वाभावात्] वेदों का कर्ता मुक्त और बद्ध दोनों में से कोई भी नहीं हो सकता, दोनों ही अयोग्य अल्पज्ञ हैं। **[मुक्तस्यैश्वर्यं जगद्व्यापारवर्जं भवति]** मुक्त की जो शक्ति=योग्यता है वह संसार में हस्तक्षेप की नहीं है **[''जगद्व्यापारवर्जं प्रकरणादसन्निहितत्वाच्च''(वेदा०४.४.१७)]** मुक्तात्मा के लिए जगत का व्यापार वर्जित है, प्रकरण से सृष्टि रचना आदि कार्य में कोई योगदान नहीं है **[तथा प्रयोजनाभावाच्च, अमुक्तस्याल्पज्ञत्वात्]** तथा उनका कोई प्रयोजन भी नहीं है, ''अल्पज्ञ वाला हेतु दोनों पर लगेगा-मुक्त और बद्ध पर''। **[या हि खलु श्रुतिर्दर्शिता वेदानां कार्यत्वं साधयितुं तत्र तु वेदानां जायमानत्वमुक्तं न हि**

(दिवादि०) प्रादुर्भूता वेदाः। तेन न कार्यत्वं कार्यत्वाभावान्नित्यत्वं वेदानां नात्र क्षतिः ।।४७।।

पुनः पूर्वक्षत्वेनोच्यते -

नापौरुषेयत्वान्नित्यत्वमङ्कुरादिवत् ।।४८।।

(अपौरुषेयत्वात्-नित्यत्वम् न-अंकुरादिवत्) वेदानमपौरुषेयत्वं भवतु जायमानत्वं तु तत्र श्रुतौ प्रतिपाद्यते तेनापौरुषेयत्वाद्धेतोरेव तेषां नित्यत्वं न भवति जायमानत्वधर्मवत्त्वादङ्कुरादिवत्, यथाङ्कुरशाखापत्रपुष्पफलानि सन्त्यपौरुषेयाणि परन्तु जायमानत्वान्न नित्यानि, तथैव वेदा अपि जायमानत्वादनित्याः, अन्यथा तान्यपि नित्यानि स्युः ।।४८।।

कार्यत्वम्] अब सिद्धांती उत्तर दे रहा है पूर्वपक्षी के आक्षेप का-आपने जो श्रुति दिखलाई थी वेदों के कार्यपन को सिद्ध करने की (चारों वेद उत्पन्न हुए) वहाँ तो वेद प्रकट हुए ऐसा कहा है, उत्पन्न हुए ऐसा नहीं कहा, **[जायमानत्वं प्रादुर्भावः ''जनी प्रादुर्भावे'' (दिवादि०) प्रादुर्भूता वेदाः]** जायमान का अर्थ है प्रादुर्भाव होना ''जनी प्रादुर्भाव'' वेद प्रकट हुए । **[तेन न कार्यत्वं कार्यत्वाभावान्नित्यत्वं वेदानां नात्र क्षतिः]** इस कारण से जब वेद उत्पन्न हुए ही नहीं प्रकट हुए इस कारण से वेदों का कार्यत्व सिद्ध नहीं हुआ परंतु कार्यत्व सिद्ध न होने से वेदों का नित्यत्व सिद्ध हुआ।।४७।।

फिर पूर्वपक्ष की तरफ से कहते हैं-

नापौरुषेयत्वान्नित्यत्वमङ्कुरादिवत् ।।४८।।

सूत्रार्थः- मनुष्यकृत न होने पर भी अंकुरादि के समान वेद भी नित्य नहीं है, किन्तु वेद का ज्ञान नित्य है।वेद तो प्रवाह से नित्य है अंकुरादि के समान प्रत्येक सृष्टि में उत्पन्न होने से ।

[(अपौरुषेयत्वात्-नित्यत्वम् न-अंकुरादिवत्) वेदानमपौरुषेयत्वं भवतु जायमानत्वं तु तत्र श्रुतौ प्रतिपाद्यते तेनापौरुषेयत्वाद्धेतोरेव तेषां नित्यत्वं न भवति जायमानत्वधर्मवत्त्वादङ्कुरादिवत्] वेदों का अपौरुषेयत्व हो जावे, वेद प्रकट हुए थे ये श्रुति में बताया गया था इस कारण (अपौरुषेय होने) से उनका नित्यत्व नहीं है। पूर्वपक्षी का हेतु-क्योंकि वेद ईश्वर के द्वारा बनाए गए इस कारण से वेद अनित्य है, वे प्रकट हुए हैं अंकुर आदि के समान, **[यथाङ्कुरशाखापत्रपुष्पफलानि सन्त्यपौरुषेयाणि परन्तु जायमानत्वान्न नित्यानि]** जैसे अंकुर शाखा फूल पत्ते आदि ये भी ईश्वर कृत हैं=अपौरुषेय हैं परंतु क्योंकि ईश्वर से प्रकट हुए हैं इसलिए ये नित्य नहीं है भले ही ईश्वर से बने हों, **[तथैव वेदा अपि जायमानत्वादनित्याः]** इसी प्रकार से वेद भी ईश्वर से प्रकट हुए हैं इसलिए अनित्य हैं, **[अन्यथा तान्यपि नित्यानि स्युः]** यदि आप ऐसा नहीं मानते तो अंकुर आदि को भी नित्य मानो।।४८।।

दृष्टान्तसिद्ध्या समाधत्ते -

तेषामपि तद्योगे दृष्टबाधादिप्रसक्तिः ।।४९।।

(तेषाम् तद्योगे-अपि) अंकुरादीनामपौरुषेयत्वयोगेऽपि न नित्यत्वम् 'न नित्यत्वम्' पूर्वसूत्रतोऽनुवर्तते। कुतोऽङ् कुरादीनां न नित्यत्वम् । उच्यते (दृष्टबाधादिप्रसक्तिः) अङ् कुरशाखापत्रपुष्पफलानि क्रमशो नष्टानि दृश्यन्ते-इति। दृष्टस्य बाधनं प्रसज्यतेऽथ च पुनः पुनर्बीजात् प्ररोक्ष्यन्तीत्यनुमानहानिः प्रसज्यते। तस्मादङ्कुरादिदृष्टान्तासिद्ध्या वेदानां नित्यत्वनिराकरणं न युज्यते, तेषां तु नित्यत्वमेवापौरुषेयत्वात् ।।४९।।

वेदानां कुतो न पौरुषेयत्वं कुतस्तत्कर्तुः पुरुषस्याभावः? किमदृष्टत्वाद् यत्तेषां कर्ता केनापि न दृष्ट इति मत्वा। अत्रोच्यते -

---

दृष्टान्तसिद्ध्या समाधत्ते - आपका दृष्टांत उचित नहीं, अब सिद्धांती समाधान करता है-

तेषामपि तद्योगे दृष्टबाधादिप्रसक्तेः ।।४९।।

सूत्रार्थः- उन अंकुरादि का भी पुरूष कर्तृत्व में योग मानने पर अंकुरादि का कर्त्ता पुरूष को मानने पर लौकिक प्रत्यक्ष से विरूद्ध कथन होगा और प्रत्यक्ष विरूद्ध कल्पना करनी पड़ेगी।

[**(तेषाम् तद्योगे-अपि) अंकुरादीनामपौरुषेयत्वयोगेऽपि न नित्यत्वम् 'न नित्यत्वम्' पूर्वसूत्रतोऽनुवर्तते**] "न नित्यत्वम्" पूर्व सूत्र से ला रहे हैं- अंकुर आदि के अपौरुषेय होने पर भी वो नित्य नहीं है। [**कुतोऽङ्कुरादीनां न नित्यत्वम्**] अंकुरादि का नित्यत्व क्यों नहीं है?। **उच्यते** उत्तर देते हैं- [**(दृष्टबाधादिप्रसक्तिः) अङ् कुरशाखापत्रपुष्पफलानि क्रमशो नष्टानि दृश्यन्ते-इति**] अंकुर शाखा पत्र पुष्प फल ये तो क्रमशः नष्ट होते जाते हैं। [**दृष्टस्य बाधनं प्रसज्यतेऽथ च पुनः पुनर्बीजात् प्ररोक्ष्यन्तीत्यनुमानहानिः प्रसज्यते**] यदि हम अंकुर शाखा आदि को नित्य माने तो प्रत्यक्ष से विरोध आएगा, इसलिए इनको नित्य नहीं मान सकते, अंकुर शाखा आदि को नित्य मानने पर जो अनुमान करते हैं, पुनः पुनः बीज डालने वाले कार्य से जो उत्पत्ति का अनुमान करते हैं उसकी भी हानि होगी। [**तस्मादङ्कुरादिदृष्टान्तासिद्ध्या वेदानां नित्यत्वनिराकरणं न युज्यते**] इसलिए अंकुरादि का जो दृष्टांत आपने दिया वह ठीक सिद्ध नहीं हुआ, ऐसे वेदों की नित्यता का खंडन नहीं कर सकते, [**तेषां तु नित्यत्वमेवापौरुषेयत्वात्**] वेदों का ईश्वर कृत होने से नित्यत्व तो है ही।।४९।।

वेदों का पुरुष कृर्तत्व क्यों नहीं है? क्यों ऐसा मानते हैं की वेदों का बनाने वाला कोई पुरुष नहीं है? क्या अदृष्ट होने से? क्या ये सोच करके कि वेद का कर्ता किसी मनुष्य ने देखा ही नहीं? इसका उत्तर देते हैं-

यस्मिन्नदृष्टेऽपि कृतबुद्धिरुपजायते तत्पौरुषेयम् ।।५०।।

(यस्मिन्-अदृष्टे-अपि कृतबुद्धिः-उपजायते) यस्मिन् खल्वदृष्टेऽपि वस्तुनि कृतबुद्धिः पुरुषकृतत्वबुद्धिर्निश्चिता भवति (तत् पौरुषेयम्) तत् पुरुषकृतं विज्ञेयम्, न तथा वेदाः। ते तु प्रादुर्भूताः सन्तो ज्ञानदृष्ट्या नित्याः सन्ति ।।५०।।

तस्मात् -

निजशक्त्यभिव्यक्तेः स्वतः प्रामाण्यम् ।।५१।।

(निजशक्त्यभिव्यक्तेः) वेदानां पुरुषकृतत्वाभावे मनुष्यकृतत्वाभावे निजशक्त्या शाश्वतया स्वाभाविक्या शक्त्याऽभिव्यक्तत्वात् प्रादुर्भूतत्वात् । उक्तं यथा ''अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः'' (शत० १४.५.४.१०) ''स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च'' (श्वेता०

यस्मिन्नदृष्टेऽपि कृतबुद्धिरुपजायते तत्पौरुषेयम् ।।५०।।

सूत्रार्थः- जिस परोक्ष कार्य में कोई प्रमाणिक बुद्धि उत्पन्न होती है, उसको कोई कर्त्ता है यह अनुमान से सिद्ध होता है ता उस वस्तु को पौरूषेय=मनुष्यकृत कहते हैं।

[(यस्मिन्-अदृष्टे-अपि कृतबुद्धिः-उपजायते) यस्मिन् खल्वदृष्टेऽपि वस्तुनि कृतबुद्धिः पुरुषकृतत्वबुद्धिर्निश्चिता भवति (तत् पौरुषेयम्) तत् पुरुषकृतं विज्ञेयम्, न तथा वेदाः] किसी वस्तु को बनाते हुए न देखने पर भी ऐसा विचार आए कि यह मनुष्य कृत है परंतु वेद इस प्रकार के नहीं हैं जिसे देख कर ये लगता हो कि यह मनुष्य कृत है। **[ते तु प्रादुर्भूताः सन्तो ज्ञानदृष्ट्या नित्याः सन्ति]** बल्कि वे चार वेद ईश्वर से प्रकट हुए ज्ञान कि दृष्टि से नित्य हैं ।।५०।।

तस्मात् -

निजशक्त्यभिव्यक्तेः स्वतः प्रामाण्यम् ।।५१।।

सूत्रार्थः-अपनी शक्ति सामर्थ्य को अभिव्यक्त करने में स्वतः समर्थ होने से वेद स्वतः प्रमाणिक हैं तथा ईश्वर की निज शक्ति से प्रकट होने से भी वेद स्वतः प्रमाण हैं।

[(निजशक्त्यभिव्यक्तेः) वेदानां पुरुषकृतत्वाभावे मनुष्यकृतत्वाभावे निजशक्त्या शाश्वतया स्वाभाविक्या शक्त्याऽभिव्यक्तत्वात् प्रादुर्भूतत्वात्] वेदों के पुरुष कृत न होने पर मनुष्य कृत न होने पर भी परमात्मा की अपनी शक्ति से जो स्वाभाविक शाश्वत है उस शक्ति से अभिव्यक्त होने के कारण प्रकट हुए हैं। **[उक्तं यथा ''अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः''(शत० १४.५.४.१०)]** जैसा कि कहा शास्त्र में ''कि इस महान परमात्मा से चार वेद ऐसे प्रकट हुए जैसे श्वास निकलता है (जैसे श्वास लेना छोड़ना स्वाभाविक कार्य है छोटा सा कार्य है ऐसे ही ईश्वर को वेद प्रकट करना,

६.८) (स्वतः प्रामाण्यम्) स्वतः प्रमाणत्वमस्ति ।।५१।।

भवतु वेदानां निजशक्त्याऽभिव्यक्तिरभिव्यक्तत्वं प्रादुर्भावो दर्शनं तथा हि "न, अभिव्यक्तिनिबन्धनौ व्यवहाराव्यवहारौ" (सांख्य० १.१२०) अनेन सूत्रेण जगतोऽपि सांख्यमतेऽभिव्यक्तिरभिव्यक्त्वं प्रकटीभावः प्रकाशो वा प्रत्यपादि । श्रुतौ यज्जायमानत्वं वेदानां जगतश्च निर्दिष्टम् "तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे। छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत ।।" (ऋ० १०.९०.९) "द्यावाभूमी जनयन् देव एकः" (यजु० १७.१९) जनीधातोः प्रादुर्भावार्थत्वात्। तदित्थं वेदानां जगतश्चाभिव्यक्तत्वं प्रादुर्भावो दर्शनं वा किमसद्रूपाद् भवति ? कथं वा भवतीत्याकांक्षायामुच्यते -

नासतः ख्यानं नृश्रृंगवत् ।।५२।।

(असतः ख्यानं न नृश्रृंगवत्) वेदानां जगतश्च ख्यानमभिव्यक्तत्वं प्रादुर्भावो दर्शनं वा

स्वाभाविक आसान काम है) ["**स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च**"(**श्वेता० ६.८**)] ज्ञान, बल और क्रिया तीनों स्वाभाविक हैं [**(स्वतः प्रामाण्यम्) स्वतः प्रमाणत्वमस्ति**] इन कारणों से वेदों का स्वतः प्रमाणत्व है, उनको सिद्ध करने के लिए किसी और प्रमाण कीह आवश्यकता नहीं है ।।५१।।

जैसे वेदों की अभिव्यक्ति परमात्मा की निज शक्ति से हुई है प्रादुर्भाव दर्शन हुआ है, उसी प्रकार से सांख्य में एक सूत्र आया है कि "अभिव्यक्ति के कारण से ही व्यवहार और अव्यवहार होते हैं" [**अनेन सूत्रेण जगतोऽपि सांख्यमतेऽभिव्यक्तिरभिव्यक्त्वं प्रकटीभावः प्रकाशो वा प्रत्यपादि**] इस सूत्र से ये विचारधारा भी सामने आती है, सांख्यदर्शन से कि जगत का भी प्रकटी भाव हुआ है, सांख्य की दृष्टि से, जैसे वेद ईश्वर से प्रकट हुए ऐसे जगत भी प्रकट हुआ है, इसकी भी अभिव्यक्ति हुई है अथवा प्रकाश हुआ है ऐसा संख्यादर्शन में प्रतिपादन किया है। [**श्रुतौ यज्जायमानत्वं वेदानां जगतश्च निर्दिष्टम्**] श्रुति में वेदों का और जगत का जो जायमानत्व दिखाया है ["**तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे। छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत।।**" (**ऋ० १०.९०.९**) "**द्यावाभूमी जनयन् देव एकः**" (**यजु० १७.१९**) **जनीधातोः प्रादुर्भावार्थत्वात्**] क्योंकि जनी धातु का प्रादुर्भाव अर्थ है। [**तदित्थं वेदानां जगतश्चाभिव्यक्तत्वं प्रादुर्भावो दर्शनं वा किमसद्रूपाद् भवति? कथं वा भवतीत्याकांक्षायामुच्यते -**] इस प्रकार से वेदों का और जगत का जो प्रादुर्भाव हुआ अभिव्यक्ति हुई दर्शन हुआ वह क्या अभाव रूप से हुआ अथवा कैसे हुआ? इसका उत्तर देते हैं-

नासतः ख्यानं नृश्रृंगवत् ।।५२।।

सूत्रार्थ= असत=अभाव का प्रादुर्भाव नहीं होता है, जैसे मनुष्य का सींग नहीं होता।

[**(असतः ख्यानं न नृश्रृंगवत्) वेदानां जगतश्च ख्यानमभिव्यक्तत्वं प्रादुर्भावो दर्शनं वा नासद्रूपाद् भवति, न ह्यसतो वस्तुनः ख्यानं दर्शनं भवति नृशृङ्गमिव**] वेदों का और जगत का जो

नासद्रूपाद् भवति, न ह्यसतो वस्तुनः ख्यानं दर्शनं भवति नृशृंगमिव। तस्माज्जगच्छुक्तौ रजतवन्नास्ति, शुक्तौ रजतख्यानमपि नान्यत्रासतो रजतस्य ।।५२।।

किं पुनः सतां वेदानां सतो जगतो वा ख्यानाम् । अत्रोच्यते -

न सतो बाधदर्शनात् ।।५३।।

(सतः-न) सतां वेदानां सतो जगतोऽपि न तथारूपेणैवाभिव्यक्तत्वं प्रादुर्भावः ख्यानं वा । कुतः (बाधदर्शनात्) बाधोऽत्राभावः । सतो वस्तुनां बाधोऽभावो दृश्यते, नहि सर्वकाले वेदाः सन्तो न सर्वकाले जगत् सत्, प्रलयेऽभावात् । तस्मात् सतो विज्ञानात्मनो जगतोऽनादितो वर्तमानस्य वा जगतः ख्यानमित्यपि न युक्तं नहि सर्वकाले सतो वस्तुनः ख्यानमभिव्यक्तत्वं युक्तमभिव्यक्तस्य भावाभावधर्मित्वात् ।।५३।।

ख्यान है, अभिव्यक्ति है, प्रादुर्भाव, प्रकट, दर्शन होना ये अभावरूप स्थिति से नहीं है, क्योंकि असद रूप वस्तु से (अभावात्मक वस्तु से) किसी भी वस्तु की अभिव्यक्ति, दर्शन नहीं होता। जैसे मनुष्य का सींग। **तस्माज्जगच्छुक्तौ रजतवन्नास्ति** इसलिए जगत सीपी में चाँदी के तुल्य भ्रांति में नहीं है, [**शुक्तौ रजतख्यानमपि नान्यत्रासतो रजतस्य**] सीपी में चाँदी का दिखना भी अभावात्मक चाँदी से कोई भिन्न नहीं है (ये पंक्ति का अर्थ सूत्र से मेल नहीं खाता)।।५२।।

क्या ऐसा मानले के वेद पहले से सत्तात्मक रूप से तैयार थे और जगत जैसा का तैसा बना रखा था? ''ये दूसरा पक्ष है'' इस प्रश्न का उत्तर देते हैं-

न सतो बाधदर्शनात् ।।५३।।

सूत्रार्थ = उत्पन्न होने वाले विद्यमान सभी पदार्थ सदा प्रकट नहीं रहते हैं। उनका अभाव भी देखे जाने से।

[**(सतः-न) सतां वेदानां सतो जगतोऽपि न तथारूपेणैवाभिव्यक्तत्वं प्रादुर्भावः ख्यानं**] वा वेद पहले से बना हुआ एवं जगत भी बना हुआ था इस प्रकार से इस जगत का प्रादुर्भाव नहीं है। ये पक्ष भी ठीक नहीं है। [**कुतः क्यों (बाधदर्शनात्) बाधोऽत्राभावः**] (क्योंकि एक समय के पश्चात् जगत का विनाश हो जाएगा जगत बना बनाया नहीं रहेगा) एक समय बाद इसका बाध हो जाता है। [**सतो वस्तुनां बाधोऽभावो दृश्यते**] जो सत्तात्मक वस्तुएं हैं इनका अभाव देखा जाता है, [**नहि सर्वकाले वेदाः सन्तो न सर्वकाले जगत् सत्, प्रलयेऽभावात्**] न तो सब कालों में वेद विद्यमान रहते हैं (मनुष्यों के पास) और न ही प्रत्येक काल में जगत रहने वाला है, दोनों का प्रलय में अभाव हो जाएगा। [**तस्मात् सतो विज्ञानात्मनो जगतोऽनादितो वर्तमानस्य वा जगतः ख्यानमित्यपि न युक्तं**] इसलिए विज्ञानात्मक वेद भी सदा से ही था और जगत भी अनादि काल से वर्तमान है ये जैसे के तैसा प्रकट हो गया ऐसा मानना ठीक नहीं है [**नहि सर्वकाले सतो**

तर्हि यद्वस्तुनोऽभिव्यक्तस्वरूपं नासद्रूपतो न सद्रूपतः किन्तु तद्विलक्षणमनिवर्चनीयं स्यात् । अत्रोच्यते -

नानिर्वचनीयस्य तदभावात् ।।५४।।

(अनिर्वचनीयस्य न) अनिर्वचनीयस्य सदसद्भ्यां भिन्नस्याभिव्यक्तत्वं प्रादुर्भावः ख्यानं दर्शनं स्यादिति न (तदभावात्) तस्य सदसद्भ्यां भिन्नस्य वस्तुनोऽविद्यमानत्वादसम्भवात्। तथाभूतस्य वस्तुनो भावः स्यात् तर्हि निर्वचनीयं तत् स्यात्। तस्माज्जगतोऽभिव्यक्तत्वं दर्शनं न सदसद्भिन्नहेतुकं भवति ।।५४।।

वस्तुनः ख्यानमभिव्यक्तत्वं युक्तमभिव्यक्तस्य भावाभावधर्मित्वात्] जो वस्तु प्रकट हुई है उस वस्तु का सदा ही प्रकटता बनी रहे ऐसा प्रमाणों के अनुकूल नहीं है जो वस्तु अभिव्यक्त होती है उसके दो धर्म होते हैं एक भाव भी और अभाव भी ।।५३।।

तीसरा पक्ष- फिर ये मान लिया जाए जिस वस्तु की अभिव्यक्ति हुई है, न तो वह अभाव से प्रकट हुआ और न ही बना बनाया था, किन्तु इनसे तीसरे प्रकार का मान लेते हैं, वह है अनिर्वचनीय (जिसकी व्याख्या नहीं कर सकते) ऐसे जगत कि अभिव्यक्ति हुई? इस पर कहते हैं-

नानिर्वचनीयस्य तदभावात् ।।५४।।

सूत्रार्थ= अनिर्वचनीय (न कहने योग्य वस्तु का कथन) प्रादुर्भाव नहीं होता, उसका सर्वथा अभाव होने से।

[(अनिर्वचनीयस्य न) अनिर्वचनीयस्य सदसद्भ्यां भिन्नस्याभिव्यक्तत्वं प्रादुर्भावः ख्यानं दर्शनं स्यादिति] न वो सद भी नहीं था असद भी नहीं था इन दो से भिन्न तीसरे प्रकार का था, ये बात भी नहीं हो सकती। **[(तदभावात्) तस्य सदसद्भ्यां भिन्नस्य वस्तुनोऽविद्यमानत्वादसम्भवात्]** दो में से कोई तीसरा प्रकार होता ही नहीं यह असंभव है वो सद भी न हो और असद भी न हो ऐसा कैसे हो सकता है?। **[तथाभूतस्य वस्तुनो भावः स्यात् तर्हि निर्वचनीयं तत् स्यात्]** यदि कोई ऐसी वस्तु होवे फिर तो उसकी सत्ता होगी जब सत्ता होगी फिर उसकी व्याख्या की जा सकती है। **[तस्माज्जगतोऽभिव्यक्तत्वं दर्शनं न सदसद्भिन्नहेतुकं भवति]** इसलिए जगत कि अभिव्यक्ति या दर्शन सत्तात्मक और असत्तात्मक इन दोनों से अलग तीसरे प्रकार के पदार्थ से नहीं हो सकता।।५४।।

चौथा पक्ष- फिर भी है तो जगत लेकिन मिथ्या ही मान लो-

अस्तु तर्हि जगतो दर्शनमन्यथैव मिथ्येत्यर्थः -

नान्यथाख्यातिः स्ववचो व्याघातात् ।।५५।।

(अन्यथाख्यातिः-न) अन्यथाख्यानं मिथ्याभिव्यक्तत्वं दर्शनमपि न सम्भवति दृश्यमानस्य जगतः। कुतः (स्ववचोव्याघातात्) स्वकथनविरोधात् - उच्यते ह्यस्तीदं जगत् पुनरन्यथा मिथ्याऽपि कथ्यते - अस्तीति च नास्तीति च वचनविरोधः, न हि सतोऽन्यथात्वं मिथ्यात्वं भवति। तथाऽन्यदन्यात्मनाऽवभासते जगद् यथा रजतात्मना शुक्तिरवभासते तद्वज्जगदन्यात्मनाऽवभासते तद्वचनविरुद्धं यदा जगतोऽसत्त्वं तदाऽसत्त्वं सत्त्वात्मनाऽवभासेतेति नावसरः सर्वस्यान्यथात्वान्मिथ्यात्वात् पुनः किं केन रूपेणावभासेत। तस्मान्न जगच्छुक्तौ रजतवदन्यथाऽभिव्यक्तं ख्यातं वा ।।५५।।

वस्तुतस्तु -

सदसत्ख्यातिर्बाधाबाधात् ।।५६।।

नान्यथाख्यातिः स्ववचो व्याघातात् ।।५५।।

सूत्रार्थ= दृश्यमान जगत का जो ज्ञान हो रहा है, वह मिथ्या नहीं है, अपने ही वचन का विरोध होने से।

[**(अन्यथाख्यातिः-न) अन्यथाख्यानं मिथ्याभिव्यक्तत्वं दर्शनमपि न सम्भवति दृश्यमानस्य जगतः**] दिखने वाले इस जगत का मिथ्या दर्शन संभव नहीं है (जगत हो नहीं और हमको जगत दिख रहा हो ऐसा संभव नहीं) चौथा पक्ष भी ठीक नहीं। [**कुतः (स्ववचोव्याघातात्) स्वकथनविरोधात्**] क्योंकि ऐसा बोलने में अपने ही कथन से विरोध आता है - [**उच्यते ह्यस्तीदं जगत् पुनरन्यथा मिथ्याऽपि कथ्यते**] कहते हैं जगत है फिर कहते हैं मिथ्या है - [**अस्तीति च नास्तीति च वचनविरोधः**] ''जगत है ये कहना और जगत नहीं है ये कहना'' है और नहीं है इस प्रकार से वचन विरोध आता है, [**न हि सतोऽन्यथात्वं मिथ्यात्वं भवति**] यदि कोई सत्तात्मक वस्तु है फिर मिथ्या कैसे हो सकती है?। [**तथाऽन्यदन्यात्मनाऽवभासते जगद् यथा रजतात्मना शुक्तिरवभासते तद्वज्जगदन्यात्मनाऽवभासते तद्वचनविरुद्धं यदा जगतोऽसत्त्वं तदाऽसत्त्वं सत्त्वात्मनाऽवभासेतेति नावसरः सर्वस्यान्यथात्वान्मिथ्यात्वात् पुनः किं केन रूपेणावभासेत**] तथा एक वस्तु किसी दूसरे रूप में दिख रही है जैसे चाँदी एक रूप में सीपी दिखती है ऐसे ही है तो कुछ और लेकिन जगत रूप में दिख रहा है। ऐसा माना जाए तो। ये बात अपने ही वचन के विरुद्ध है जब आपने जगत की असत्ता मान ली तब ऐसी स्थिति में जो वस्तु है ही नहीं, फिर वह है के रूप में कैसे प्रतीत होगा? वह तो अभाव रूप हो गया फिर अभाव भावरूप में कैसे दिखेगा। क्योंकि जगत की प्रत्येक वस्तु आपने मिथ्या मान ली फिर कौन सी वस्तु किस रूप में दिखेगी?। [**तस्मान्न जगच्छुक्तौ रजतवदन्यथाऽभिव्यक्तं ख्यातं**] वा इसलिए जो जगत है वह सीपी में चाँदी के समान अभिव्यक्त नहीं हो रहा, वास्तविक जगत जगत के रूप में ही दिख रहा है ।।५५।।

(सदसत्ख्यातिः) सदसत्ख्यानम्-यत्खलु वस्तु प्रादुर्भवति तस्य सदसत्ख्यानमभिव्यक्तत्वं दर्शनं वा भवति, वेदानां जगतोऽपि प्रादुर्भूतत्वमभिव्यक्तत्वं सदसदात्मना विज्ञेयम्। कुतः (बाधाबाधात्) अबाधात्यावन्न स्याद् बाधोऽभावस्तावत् सद्रूपेण ख्यानं दर्शनं वर्तमानत्वं वा, बाधात्-यदा बाधोऽभावो भवेत् तदाऽसद्रूपेण वर्तमानत्वं भवति। यद्वा सदात्मकं बाधात् सद्भूतस्य विद्यमानस्यैव बाधः प्रलयेऽभावो भवति तस्मात् सदात्मकम्, असदात्मकं चाबाधान्न ह्यसद्रूपेण वर्तमानस्यानभिव्यक्तस्याभावो भवति। तस्माज्जगदिदं पर्यायेण सदसद्धर्मकमस्ति न नितान्तं सन्न नितान्तमसदित्यर्थः ।।५६।।

इदानीं शब्दविषये सांख्यसिद्धान्तः पक्षविपक्षाभ्यां प्रदर्श्यते -

प्रतीत्यप्रतीतिभ्यां न स्फोटात्मकः शब्दः ।।५७।।

सदसत्ख्यातिर्बाधाबाधात् ।।५६।।

सूत्रार्थ= वेद और जगत कभी प्रकट हो जाते हैं और कभी अप्रकट हो जाते हैं, सृष्टि काल में इनकी सत्ता देखी जाने से और प्रलयकाल में न देखी जाने से।

[**(सदसत्ख्यातिः) सदसत्ख्यानम्-यत्खलु वस्तु प्रादुर्भवति तस्य सदसत्ख्यानमभिव्यक्तत्वं दर्शनं वा भवति**] जो वस्तु हमारे समक्ष प्रकट होती है वह कभी सद होती है कभी असद, दोनों रूप होते हैं तब उसकी ठीक प्रकार से अभिव्यक्ति मानी जाती है, [**वेदानां जगतोऽपि प्रादुर्भूतत्वमभिव्यक्तत्वं सदसदात्मना विज्ञेयम्**] वेद भी प्रकट हुए जगत भी प्रकट हुआ, इनका दोनों रूप मानने चाहिए कभी सद रूप में कभी असद रूप में। **कुतः** क्योंकि [**(बाधाबाधात्) अबाधात्यावन्न स्याद् बाधोऽभावस्तावत् सद्रूपेण ख्यानं दर्शनं वर्तमानत्वं वा**] जब तक इसका बाध (विनाश) नहीं होगा तब तक सत्तारूप में ये जगत रहेगा अथवा इनकी वर्तमानता बनी रहेगी, [**बाधात्यदा बाधोऽभावो भवेत् तदाऽसद्रूपेण वर्तमानत्वं भवति**] दूसरा हेतु-जब प्रलय होगी और इनका बाध (विनाश) होगा तब ये असद रूप से विद्यमान रहेंगे। [**यद्वा सदात्मकं बाधात् सद्भूतस्य विद्यमानस्यैव बाधः प्रलयेऽभावो भवति तस्मात् सदात्मकम्**] यहाँ दूसरी व्याख्या करते हैं- जो सदात्मक वस्तु है उसका बाध हो जाता है, टूटना नष्ट होना किसी सत्तात्मक वस्तु का ही होगा इसलिए वह सदात्मक है, [**असदात्मकं चाबाधान्न ह्यसद्रूपेण वर्तमानस्यानभिव्यक्तस्याभावो भवति**] जो असदात्मक हो उसका भाव हो सकता है और जो शून्य हो, प्रलय में जो अभाव रूप से वर्तमान हो जो प्रकट नहीं है उसका अभाव नहीं होता। [**तस्माज्जगदिदं पर्यायेण सदसद्धर्मकमस्ति न नितान्तं सन्न नितान्तमसदित्यर्थः**] इसलिए यह जगत क्रमशः सद धर्म वाला फिर असद धर्म वाला होता है न तो हमेशा सद रहेगा और न ही सदैव असद, ये अर्थ हुआ।।५६।।

अब सांख्य सिद्धान्त में शब्द के विषय में पक्ष विपक्ष में चर्चा आरंभ करते हैं-

(स्फोटात्मकः-शब्दः-न) वाचा खलूच्चार्यमाणः श्रोत्राभ्यां श्रूयमाणशब्दो ध्वन्यात्मकः पुनरुच्चारणानन्तरमर्थस्य स्फुटीकरणहेतुत्वाद् ध्वन्यात्मकाद् भिन्नः स्फोटात्मकः कल्प्यते। अत्र सांख्यसिद्धान्ते स न स्वीक्रियतेऽत एवोच्यते स्फोटात्मकः शब्दो नास्ति। कुतः। उच्यते (प्रतीत्यप्रतीतिभ्याम्) वस्तुनोऽस्तित्वनास्तित्वसाधने प्रतीत्यप्रतीति भवतः, यः प्रतीयते सोऽस्ति यश्च न प्रतीयते स नास्ति। ध्वन्यात्मकस्य शब्दस्य तु प्रतीतिरस्ति तदनन्तरं स्फोटात्मको यः कल्पयते तस्याप्रतीतिरस्ति। तस्मात् स्फोटात्मकः शब्दो न स्वीक्रियते सांख्यसिद्धान्ते ।।५७।।

ननु स्फोटात्मकः शब्दो न स्वीक्रियते किं शब्दो नित्यः स्वीक्रियते इत्याकांक्षायामुच्यते -

---

प्रतीत्यप्रतीतिभ्यां न स्फोटात्मकः शब्दः ।।५७।।

सूत्रार्थ= किसी वस्तु की सत्ता है वह प्रतीति से सिद्ध होती है और किसी वस्तु की सत्ता नहीं है वो उसकी अप्रतीति से सिद्ध होती है। स्फोटात्मक शब्द की प्रतीति होती नहीं।

[**(स्फोटात्मकः-शब्दः-न) वाचा खलूच्चार्यमाणः श्रोत्राभ्यां श्रूयमाणशब्दो ध्वन्यात्मकः पुनरुच्चारणानन्तरमर्थस्य स्फुटीकरणहेतुत्वाद् ध्वन्यात्मकाद् भिन्नः स्फोटात्मकः कल्पयते**] वाणी से उच्चारण किया जाता हुआ और दोनों कानों से सुना जाता हुआ शब्द ध्वन्यात्मक है और फिर उच्चारण के पश्चात् अर्थ को प्रकट करने के हेतु से इस ध्वन्यात्मक शब्द से भिन्न स्फुटात्मक नाम से कल्पित किया जाता है, जो अर्थ को प्रकट करता है [(वार्ता करते हैं- वाणी से शब्द बोला कान से सुनते हैं ये हैं ध्वन्यात्मक शब्द। ध्वनि सुनी और समाप्त हो गयी फिर अर्थ कैसे पता चला? उस अर्थ को समझाने के लिए एक और ध्वनि की कल्पना करते है जो स्फोटात्मक है। कंठ से बोलते हैं वह है ध्वन्यात्मक, और जो मस्तिष्क में रहता है वह स्फोटात्मक है जो अर्थ को प्रकट करता है)। **अत्र सांख्यसिद्धान्ते स न स्वीक्रियतेऽत एवोच्यते स्फोटात्मकः शब्दो नास्ति**] यहाँ सांख्य के सिद्धान्त में उस स्फोटात्मक शब्द को स्वीकार नहीं किया जाता, इसलिए कहा जा रहा है की सांख्य में स्फोटात्मक शब्द नहीं है। [**कुतः क्यों। उच्यते (प्रतीत्यप्रतीतिभ्याम्) वस्तुनोऽस्तित्वनास्तित्वसाधने प्रतीत्यप्रतीति भवतः**] कहा है- वस्तु का अस्तित्व है अथवा नहीं है इन दोनों को सिद्ध करने वाले दो साधन एक प्रतीति और दूसरी अप्रतीति होते हैं, [**यः प्रतीयते सोऽस्ति यश्च न प्रतीयते स नास्ति**] जो प्रतीत होती है वह वस्तु है जो प्रतीत नहीं होती वह नहीं है। [**ध्वन्यात्मकस्य शब्दस्य तु प्रतीतिरस्ति तदनन्तरं स्फोटात्मको यः कल्प्यते तस्याप्रतीतिरस्ति**] ध्वन्यात्मक शब्द की प्रतीति तो हो ही रही है इसके बाद जो स्फोटात्मक शब्द कल्पित किया जाता है उसकी यहाँ प्रतीति नहीं होती। [**तस्मात् स्फोटात्मकः शब्दो न स्वीक्रियते सांख्यसिद्धान्ते**] इसलिए स्फोटात्मक शब्द को सांख्य के सिद्धान्त में स्वीकार नहीं किया जाता ।।५७।।

प्रश्न है कि स्फोटात्मक शब्द स्वीकार नहीं किया, फिर क्या आप शब्द को नित्य मानते हैं? इस

न शब्दनित्यत्वं कार्यताप्रतीतेः ।।५८।।

(शब्दनित्यत्वं न) शब्दस्य नित्यत्वं नास्ति। कुतः (कार्यताप्रतीतेः) कार्यतायाः प्रतीतेः, प्रत्यक्षं ह्युच्चारणेनोत्पद्यते खलु शब्दः ।।५८।।

ननु सांख्यमते स्फोटात्मकः शब्दो न मन्यते न च शब्दस्य नित्यत्वं स्वीक्रियते, तदा शब्दोच्चारणात् पश्चात् तस्योभयप्रकाराभ्यां स्थिरत्वाभावादर्थप्रतीतिः कथं भविष्यतीत्यत्रोच्यते -

पूर्वसिद्धसत्त्वस्याभिव्यक्तिर्दीपेनेव घटस्य ।।५९।।

(पूर्वसिद्धसत्त्वस्य-अभिव्यक्तिः-दीपेन-इव घटस्य) उच्चरितेन शब्देन पूर्वतःसिद्धस्य सत्त्वस्यार्थस्याभिव्यक्तिर्भवति यथा दीपेन घटस्य पूर्वतो वर्तमानस्याभिव्यक्तिः प्रकटता भवति,

---

आकांक्षा पर कहते हैं-

न शब्दनित्यत्वं कार्यताप्रतीतेः ।।५८।।

सूत्रार्थ= शब्द नित्य नहीं है, उसकी उत्पत्ति होने से अर्थात् कार्यपन दिखाई देने से।

[(शब्दनित्यत्वं न) शब्दस्य नित्यत्वं नास्ति । कुतः (कार्यताप्रतीतेः) कार्यतायाः प्रतीतेः, प्रत्यक्षं ह्युच्चारणेनोत्पद्यते खलु शब्दः] शब्द की नित्यता नहीं है, कैसे-कार्यता के प्रतीत होने से, प्रत्यक्ष ही शब्द उच्चारण से शब्द उत्पन्न होता है (जब उत्पन्न होता है तो नष्ट भी होगा)।।५८।।

प्रश्न है- सांख्यमत में स्फोटात्मक शब्द को नहीं माना जाता और न ही शब्द की नित्यता स्वीकार करते हैं। तब शब्दोचारण के बाद उसके दोनों ही प्रकार से स्थिरता न होने से अर्थ कि प्रतीति कैसे होग़ी? इसका उत्तर देते हैं-

पूर्वसिद्धसत्त्वस्याभिव्यक्तिर्दीपेनेव घटस्य ।।५९।।

सूत्रार्थ= शब्द को सुनने से पूर्व ज्ञात पदार्थ का ज्ञान हो जाता है, जैसे दीपक से घड़े का ज्ञान हो जाता है।

[(पूर्वसिद्धसत्त्वस्य-अभिव्यक्तिः-दीपेन-इव घटस्य) उच्चरितेन शब्देन पूर्वतःसिद्धस्य सत्त्वस्यार्थस्याभिव्यक्तिर्भवति यथा दीपेन घटस्य पूर्वतो वर्तमानस्याभिव्यक्तिः प्रकटता भवति] (जो शब्द उच्चारण किया उस बोले गए शब्द से अर्थ तो पहले से ही जानते हैं) सुने हुए शब्द से पहले से विद्यमान अर्थ कि अभिव्यक्ति हो जाती है, जैसे दीपक के प्रकाश से पहले विद्यमान घट आदि (जो घर में रखे थे) कि अभिव्यक्ति हो जाती है, **[दीपेन दृष्टं घटमुत्थाप्य गच्छति जनः]** दीपक के जलने से घड़े को देखकर उठाकर लोग ले जाते हैं, **[घटदर्शनकाले दीपस्यावश्यकता स्वायत्तीकृते घटे न दीपोऽपेक्ष्यते दीपदृष्टान्तस्य प्रकाशकत्वमात्रमेव गृह्यते]** घटदर्शन काल में दीपक की आवश्यकता होती है हाथ में उठा लेने पर फिर दीपक की आवश्यकता नहीं रहती। यहाँ जो दीपक का दृष्टांत् दिया वह बहुत सीमित है दीपक से प्रकाश मात्र

दीपेन दृष्टं घटमुत्थाप्य गच्छति जनः, घटदर्शनकाले दीपस्यावश्यकता स्वायत्तीकृते घटे न दीपोऽपेक्ष्यते दीपदृष्टान्तस्य प्रकाशकत्वमात्रमेव गृह्यते। तस्माच्छब्दस्य स्फोटात्मकतया यद्वा नित्यभावेन स्थिरत्वं नापेक्ष्यते।।५९।।

एवं तु सत्कार्यसिद्धान्त आपतति । उच्यते -

सत्कार्यसिद्धान्तश्चेत् सिद्धसाधनम् ।।६०।।

(सत्कार्यसिद्धान्तः-चेत् सिद्धसाधनम्) सत्कार्यसिद्धान्तश्चेत् तदा सिद्धस्य सांख्याभिमतस्य सिद्धपक्षस्य साधनं तदभीष्टमेव, न दोषः ।।६०।।

अथान्तिमसूत्रद्वयस्यान्योऽर्थः, तत्र पुनः पूर्वपक्षत्वेनोच्यते -

का ग्रहण करने तक का दृष्टांत है। **[तस्माच्छब्दस्य स्फोटात्मकतया यद्वा नित्यभावेन स्थिरत्वं नापेक्ष्यते]** इसलिए शब्द का स्फोटात्मक रूप से अथवा नित्य होने से स्थिर हो ऐसी अपेक्षा नहीं है।।५९।।

पूर्वपक्षी कहता है- इससे तो सत्कार्य सिद्धान्त आ जाएगा? सिद्धांती कहता है-

सत्कार्यसिद्धान्तश्चेत् सिद्धसाधनम् ।।६०।।

सूत्रार्थ=यदि पूर्वपक्षी ऐसा कहे कि- उपर बाले शब्द की व्याख्या में सत्कार्यवाद सिद्ध हो जाएगा? ऐसा होने से स्वीकारित बात की सिद्धि होती है।

[(सत्कार्यसिद्धान्तः-चेत् सिद्धसाधनम्) सत्कार्यसिद्धान्तश्चेत् तदा सिद्धस्य सांख्याभिमतस्य सिद्धपक्षस्य साधनं तदभीष्टमेव, न दोषः] (कार्य उत्पत्ति अभिव्यक्ति से पूर्व विद्यमान होना-सत्कार्यवाद है) सत्कार्य सिद्धान्त हो, सांख्य में जो पहले से स्वीकार्य है (सत्कार्यवाद) उस पक्ष की दुबारा सिद्धि होती है, ऐसा मानने से वह अभीष्ट ही है, उसमें कोई दोष नहीं है।।६०।।

अब अंतिम दो सूत्रों की दूसरी प्रकार से व्याख्या करते हैं- यहाँ पूर्वपक्ष की तरफ से कहा जा रहा है

पूर्वसिद्धसत्त्वस्याभिव्यक्तिर्दीपेनेव घटस्य ।।५९।।

सूत्रार्थः-

[(पूर्वसिद्धसत्त्वस्य-अभिव्यक्तिः-दीपेन-इव घटस्य) यदा शब्दो न स्फोटात्मको न च नित्यस्तदा तु पूर्व सिद्धं सत्त्वं स्वरूपं यस्य तथाभूतस्यार्थस्य शब्दोच्चारणेनाभिव्यक्तिर्भवति सत्कार्यतया] जब शब्द स्फोटात्मक नहीं है और सांख्यमत के अनुसार नित्य भी नहीं है, तब तो पहले से रखे पदार्थ के अर्थ

पूर्वसिद्धसत्त्वस्याभिव्यक्तिर्दीपेनेव घटस्य ।।५९।।

(पूर्वसिद्धसत्त्वस्य-अभिव्यक्तिः-दीपेन-इव घटस्य) यदा शब्दो न स्फोटात्मको न च नित्यस्तदा तु पूर्वं सिद्धं सत्त्वं स्वरूपं यस्य तथाभूतस्यार्थस्य शब्दोच्चारणेनाभिव्यक्तिर्भवति सत्कार्यतया यथा दीपेन घटस्य सदात्मनः पूर्वतो वर्तमानस्याभिव्यक्तिर्भवतीति मन्तव्यं भवेत् ।।५९।।

उत्तरयति -

सत्कार्यसिद्धान्तश्चेत् सिद्धसाधनम् ।।६०।।

(सत्कार्यसिद्धान्तः-चेत् सिद्धसाधनम्) एष पूर्वतः सदात्मनो वर्तमानस्याभिव्यक्तिवादस्तु सत्कार्यसिद्धान्तः सांख्येऽभीष्टः स चेदापतेत् तर्हि (सिद्धसाधनम्) सांख्ये सिद्धस्य पक्षस्य साधनं न तु दोषः ।।६०।।

की उच्चारण से अभिव्यक्ति हो जाती है, सत्कार्य के नियम से **[यथा दीपेन घटस्य सदात्मनः पूर्वतो वर्तमानस्याभिव्यक्तिर्भवतीति मन्तव्यं भवेत्]** जैसे दीपक से घट की (जो कि पहले से विद्यमान है) अभिव्यक्ति हो जाती है उससे ये भी मानना पड़ेगा कि शब्द के सुनने से पहले अर्थ प्रकट हो जाता है ।।५९।।

उत्तरयति -अब सिद्धांती उत्तर देता है-

सत्कार्यसिद्धान्तश्चेत् सिद्धसाधनम् ।।६०।।

[(सत्कार्यसिद्धान्तः-चेत् सिद्धसाधनम्) एष पूर्वतः सदात्मनो वर्तमानस्याभिव्यक्तिवादस्तु सत्कार्यसिद्धान्तः सांख्येऽभीष्टः स चेदापतेत् तर्हि (सिद्धसाधनम्) सांख्ये सिद्धस्य पक्षस्य साधनं न तु दोषः] ये जो पहले से विद्यमान वस्तु का अभिव्यक्तिवाद है यह सत्कार्य सिद्धान्त सांख्य में अभीष्ट है तो सांख्य में जो पहले से सिद्ध है उसे पुनः सिद्ध किया। इसमें कोई दोष नहीं है ।।६०।।

सत्कार्यवाद सत्तात्मक और असत्तात्मक वस्तु का प्रकट होना जीवात्मा के कर्मों की बजह से जगत में भिन्नता होना और जीवात्मा-प्रकति की सत्ता से आश्रित होकर ये सब सिद्ध होती है, परंतु किसी ने कल्पना की जीवात्मा और प्रकृति को कल्पना मान लें, किन्तु जीवात्मा के स्वरूप से भिन्न वस्तु नहीं हैं। इस मान्यता का खंडन करने के लिए ये सूत्र आगे बताता है-

नाद्वैतमात्मनो लिंगात् तद्भेदप्रतीतेः ।।६१।।

सूत्रार्थ=आत्मा एक नहीं हो सकता दो आत्मा हैं दोनों के लक्षण से दोनों के भेद प्रतीत होते हैं।

सत्कार्यवादः सदसद्भ्यां वस्तुनः ख्यानं जीवात्मनः कर्मवशाज्जगद्वैविध्यमिति जीवात्मनः प्रकृतेश्च सत्तामाश्रित्य साध्यते परन्तु भवेतां प्रकृतिजीवात्मानौ किन्तु ब्रह्मात्मनः स्वरूपतो भिन्नवस्तुनी नेति कल्पनां निराकर्तुमाह -

नाद्वैतमात्मनो लिंगात् तद्भेदप्रतीतेः ।।६१।।

(आत्मनः-अद्वैतं न) आत्मा नैक एव, न हि ब्रह्मात्मैव किन्तु जीवात्माऽप्यस्ति। यतः (लिंगात् तद्भेदप्रतीतेः) ब्रह्मात्मजीवात्मनोः पृथक् पृथग्लिंगात् तयोर्भेदप्रत्यक्षात्। तद्यथा - ''द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया सामनं वृक्षं परिषस्वजाते। तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति ।।'' (ऋ० १.१६४.२०) ।।६१।।

प्रकृत्या सह स्याद् ब्रह्मात्मनोऽभेदः सोऽपि -

[(आत्मनः-अद्वैतं न) आत्मा नैक एव, न हि ब्रह्मात्मैव किन्तु जीवात्माऽप्यस्ति] आत्मा ही एक नहीं है, ब्रह्म भी है, प्रकृति भी है, जीवात्मा भी है। यतः क्योंकि **[(लिंगात् तद्भेदप्रतीतेः) ब्रह्मात्मजीवात्मनोः पृथक् पृथग्लिंगात् तयोर्भेदप्रत्यक्षात्]** जीव और ब्रह्म दोनों एक नहीं हैं क्योंकि दोनों के लक्षण अलग अलग है, दोनों का भेद प्रत्यक्ष है। **तद्यथा** जैसे कि- **[''द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया सामनं वृक्षं परिषस्वजाते। तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति।।''(ऋ० १.१६४.२०)]** दो सुंदर पंखों वाले पक्षी हैं मित्रभाव से साथ-साथ रहते हैं एक ही वृक्ष पर दोनों विराजमान हैं। उन दो में से एक पक्षी वृक्ष के फल खाता है, दूसरा पक्षी फल को न खाता हुआ पहले वाले पक्षी के कर्मों को देखता रहता है ।।६१।।

प्रकृति और ब्रह्म का अभेद नहीं है-

नानात्मनाऽपि प्रत्यक्षबाधात् ।।६२।।

सूत्रार्थ=प्रकृति के साथ भी ब्रह्म का एकत्व नहीं है, दोनों को एक मानने पर जगत के नाश आदि धर्म ब्रह्म में भी मानने पड़ेंगे।

[(अनात्मना-अपि न) अनात्मना जडेन प्रकृत्याख्येन प्रधानेन सहापि नाद्वैतमपार्थक्यमैक्यम्] जो अनात्मा है जड़ वस्तु प्रकृति है उस प्रधान नामक वस्तु का ब्रह्म के साथ अद्वैत नहीं है। **[यतः (प्रत्यक्षबाधात्) प्रत्यक्षं हि दृश्यते प्रकृतिपरिणामो जगन्नश्यमानं तत्रापि नश्वरधर्मत्वमापद्येत]** क्योंकि प्रत्यक्ष ही ये दिखता है कि प्रकृति में परिणाम होता है और जगत नाशवान है यदि ब्रह्म और प्रकृति को एक मान लें तो ब्रह्म में भी नाश का धर्म आ जाएगा **[किन्तु स तु प्रकृतिं परिणामयति ''एकं बीजं बहुधा यः करोति'' (श्वेता०**

नानात्मनाऽपि प्रत्यक्षबाधात् ।।६२।।

(अनात्मना-अपि न) अनात्मना जडेन प्रकृत्याख्येन प्रधानेन सहापि नाद्वैतमपार्थक्यमैक्यम् । यतः (प्रत्यक्षबाधात्) प्रत्यक्षं हि दृश्यते प्रकृतिपरिणामो जगन्नश्यमानं तत्रापि नश्वरधर्मत्वमापद्येत किन्तु स तु प्रकृतिं परिणमयति ''एकं बीजं बहुधा यः करोति'' (श्वेता० ६.१२) ।।६२।।

प्रकृतिजीवात्माभ्यामुभाभ्यां सह सकृदैकात्म्यं गतः स्यात्। अत्रोच्यते -

नोभाभ्यां तेनैव ।।६३।।

(उभाभ्यां न तेन-एव) प्रकृतिजीवात्माभ्यामुभाभ्यां सहापि नाद्वैतं गतो भवति तेन पूर्वोक्तेनैव लिंगभेदप्रत्यक्षबाधरूपेण हेतुना ।।६३।।

कथं तर्हयद्वैतकथनं श्रुतौ ''आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्'' (ऐ०उ० १.१.१) । अत्रोच्यते

६.१२)] जबकि श्रुति तो यह कह रही है कि परमात्मा प्रकृति को परिणामित करता है ''जो एक रूप प्रकृति को बहुत रूप बना देता है'' इससे पता चलता है कि वह ब्रह्म प्रकृति से भिन्न है ।।६२।।

प्रकृति और जीवत्मा दोनों को ब्रह्म के साथ एक हों, ऐसा भी नहीं है-

नोभाभ्यां तेनैव ।।६३।।

सूत्रार्थ= प्रकृति और जीव दोनों के साथ ब्रह्म की एकता नहीं है पूर्वोक्त हेतुओं से।

[(उभाभ्यां न तेन-एव) प्रकृतिजीवात्मभ्यामुभाभ्यां सहापि नाद्वैतं गतो भवति तेन पूर्वोक्तेनैव लिंगभेदप्रत्यक्षबाधरूपेण हेतुना] प्रकृति और जीवात्मा के साथ इकट्ठा भी अद्वैत नहीं हो सकता ब्रह्म का, क्योंकि जीव और ब्रह्म की भिन्नता बताई थी उनके भिन्न लक्षण के कारण बताई थी और प्रकृति व ब्रह्म की एकता का भी खंडन पूर्वसूत्र में हुआ था ।।६३।।

पूर्वपक्षी कहता है यदि प्रकृति ब्रह्म जीव सब एक नहीं है फिर श्रुति में अद्वैत का कथन क्यों हुआ ''सृष्टि बनने से पूर्व आत्मा ही एक था'' यहाँ एक ब्रह्म की बात क्यों कही गयी प्रकृति और जीव की क्यों चर्चा नहीं की-

अन्यपरत्वमविवेकानां तत्र ।।६४।।

सूत्रार्थ=उस श्रुति में केवल यह मानना की ब्रह्म ही था ये अज्ञानी लोगों की मान्यता है, जबकि वो श्रुति अन्य (सृष्टि रचना) प्रसंग में है।

[(तत्र-अविवेकानाम्) तत्र श्रुतौ खल्वद्वैतकल्पनं विवेकरहितानामेव] उस वचन में केवल ब्रह्म की कल्पना करना ये अज्ञानी लोगों की बात है, **[यतः (अन्यपरत्वम्) श्रुतेरन्यपरत्वं सृष्टिरचनापरत्वमस्ति]** क्योंकि वहाँ पर पदार्थों की सत्ता का निर्णय नहीं हो रहा था (पदार्थों की सत्ता का प्रकरण नहीं था) वहाँ तो केवल सृष्टि की रचना का प्रकरण है, **[''आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीन्नान्यत्किञ्चन मिषत् स ईक्षते**

-

अन्यपरत्वमविवेकानां तत्र ।।६४।।

(तत्र-अविवेकानाम्) तत्र श्रुतौ खल्वद्वैतकल्पनं विवेकरहितानामेव, यतः (अन्यपरत्वम्) श्रुतेरन्यपरत्वं सृष्टिरचनापरत्वमस्ति ''आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीन्नान्यत्किञ्चन मिषत् स ईक्षते लोकान्नु सृजा इति'' (ऐ०उ० १.१.१) सृष्टितः पूर्वं चेष्टमानो ब्रह्मात्मा ह्यासीज्जीवात्मानो निश्चेष्टा आसन् प्रकृतिरपि निश्चेष्टाऽऽसीत् ।।६४।।

भवतु श्रुतिः सृष्टिरचनापरा परन्तु तत्र जगत्कारणत्वं ब्रह्मात्मनः किमुपादानत्वेन? न वेत्याकांक्षायामाह-

लोकान्नु सृजा इति''(ऐ०उ० १.१.१)] सृष्टि बनने से पूर्व जब प्रलय की स्थिति थी, उस समय एक परमात्मा ही चेतन होश में था और कोई भी चेष्टा करने में समर्थ नहीं था । उसने विचार किया, मै लोकलोकांतरों को बनाता हूँ **[सृष्टितः पूर्वं चेष्टमानो ब्रह्मात्मा ह्यासीज्जीवात्मानो निश्चेष्टा आसन् प्रकृतिरपि निश्चेष्टाऽऽसीत्]** सृष्टि से पूर्व क्रियाशील ज्ञानवान केवल ईश्वर ही था बाकी जीवात्माएं भी थी किन्तु वे निश्चेष्ट थीं और प्रकृति भी क्रिया शून्य थी।।६४।।

चलो मान लिया की वह श्रुति सृष्टि रचना से संबन्धित हो, परंतु जो परमात्मा जगत का कारण है, जिससे ये जगत बनाया बो कौन सा कारण है? इस प्रश्न के उत्तर में कहते हैं-

नात्माऽविद्या नोभयं जगदुपादानकारणं निःसंगत्वात् ।।६५।।

सूत्रार्थ= जगत का उपादान कारण परमात्मा नहीं है और न अविद्या है। क्योंकि वह वस्तु (परमाणुरूप) रूप नहीं है, और न ही ये इकट्ठे मिलकर के बन सकते। तीन पक्षों का खंडन हुआ। तीनों ही पक्षो में ये जगत का उपादान कारण नहीं हो सकते निःसंग होने से।

[(आत्मा-अविद्या जगदुपादानकारणं न-उभयं न निःसंगत्वात्) ब्रह्मात्मा जगतो नोपादानकारणं निःसंगत्वात्] ब्रह्म जगत का उपदान कारण नहीं है, निःसंग होने से, **[उपादानं हि खलु कमप्यन्यं संगत्यैव कार्यात्मना भासते]** उपादान किसी अन्य चेतन वस्तु की संगति करके ही कार्य रूप में प्रतीत होता है **[मृत्तिका यथा कुम्भकारं दण्डचक्रादिकं संगत्य घटरूपेण कार्यात्मना सञ्जायते]** जैसे मिट्टी उपादान कारण है घड़े का और वह कुंभकार दण्ड चाक आदि की संगति करके घट के रूप में कार्य रूप में प्रकट हो जाती है। **[अविद्याऽपि नोपादानकारणम्]** अविद्या भी जगत का उपादान कारण नहीं है, **[अविद्या हि खल्ववस्तुरूपा न ह्यवस्तु संसर्गसमर्थम्]** अविद्या अवस्तु (ठोस पदार्थ नहीं है) रूप है, इसलिए अवस्तु संसर्ग में समर्थ नहीं होती, **[ब्रह्मात्माऽथाविद्या च परस्परं संगत्योपादनं भवेत् तदपि न निःसंगत्वादेव नहि वस्त्ववस्तुनोः संगो भवति]** ब्रह्म और अविद्या दोनों आपस में मिलकर किसी अन्य वस्तु की संगति करके जगत का उपादान बन जाए ऐसा भी नहीं हो सकता। क्योंकि वो सब निःसंग हैं इसलिए दोनों मिलकर के

नात्माऽविद्या नोभयं जगदुपादानकारणं निःसंगत्वात् ।।६५।।

(आत्मा-अविद्या जगदुपादानकारणं न-उभयं न निःसंगत्वात्) ब्रह्मात्मा जगतो नोपादानकारणं निःसंगत्वात्, उपादानं हि खलु कमप्यन्यं संगत्यैव कार्यात्मना भासते मृत्तिका यथा कुम्भकारं दण्डचक्रादिकं संगत्य घटरूपेण कार्यात्मना सञ्जायते । अविद्याऽपि नोपादानकारणम्, अविद्या हि खल्ववस्तुरूपा न ह्यवस्तु संसर्गसमर्थम्, ब्रह्मात्माऽथाविद्या च परस्परं संगत्योपादनं भवेत् तदपि न निःसंगत्वादेव नहि वस्त्ववस्तुनोः संगो भवति । एवं सांख्यमते ब्रह्मात्मा जगत उपादानकारणं न किन्तूपादानकारणमन्तरेण भवतु निमित्तकारणमिति न निषेधस्तस्मान्निमित्तकारणम् ।।६५।।

आत्माद्वैतं निरस्तं परमात्मा जीवात्मा च स्तः, तत्र विशेषोऽवधार्यते -

नैकस्यानन्दचिद्रूपत्वे द्वयोर्भेदात् ।।६६।।

(द्वयोः-एकस्य-आनन्दचिद्रूपत्वे न) परमात्मजीवात्मनोरेकस्य जीवात्मन आनन्दचिद्रूपत्वे

उपादान नहीं हो सकते और ब्रह्म वस्तु तो है पर अविद्या अवस्तु है ऐसे भी संग नहीं हो सकता। **[एवं सांख्यमते ब्रह्मात्मा जगत उपादानकारणं न]** इस प्रकार से सांख्यमत में ब्रह्म जगत का उपादान कारण नहीं है **[किन्तूपादानकारणमन्तरेण भवतु निमित्तकारणमिति न निषेधस्तस्मान्निमित्तकारणम्]** किन्तु उपादान कारण से भिन्न वह निमित्त कारण हो सकता है, उपादान कारण का निषेध है निमित्त कारण का नहीं ।।६५।।

आत्मा एक है इस बात का खंडन हो चुका। अब दोनों में भेद क्या है? ये बताएँगे-

नैकस्यानन्दचिद्रूपत्वे द्वयोर्भेदात् ।।६६।।

सूत्रार्थ= जीवात्मा और परमात्मा एक नहीं है, क्योंकि जीवात्मा में आनन्द का अभाव है और वह केवल चेतन स्वरूप है। इस प्रकार दोनों में भेद की श्रुति होने से।

[(द्वयोः-एकस्य-आनन्दचिद्रूपत्वे न) परमात्मजीवात्मनोरेकस्य जीवात्मन आनन्दचिद्रूपत्वे न स्तः स तु चिदेव परमात्मनस्तु स्त एव] दो चेतन है एक परमात्मा दूसरा जीवात्मा । इनमें से एक में आनन्द और चिद्रूपता ये दोनों गुण जीवात्मा में नहीं है, परमात्मा में ये दोनों हैं । जीवात्मा केवल चेतन ही है उसमें आनन्द नहीं है, **[कुतः (भेदात्) भेदेन वर्णनात् ''रसो वै सः, रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति']** शास्त्रों में दोनों का भेद से वर्णन है ''वह (ईश्वर) आनन्द से परिपूर्ण हैं'', इस रस (परमात्मा) को प्राप्त करके वह जीवात्मा आनंदी हो जाता है **[(तै०उ० २.७) अत्राऽऽनन्दो जीवात्मनि नास्ति चेतनत्वमेवेति स्पष्टं]** यहाँ बताया जीवात्मा में आनन्द नहीं है चेतनता ही है केवल ये स्पष्ट है **[तथाऽऽनन्दस्तु परमात्मनि विद्यते]** तथा आनन्द तो परमात्मा में है **[तमानन्दरूपं लब्ध्वा हि जीवात्माऽऽनन्दमनुभवति]** उस आनन्द रूप परमात्मा को प्राप्त करके जीवात्मा आनन्द का अनुभव करता है ।।६६।।

पूर्वपक्षी ने प्रश्न उठाया- चलो जीवात्मा स्वरूप से आनन्द रूप न हो परंतु मुक्ति में तो आनन्द रूप हो जाएगा? इस पर कहते हैं-

न स्तः स तु चिदेव परमात्मनस्तु स्त एव, कुतः (भेदात्) भेदेन वर्णनात् ''रसो वै सः, रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति' (तै०उ० २.७) अत्राऽऽनन्दो जीवात्मनि नास्ति चेतनत्वमेवेति स्पष्टं तथाऽऽनन्दस्तु परमात्मनि विद्यते तमानन्दरूपं लब्ध्वा हि जीवात्माऽऽनन्दमनुभवति ।।६६।।

जीवात्मा स्वरूपत आनन्दरूपो न भवेत् परन्तु मुक्तौ तु स्यात् स आनन्दरूपः । अत्रोच्यते -

दुःखनिवृत्तेर्गौणः ।।६७।।

(दुःखनिवृत्तेः-गौणः) मुक्तौ दुःखनिवृत्तिर्जायते तदा तत्रानन्दरूपो भवत्यात्मा गौणो न मुख्यः, न हि तदा स आनन्दरूपो भवति किन्तु स आनन्दी भवति तेनानन्दरूपेण परमात्मना सहानन्दी धनेन धनीव भवति ।।६७।।

तदाऽऽनन्दरूपत्वं तस्य -

दुःखनिवृत्तेर्गौणः ।।६७।।

सूत्रार्था= मुक्ति में दुःखों से हट जाने पर जीवात्मा आनन्द स्वरूप हो जाता है, यह गौण कथन है क्योंकि वह परमात्मा के आनन्द से आनंदी होता है। जैसे धनिक धन से धनी होता है।

[(दुःखनिवृत्तेः-गौणः) मुक्तौ दुःखनिवृत्तिर्जायते तदा तत्रानन्दरूपो भवत्यात्मा गौणो न मुख्यः] सिद्धांती कहता है कि- मुक्ति में दुःख की निवृत्ति हो जाएगी और वहाँ जीवात्मा आनन्द स्वरूप हो जाएगा। ऐसा यदि कोई कह दे तो ये गौण कथन है, मुख्य कथन नहीं, **[न हि तदा स आनन्दरूपो भवति किन्तु स आनन्दी भवति तेनानन्दरूपेण परमात्मना सहानन्दी धनेन धनीव भवति]** वह आनन्द रूप नहीं होता किन्तु आनंदी होता है जैसे कोई धनी हो जाता है धन से युक्त हो जाता है धन नहीं होता ऐसे ही परमात्मा के सानिध्य से वह आनंदी होता है ।।६७।।

फिर मुक्ति में जीवात्मा को आनन्द स्वरूप क्यों कह रहे हैं? इसका उत्तर देते हैं-

विमुक्तिप्रशंसा मन्दानाम् ।।६८।।

सूत्रार्थ=मुक्ति में आनन्द का प्रकट होना ये कथन सामान्य जनों में मुक्ति कि प्रति रुचि उत्पन्न होवे, इसलिए मुक्ति की प्रशंसा मात्र है, विवेकियों के लिए तो सम्पूर्ण दुःखों से छुटना ही मुक्ति है ।

[(विमुक्तिप्रशंसा मन्दानाम्) मुक्तावानन्दाभिव्यक्तिः खलु विमुक्तिप्रशंसा मन्दानां दृष्टौ विवेकिनां तु दुःखनिवृत्तिः] मुक्ति में आनन्द की अभिव्यक्ति होगी ये मुक्ति की प्रशंसा है मंद बुद्धि वालों की दृष्टि ये है कि वहाँ आनन्द मिलेगा विवेकी बुद्धिमान लोगों की दृष्टि ये है कि वहाँ दुःखों से छूट जाएंगे ।।६८।।

दुःख से छूटना मुक्ति है और आनन्द गौंण भाव है क्योंकि आनन्द तो सुख है । फिर सुख-दुःख की अनुभूति तो मन से होती है, मन व्यापक नहीं है कि जिससे मुक्ति में भी आनन्द की अनुभूति कर लेंगे। इस

विमुक्तिप्रशंसा मन्दानाम् ।।६८।।

(विमुक्तिप्रशंसा मन्दानाम्) मुक्तावानन्दाभिव्यक्तिः खलु विमुक्तिप्रशंसा मन्दानां दृष्टौ विवेकिनां तु दुःखनिवृत्तिः ।।६८।।

दुःखनिवृत्तिर्मुक्तिरानन्दो गौणभावेनोच्यते प्रशंसायां यत आनन्दः सुखम्, पुनः सुखदुःखानुभूतिर्मनसा भवति, मनसो न व्यापकत्वं यन्मुक्तावपि तेनानन्दानुभूतिः स्यादित्येवोच्यते -

न व्यापकत्वं मनसः करणत्वादिन्द्रियत्वाद्वा वास्यादिवच्चक्षुरादिवत् ।।६९।।

(मनसः-व्यापकत्वं न) मनसो विभुत्वं नास्ति (करणत्वात्वास्यादिवत्) करममुपकरणं साधनं साधनत्वात् कुठारादिवत् (वा) अथवा (इन्द्रियत्वात्-चक्षुरादिवत्) एकादशेन्द्रियेषु तस्येन्द्रियभावाच्चक्षुरादिवत्। यथेव हि कुठारादीनि साधनानि चक्षुरादीनीन्द्रियाणि न व्यापकानि सर्वत्र

विषय में कहते हैं-

न व्यापकत्वं मनसः करणत्वादिन्द्रियत्वाद्वा वास्यादिवच्चक्षुरादिवत् ।।६९।।

सूत्रार्थ=मन सर्वव्यापक नहीं है कुठार आदि के समान साधन होने से तथा चक्षु आदि के समान इंद्रिय होने से।

[(मनसः-व्यापकत्वं न) मनसो विभुत्वं नास्ति] मन विभु (व्यापक) नहीं है **[(करणत्वात्वास्यादिवत्) करममुपकरणं साधनं साधनत्वात् कुठारादिवत्]** मन एक साधन है करण-उपकरण है, जैसे लकड़ी काटने का साधन कुल्हाड़ी होता है **[(वा) अथवा (इन्द्रियत्वात्-चक्षुरादिवत्) एकादशेन्द्रियेषु तस्येन्द्रियभावाच्चक्षुरादिवत्]** ग्यारह इंद्रियों में उसका इंद्रिय स्वरूप होने से चक्षु आदि इंद्रिय बाहरी इंद्रिय हैं मन आंतरिक इंद्रिय है। **[यथेव हि कुठारादीनि साधनानि चक्षुरादीनीन्द्रियाणि न व्यापकानि सर्वत्र स्वव्यापारकराणि तथैव मनोऽपि]** जैसे कुठार आदि साधन हैं एकदेशीय हैं और चक्षु आदि इंद्रिय हैं वह भी एकदेशीय है एक स्थान पर ही कार्य कर सकता है सब जगह नहीं इसी प्रकार मन भी एकदेशीय है, सर्वव्यापक नहीं है ।।६९।।

इसी विषय में एक और हेतु बताते हैं-

सक्रियत्वाद् गतिश्रुतेः ।।७०।।

सूत्रार्थ=श्रुति में गति कथन होने से मन सक्रिय क्रियावन है। और सक्रिय होने से एकदेशीय है।

[(सक्रियत्वात्) मनसः क्रियावत्त्वात् क्रियामयात् परिणामरूपक्रियामयात् (गतिश्रुतेः) पुनस्तस्य गतिश्रुतित्वात् "यद् वो मनः परागतं यद बद्धमिह वेह वा। तद् व आवर्तयामसि..." (अथर्व० ७.१ंग.४) "गच्छतीव च मनः" (केनो० ४.५)] मन के क्रिया वाला होने से क्रियामय होने से, परिणामरुप क्रियामय होने से, (मन में क्रियारूप परिणाम होते रहते हैं अवयव वाला होने से) और उसकी गति

स्वव्यापारकराणि तथैव मनोऽपि ।।६९।।

तत्रैवापरो हेतुः -

सक्रियत्वाद् गतिश्रुतेः ।।७०।।

(सक्रियत्वात्) मनसः क्रियावत्त्वात् क्रियामयात् परिणामरूपक्रियामयात् (गतिश्रुतेः) पुनस्तस्य गतिश्रुतित्वात् ''यद् वो मनः परागतं यद् बद्धमिह वेह वा । तद् व आवर्तयामसि...'' (अथर्व० ७.१३.४) ''गच्छतीव च मनः'' (केनो० ४.५)।।७०।।

मनो न स्याद् व्यापकं किन्तु भवेदणु यथा जीवात्माऽणुरस्ति स मोक्षेऽवतिष्ठते तद्वन्मनोऽपि स्यादणु मोक्षानन्दं परिचाययेदत्रोच्यते -

न निर्भागत्वं तद्योगाद् घटादिवत्* ।।७१।।

(निर्भागत्वं न) अणुत्वेऽपि मनसो निर्भागत्वं भागराहित्यं नास्ति (तद्योगात्-घटादिवत्)

सुनाई देती है। जो आपका मन चला गया, और जो बंधा हुआ है इस वस्तु में और इस वस्तु में। उस तुम्हारे मन को हम वापिस पाएंगे। इससे सिद्ध हुआ मन सर्वव्यापक नहीं है। और मन ऐसा लगता है ये गया और वो गया ।।७०।।

मन व्यापक न हो अणु हो छोटा हो जैसे जीवात्मा अणु हो छोटा हो एकदेशीय हो परंतु जीवात्मा तो मोक्ष में रहता है मन भी अणु होकर मोक्ष में चला जाए आत्मा के साथ साथ और मोक्ष भुगवादे जीवात्मा को? इस पर कहते हैं-

न निर्भागत्वं तद्योगाद् घटादिवत्* ।।७१।।

सूत्रार्थ=अवयवों से युक्त होने से घड़े आदि के समान मन खण्ड रहित नहीं है।

[(निर्भागत्वं न) अणुत्वेऽपि मनसो निर्भागत्वं भागराहित्यं नास्ति (तद्योगात्-घटादिवत्) भागयोगाद् घटादिवत्] सिद्धांती कहता है- मन अणु है, परंतु वह निरावयव नहीं है भागरहित नहीं है (सत, रज, तम के छोटे छोटे टुकड़े तो उसमें विद्यमान हैं) भागों का संयोग होने से घटादि के समान, **[यथा घटः पटः कटोवेत्येवमादिपदार्थः स्वभागैर्युक्तः प्रयुक्तश्च भवति तथैव मनोऽपीति सर्वजनानुभूतिः]** जैसे घड़ा, कपड़ा, चटाई, वस्त्र आदि अपने-अपने भागों से युक्त होता है प्रयुक्त होता है उसी प्रकार मन भी टुकड़ों से जुड़कर बना है, जिन्होंने शास्त्र पढ़े हैं उनकी अनुभूति है, **[न हि मनः सर्वेन्द्रियैः सह सकृत् संयुज्यते सत्त्वरजस्तमोभिरवयवैश्च लक्ष्यते]** मन सब इंद्रियों के साथ एक साथ युक्त नहीं होता है, मन सत्व-रज-तम अवयवों से जाना जाता है, ऐसा दिखता है और इन गुणों से प्रभावित होता रहता है ।।७१।।

भागयोगाद् घटादिवत्, यथा घटः पटः कटोवेत्येवमादिपदार्थः स्वभागैर्युक्तः प्रयुक्तश्च भवति तथैव मनोऽपीति सर्वजनानुभूतिः, न हि मनः सर्वेन्द्रियैः सह सकृत् संयुज्यते सत्त्वरजस्तमोभिरवयवैश्च लक्ष्यते ।।७१।।

नित्यं स्यान्मनस्तस्य जीवात्मना सह नित्यसम्बद्धत्वान्मोक्षानन्दानुभूतिनिमित्तं भवेदित्याकांक्षायामुच्यते –

प्रकृतिपुरुषयोरन्यत् सर्वमनित्यम् ।।७२।।

(प्रकृतिपुरुषयो-अन्यत्) प्रकृतिपुरुषाभ्यां भिन्नम् (सर्वम्-अनित्यम्) सर्वं वस्तुजातं खल्वनित्यं न हि नित्यमस्ति, किं मन एवाननित्यमिति न किन्तु प्रकृतिपुरुषौ विहाय मन आदिकं सर्वमनित्यम् ।।७२।।

पूर्वपक्षी कहता है कि मन को नित्य मानलो उसका जीवात्मा के साथ नित्य समबन्ध मानलो और जब जीवात्मा मोक्ष में जाएगा तव मन को भी साथ में ले जाएगा और वहाँ मोक्ष आनन्द की अनुभूति का कारण बन जाएगा? ऐसे बात कहने पर सिद्धांती उत्तर देता है–

प्रकृतिपुरुषयोरन्यत् सर्वमनित्यम् ।।७२।।

सूत्रार्थ= प्रकृति और पुरुष से भिन्न जो भी वस्तुए है वे सब अनित्य हैं।

[(प्रकृतिपुरुषयो-अन्यत्) प्रकृतिपुरुषाभ्यां भिन्नम् (सर्वम्-अनित्यम्) सर्वं वस्तुजातं खल्वनित्यं न हि नित्यमस्ति] प्रकृति–पुरुष इन दो से भिन्न कोई भी वस्तु हो सब कि सब वस्तुएँ अनित्य हैं कोई भी नित्य नहीं हैं, **[किं मन एवाननित्यमिति न किन्तु प्रकृतिपुरुषौ विहाय मन आदिकं सर्वमनित्यम्]** मन न तो प्रकति है और न ही पुरुष है, इन दोनों से अलग है इसलिए अनित्य है और केवल मन ही अनित्य हो ऐसा नहीं है किन्तु प्रकृति पुरुष को छोड़कर प्रत्येक वस्तु अनित्य है ।।७२।।

भाग (टुकड़े अवयव) वाला जो भी पदार्थ होता है वह अनित्य होता है, प्रकृति पुरुष दोनों को नित्य बताया है क्योंकि दोनों अवयव रहित है। इस बात को दिखायेंगे–

न भागलाभो भोगिनो * निभागत्वश्रुतेः ।।७३।।

सूत्रार्थ= भोगी पदार्थों के भागों का लाभ नहीं हैं क्योंकि श्रुति में निर्भाग बताया गया है।

[(भोगिनः-भागलाभः-न) भोगोऽस्यास्तीति भोगी जीवात्मा तथा भोगोऽस्यामस्तीति भोगिनी प्रकृतिः] भोगी का अर्थ है जीवात्मा, भोग करने वाला है, जो भोग करता है वह जीवात्मा है भोग है जिसमें वो है भोग वाली भोगिनी प्रकृति परंतु प्रकृति भोग वाली है जीव को भोग देती रहती है जीवात्मा भोगता है, **[सूत्रे भोगिनः-एकशेषत्वं सामान्येनैकवचनं च]** है तो ये दो और सूत्र में एक वचन है–समास प्रक्रिया में एक शेष हो जाता है दो का एक बना देते हैं। सामान्य रूप से जाति वाचक होने से के वचन हो गया। **[भोगिनो**

सभागः पदार्थोऽनित्यः, प्रकृतिपुरुषौ न सभागावित्यपि दर्शयति -

न भागलाभो भोगिनो * निभागत्वश्रुतेः ।।७३।।

(भोगिनः-भागलाभः-न) भोगोऽस्यास्तीति भोगी जीवात्मा तथा भोगोऽस्यामस्तीति भोगिनी प्रकृतिः, सूत्रे भोगिनः-एकशेषत्वं सामान्येनैकवचनं च। भोगिनो भोगमनुतिष्ठतो भोक्तुस्तथा भोगवतो भोगाधिष्ठानस्य प्रकृत्याख्यस्याव्यक्तस्य भागलाभो भागसिद्धिः सावयवता नास्ति भोगस्यैव भागसिद्धिः सावयवता भवति न तु प्रकृतेः पुरुषस्य (निर्भागत्वश्रुतेः) जीवात्मनः प्रकृतेश्च निर्भागत्वश्रुतिदर्शनात् ''अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णाम्'' (श्वेता० ४.५) मनस्तु सभागं सावयवमत एवानित्यं तस्यानित्यत्वान्मुक्तौ न तदानन्दानुभूतिसाधनं कल्पयितुं युज्यते ।।७४।।

एवम् -

भोगमनुतिष्ठतो भोक्तुस्तथा भोगवतो भोगाधिष्ठानस्य प्रकृत्याख्यस्याव्यक्तस्य भागलाभो भागसिद्धिः सावयवता नास्ति] जो भोगी है भोग का अनुष्ठान करता है भोग भोगता है, ऐसे भोक्ता का तथा भोग वाले पदार्थ का भोग वाले अधिष्ठान का प्रकृति नमक अव्यक्त पदार्थ का जो भोग देती रहती है उसमें भी अवयव टुकड़े नहीं हैं **[भोगस्यैव भागसिद्धिः सावयवता भवति]** जो भोग कार्य रूप होते हैं उन्ही में टुकड़े होते हैं अवयव होते हैं **[न तु प्रकृतेः पुरुषस्य]** प्रकृति और पुरुष की सावयवता नहीं है **[(निर्भागत्वश्रुतेः) जीवात्मनः प्रकृतेश्च निर्भागत्वश्रुतिदर्शनात्]** प्रकृति और जीवात्मा के निर्भागत्व की एक श्रुति देखी जाती है- **[''अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते अजामेंकां लोहितशुक्लकृष्णाम्'']** इस वचन में दोनों की ही चर्चा है- जो जन्म नहीं लेता वह एक है प्रकृति से प्रीति करता हुआ और उसका सेवन करता हुआ और जो एक प्रकृति है वह भी एक है और लाल-श्वेत-काले रंग वाली है **[(श्वेता० ४.५) मनस्तु सभागं सावयवमत एवानित्यं]** मन भाग सहित है उसमें बहुत टुकड़े हैं वह बनाया गया है और वह अनित्य है **[तस्यानित्यत्वान्मुक्तौ न तदानन्दानुभूतिसाधनं कल्पयितंग युज्यते]** वह अनित्य है इसलिए जब जीवात्मा मोक्ष में जाएगा तो मन यहीं टूट फुटकर नष्ट हो जाएगा और मुक्ति में आनंद की अनुभूति का साधन नहीं बन पाएगा इसलिए उसकी कल्पना मुक्ति में नहीं करनी चाहिए ।।७४।।

नानन्दाभिव्यक्तिर्मुक्तिर्निर्धर्मकत्वात्+ ।।७४।।

सूत्रार्थ=मुक्ति में आनन्द की अभिव्यक्ति नहीं होती अर्थात् आनन्द का प्रादुर्भाव नहीं होता आत्मा के आनंद स्वरूप धर्म से रहित होने से।

[(आनन्दाभिव्यक्तिः-मुक्तिः-न) आनन्दस्याभिव्यक्तिः प्रादुर्भावो मुक्तिर्नास्ति] जीवात्मा में कोई आनन्द हो और मोक्ष की स्थिति में वह प्रकट हो जाता हो, ऐसा नहीं है। **[(निर्धर्मकत्वात्) तस्यात्मन**

नानन्दाभिव्यक्तिर्मुक्तिर्निर्धर्मकत्वात्+ ।।७४।।

(आनन्दाभिव्यक्तिः-मुक्तिः-न) आनन्दस्याभिव्यक्तिः प्रादुर्भावो मुक्तिर्नास्ति (निर्धर्मकत्वात्) तस्यात्मन आनन्दरूपधर्मरहितत्वात् ।।७४।।

ननु भवतु मुक्तिरात्मनो विशेषगुणस्योच्छेदो येन स बध्यते । अत्रोच्यते -

न विशेषगुणोच्छित्तिस्तद्वत् ।।७५।।

(विशेषगुणोच्छित्तिः-न तद्वत्) विशेषगुणोच्छेदो मुक्तिरित्यपि न तद्वत् पूर्वोक्तान्निर्धर्मकत्वाद्धेतोः । यथा ह्यात्मन आनन्दो गुणो नास्ति यस्तस्य मुक्तौ प्रादुर्भवेत् तथैवात्मनो नैतादृशो गुणो यो मुक्तौ विनश्येत् तस्य तथाभूतगुणेन रहितत्वात्। मुक्तौ खलु न कश्चिद् गुण उपजायते न हीयते-आत्मन उपजनापायगुणरहितत्वात्।।७५।।

आनन्दरूपधर्मरहितत्वात्] क्योंकि आत्मा में ऐसा आनंद रूप कोई धर्म है ही नहीं।।७४।।

ऐसा मान लो कि जीवात्मा का अपना कोई विशेष गुण हों उसका छूट जाना मुक्ति मानलो? इस पर कहते हैं-

न विशेषगुणोच्छित्तिस्तद्वत् ।।७५।।

सूत्रार्थ= जीवात्मा का मुक्ति में कोई विशेष गुण (स्वाभाविक धर्म) छुट्टा भी नहीं है, आत्मा में किसी उत्पन्न होने वाले या नष्ट होने वाले धर्म के न होने से।

[(विशेषगुणोच्छित्तिः-न तद्वत्) विशेषगुणोच्छेदो मुक्तिरित्यपि न तद्वत् पूर्वोक्तान्निर्धर्मकत्वाद्धेतोः] जीवात्मा का कोई अपना गुण हो वह नष्ट हो जाए उसके नष्ट होने को मुक्ति कहने लग जाएँ। ये भी मुक्ति का स्वरूप ठीक नहीं है क्योंकि ऐसा कोई धर्म नहीं है जिसके छूट जाने से जीवात्मा की मुक्ति मान लें, यदि कोई गुण स्वाभाविक हुआ तो वह छूटेगा नहीं। **[यथा ह्यात्मन आनन्दो गुणो नास्ति यस्तस्य मुक्तौ प्रादुर्भवेत् तथैवात्मनो नैतादृशो गुणो यो मुक्तौ विनश्येत् तस्य तथाभूतगुणेन रहितत्वात्]** जैसे आत्मा का आनन्द गुण अपना नहीं है जो उसकी मुक्ति में प्रकट हो जाता हो उसी प्रकार से आत्मा का ऐसा भी कोई गुण नहीं है जो मुक्ति में नष्ट हो जाता हो और उसके नष्ट होने पर ये कहा जाए कि इसकी मुक्ति हो गई। जीवात्मा ऐसे गुण से रहित है। **[मुक्तौ खलु न कश्चिद् गुण उपजायते न हीयते-आत्मन उपजनापायगुणरहितत्वात्]** मुक्ति में न तो कोई गुण नया उत्पन्न होता है और न ही नष्ट होता है, आत्मा नित्य वस्तु है और नित्य वस्तु में कोई गुण पैदा होता हो या नष्ट होता हो ऐसा नहीं है ।।७५।।

न विशेषगतिर्निष्क्रियस्य ।।७६।।

सूत्रार्थ=जो आत्मा निष्क्रिय है उसमें कुछ विशेष क्रिया परिणाम शुरू हो जाते हों और उसे मुक्ति माना

अथ -

न विशेषगतिर्निष्क्रियस्य ।।७६।।

(विशेषगतिः-न निष्क्रियस्य) संसारादूर्ध्व काचिद् विशिष्टा गतिर्मुक्तिर्न निष्क्रियस्यात्मनः। मुक्तिर्हि कैवल्यमात्मनः, गतिश्च लिंगशरीरादिकमपेक्ष्य भवति तदा सा स्थितिर्न कैवल्यस्थितिर्मुक्तिः ।।७६।।

पुनश्च -

नाकारोपरागोच्छित्तिः क्षणिकत्वादिदोषात् ।।७७।।

(आकारोपरागोच्छित्तिः-न) विषयाकारस्योपरागात् क्षणिकविज्ञानरूपे ह्यात्मनि बन्धो भवति, तस्य विषयोपरागस्योच्छेदो मुक्तिरित्यपि न (क्षणिकत्वादिदोषात्) मुक्तेः क्षणिकत्वमापद्येत तथोपायेऽपुरुषार्थत्वं क्षणान्तरे स्वतो बन्धनिवृत्तिप्रसंगश्चापद्येत तस्मात् ।।७७।।

तथा -

न सर्वोच्छित्तिरपुरुषार्थत्वादिदोषात् ।।७८।।

जाए तो वह ठीक नहीं।

[(विशेषगतिः-न निष्क्रियस्य) संसारादूर्ध्व काचिद् विशिष्टा गतिर्मुक्तिर्न निष्क्रियस्यात्मनः] संसार से उपर कोई गति हो उसका नाम मुक्ति हो निष्क्रिय आत्मा की ऐसी कोई गति हो तो इसका नाम भी मुक्ति नहीं। **[मुक्तिर्हि कैवल्यमात्मनः]** आत्मा का कैवल्य हो जाना (शरीर से अलग हो जाना) मुक्ति है, **[गतिश्च लिंगशरीरादिकमपेक्ष्य भवति]** गति लिंग शरीर (पुनर्जन्म की प्राप्ति सूक्ष्म शरीर) के आधार पर होती है **[तदा सा स्थितिर्न कैवल्यस्थितिर्मुक्तिः]** तब यदि सूक्ष्म शरीर के साथ गति हो रही है तो वह कैवल्य की स्थिति मुक्ति नहीं है।।७६।।

नाकारोपरागोच्छित्तिः क्षणिकत्वादिदोषात् ।।७७।।

सूत्रार्थ= भौतिक वस्तुओं का आसक्ति वाला सम्बंध बंधन का कारण माना जाए और उसके विनाश को मुक्ति माना जाए ये मान्यताएँ क्षणिकवाद (विज्ञानवाद आदि) में ठीक नहीं है।

[(आकारोपरागोच्छित्तिः-न) विषयाकारस्योपरागात् क्षणिकविज्ञानरूपे ह्यात्मनि बन्धो भवति] विषय आकार के उपराग (सम्बंध) से आत्मा को क्षणिक मानें अथवा विज्ञानरुप माने वस्तुरूप न मानें, ऐसा मानने पर इन पक्षों में विषयों के सम्बंध से बंधन होता है, **[तस्य विषयोपरागस्योच्छेदो मुक्तिरित्यपि न]** वस्तुओं का राग आसक्ति है वह बंधन का कारण माना जाए और फिर वह आसक्ति नाष्ट हो जाए और उसकी मुक्ति हो जाए, ये सारी व्यवस्थाएं क्षणिक विज्ञानपक्ष में सिद्ध नहीं होती **[(क्षणिकत्वादिदोषात्) मुक्तेः क्षणिकत्वमापद्येत]** उस पक्ष में ये दोष आएगा जब हर वस्तु क्षणिक है तो फिर मुक्ति भी क्षणिक हो जाएगी? **[तथोपायेऽपुरुषार्थत्वं क्षणान्तरे स्वतो बन्धनिवृत्तिप्रसंगश्चापद्येत तस्मात्]** उसका उपाय करना पुरुषार्थ करना निरर्थक होगा क्योंकि बंधन भी तो क्षणिक होगा उसका भी विनाश हो ही जाएगा, इसलिए क्षणिकवाद

(सर्वोच्छित्तिः-न) सर्वस्य विज्ञानस्वरूपस्यात्मनश्चापि खलूच्छेदो मुक्तिर्न युक्ता (अपुरुषार्थत्वादिदोषात्) नह्यात्मनाशः पुरुषार्थस्तथा निरवयवस्य चेतनस्य नाशप्रसंगदोषश्चापद्यते न हि चेतनस्य निरवयवस्य नाशेन भाव्यम् ।।७८।।

एवं शून्यमपि ।।७९।।

(शून्यम्-अपि-एवम्) एवं शून्यमपि मुक्तिर्न युक्ताऽपुरुषार्थत्वादिदोषात्। शून्यरूपायै मुक्त्यै पुरुषार्थस्य नैरर्थक्यं तथा ज्ञातुरात्मनः शून्यत्वे नाशप्रसक्तिः किन्तु तन्नाशासम्भवः ।।७९।।

अथ -

संयोगाश्च वियोगान्ता इति देशादिलाभोऽपि ।।८०।।

(देशादिलाभः-अपि न) विशेषदेशांगनासुखभोगादिलाभोऽपि मुक्तिर्न युक्ता (च) यतश्च

ठीक नहीं इनमें तो बंधन और मुक्ति की ठीक मान्यता सिद्ध नहीं होती ।।७७।।

तथा -

न सर्वोच्छित्तिरपुरुषार्थत्वादिदोषात् ।।७८।।

सूत्रार्थ= नित्य निरवयव चेतन जीवात्मा का सर्व विनाश भी मुक्ति नहीं है, ऐसा मानने पर पुरुषार्थ के व्यर्थ होने से।

[(सर्वोच्छित्तिः-न) सर्वस्य विज्ञानस्वरूपस्यात्मनश्चापि खलूच्छेदो मुक्तिर्न युक्ता] सभी ज्ञान स्वरूप हैं आत्मा भी ज्ञान स्वरूप हैं उन सबका उच्छेद (नाश) हो जावे और इसको मुक्ति मान लिया जावे ये भी मुक्ति का स्वरूप उचित नहीं है **[(अपुरुषार्थत्वादिदोषात्) नह्यात्मनाशः पुरुषार्थस्तथा]** और न ही आत्मा का नाश कर लेना मुक्ति है क्योंकि यह किसी भी पुरुष का प्रयोजन नहीं है **[निरवयवस्य चेतनस्य नाशप्रसंगदोषश्चापद्यते न हि चेतनस्य निरवयवस्य नाशेन भाव्यम्]** तथा आत्मा चेतन है निरवयव है उसके नाश का प्रसंग दोष आएगा, जबकि चेतन वस्तु निरवयव वस्तु का नाश हो ही नहीं सकता। इसलिए ये पक्ष भी ठीक नहीं है ।।७८।।

एवं शून्यमपि ।।७९।।

सूत्रार्थ=मुक्ति में सब कुछ शून्य हो जाए अर्थात कुछ भी न हो ऐसा भी ठीक नहीं है।

[(शून्यम्-अपि-एवम्) एवं शून्यमपि मुक्तिर्न युक्ताऽपुरुषार्थत्वादिदोषात्] सब कुछ शून्य मान लेना ये भी मुक्ति का सही स्वरूप नहीं है क्योंकि पुरुष का ये प्रयोजन नहीं की वह स्वयं को गायब कर दे। **[शून्यरूपायै मुक्त्यै पुरुषार्थस्य नैरर्थक्यं]** मुक्ति भी शून्य रूप हो वहाँ कुछ भी न हो, ये तो मुक्ति के लिए पुरुषार्थ की निरर्थकता है **[तथा ज्ञातुरात्मनः शून्यत्वे नाशप्रसक्तिः किन्तु तन्नाशासम्भवः]** ज्ञाता जीवात्मा भी शून्य हो जाएगा ऐसा मानने पर जीवात्मा के नाश का दोष आयेगा किन्तु जीवात्मा का नाश असंभव है । इसलिए यह शून्यवाद की मान्यता भी ठीक नहीं है ।।७९।।

अथ

(संयोगाःवियोगान्ताः-इति) बाह्यवस्तुसमागमाः खलु वियोगान्ताः सन्तीति हेतोः । उच्यते च ''संयोगाश्च वियोगान्ता मरणान्तं च जीवितम्'' (वाल्मीकि०रा०अयो० १०५.१६) ।।८०।।

पुनः -

न भागियोगो भागस्य ।।८१।।

(भागस्य भागियोगःन) भागस्यांशस्यांशरूपजीवात्मनो भागिन्यंशिनि परमात्मनि योगः संयोगो लयो वा न मुक्तिर्युज्यते । संयोगो हि वियोगान्त इति हेतोस्तथा लये ह्यात्मनाशात्, न चाखण्डस्य परमात्मनो जीवात्मा तथाभूतो भागोंऽशः खण्डो यथा खण्डवत्यां पृथिव्यां खण्डाः पाषाणादयः संयुज्यन्ते विलीयन्ते च । जीवात्मा तु परमात्मन एकदेशवर्तित्वादंशस्तस्मिन् तस्य तथायोगस्तु बद्धस्यापि वर्तते हि ।।८१।।

संयोगाश्च वियोगान्ता इति देशादिलाभोऽपि ।।८०।।

सूत्रार्थ= किसी स्थान विशेष अथवा विशेष सुख की प्राप्ति मुक्ति नहीं है, जो संयोग से प्राप्त होगी उसका वियोग भी होता है।

[(देशादिलाभः-अपि न) विशेषदेशांगनासुखभोगादिलाभोऽपि मुक्तिर्न युक्ता] विशेष सुख भोगों की प्राप्ति भी मुक्ति नहीं है **[(च) यतश्च (संयोगाःवियोगान्ताः-इति) बाह्यवस्तुसमागमाः खलु वियोगान्ताः सन्तीति हेतोः]** क्योंकि जो बाह्य वस्तुए प्राप्त होती हैं उनका संयोग होता है तो एक न एक दिन वियोग भी होता है। **[उच्यते च ''संयोगाश्च वियोगान्ता मरणान्तं च जीवितम्'' (वाल्मीकि०रा०अयो० १०५.१६)]** क्योंकि शास्त्रों में बताया गया है- जो संयोग होते है वे अंत में वियोग में बदल जाते हैं और जो जिएगा एक दिन मरण को भी प्राप्त होगा ।।८०।।

पुनः -

न भागियोगो भागस्य ।।८१।।

सूत्रार्थ=जीवात्मा ब्रह्म का अंश हो और अंश होने से उसका विलय हो जाए। ये मुक्ति का स्वरूप नहीं है।

[(भागस्य भागियोगःन) भागस्यांशस्यांशरूपजीवात्मनो भागिन्यंशिनि परमात्मनि योगः संयोगो लयो वा न मुक्तिर्युज्यते] कोई जीवात्मा को परमात्मा का अंश मानता हो और भागी अंशी परमात्मा को मानता हो जैसे अंश का अंशी में लोप हो जाएगा ऐसे ही जीवात्मा परमात्मा में लीन हो जाए तथा इसका नाम मुक्ति मान लिया जाए, तो ये भी ठीक नहीं। **[संयोगो हि वियोगान्त इति हेतोस्तथा लये ह्यात्मनाशात्]** क्योंकि जिसका संयोग होगा उसका वियोग भी होगा और यदि जीवात्मा का ब्रह्म में लय माना जाए तो आत्मा का स्वरूप नष्ट हो जाएगा, **[न चाखण्डस्य परमात्मनो जीवात्मा तथाभूतो भागोंऽशः खण्डो]** और परमात्मा तो अखंड है जीवात्मा उसका कोई खण्ड तो है नहीं? **[यथा खण्डवत्यां पृथिव्यां खण्डाः पाषाणादयः संयुज्यन्ते विलीयन्ते च]** ऐसे अनेक खण्डों का समुदाय पृथ्वी है इसमें से टुकड़े टूटते भी रहते

अन्यच्च -

नाणिमादियोगोऽप्यवश्यम्भावित्वात्तदुच्छित्तेरितरयोगवत् ।।८२।।

(अणिमादियोगः-अपि न) अणिमादिप्राप्तिरपि न मुक्तिः ''अणिमा भवत्यणुः, लघिमा लघुर्भवति, महिमा महान् भवति, प्राप्तिः, ''प्राकाम्यमिच्छानभिघातः, वशित्वं भूतभौतिकेषु वशी भवति, ईशितृत्वम्, काम्यं यत्र कामावसायित्वम्'' (योग०३.४५ व्यासः) कुतः (तदुच्छित्तेः-अवश्यम्भावित्वात्-इतरयोगवत्) तत्क्षयस्यावश्यम्भावित्वादन्ययोगस्य यथा वियोगः क्षयो भवति तथैवाणिमादियोगस्यापि वियोगेन क्षयेण भाव्यमेव ।।८२।।

तथैव -

नेन्द्रादिपदयोगोऽपि तद्वत् ।।८३।।

हैं और वापिस मिल भी जाते हैं (मिट्टी से ईंट बनाई ईंट से मकान जब मकान टूट-फूट गया तो मिट्टी में मिल गया)। **[जीवात्मा तु परमात्मन एकदेशवर्तित्वादंशस्तस्मिन् तस्य तथायोगस्तु बद्धस्यापि वर्तते हि]** जीवात्मा परमात्मा के एक देश में रहता है, एक भाग में रहने से गौण अंश में एक (देशवासी) कह दे, बद्ध आत्मा और मुक्त आत्मा दोनों ही जीवात्मा के एक देश में रहते हैं वे घुल-मिलकर एक नहीं हो जाते। ब्रह्म अलग है जीव अलग है।।८१।।

नाणिमादियोगोऽप्यवश्यम्भावित्वात्तदुच्छित्तेरितरयोगवत् ।।८२।।

सूत्रार्थ=अणिमा आदि सिद्धियों का प्राप्त होना भी मुक्ति नहीं है। इनका विनाश भी अवश्य ही होने से। संयोग और वियोग के समान।

[(अणिमादियोगः-अपि न) अणिमादिप्राप्तिरपि न मुक्तिः अणिमा आदि सिद्धियों का प्राप्त होना भी मुक्ति नहीं है **''अणिमा भवत्यणुः, लघिमा लघुर्भवति, महिमा महान् भवति, प्राप्तिः]** अणिमा में योगी छोटा हो जाता है, लघिमा में हल्का हो जाता है, महिमा में लंबा चौड़ा हो जाता है, प्राप्ति=किसी वस्तु को प्राप्त कर लेना, **[''प्राकाम्यमिच्छानभिघातः]** सारी इच्छाओं का पूरा हो जाना, **[वशित्वं भूतभौतिकेषु वशी भवति]** भूत और भौतिक पदार्थों को वश में कर लेना, **[ईशितृत्वम्]** सब भौतिक पदार्थों का मालिक हो जाना, **[काम्यं यत्र कामावसायित्वम्'']** स्वेच्छा से आवागमन कर लेना। इन सिद्धियों का प्राप्त हो जाना भी मुक्ति नहीं है **[(योग० ३.४५ व्यासः) कुतः (तदुच्छित्तेः-अवश्यम्भावित्वात्-इतरयोगवत्) तत्क्षयस्यावश्यम्भावित्वा-दन्ययोगस्य यथा वियोगः क्षयो भवति तथैवाणिमादियोगस्यापि वियोगेन क्षयेण भाव्यमेव]** क्योंकि इनका क्षय भी अवश्यंभावी है जैसे अन्य वस्तुओं का योग हुआ उनका क्षय वियोग

(इन्द्रादिपदयोगः-अपि न तद्वत्) इन्द्रबृहस्पत्यादिपदप्राप्तिरपि मुक्तिर्न युक्ता योगस्य वियोगधर्मत्वात् प्राप्तेः क्षयधर्मत्वात् ।।८३।।

इन्द्रस्तु यस्येन्द्रियाणि लिंगानि स खल्वहमात्मा ''इन्द्रियमिन्द्रलिंगं...'' (अष्टा० ५.२.९३) यतस्तस्मात् -

न भूतप्रकृतित्वमिन्द्रियाणामाहंकारिकत्वश्रुतेः ।।८४।।

(इन्द्रियाणां-भूतप्रकृतित्वं न) इन्द्रियाणि भूतप्रकृतीनि न, भूतेभ्यः पृथिव्यादि- स्थूलभूतेभ्यो नोत्पन्नानि। तेषाम् (आहंकारिकत्वश्रुतेः) इन्द्रियाणामाहङ्कारिकत्वमहङ्कारादुत्पत्तिः श्रूयते न स्थूलभूतेभ्यः ''एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च। खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवी विश्वस्य धारिणी'' (मुण्डको० २.१.३) अत्रेन्द्रियेभ्यः पश्चात् स्थूलभूतानामुत्पत्तिस्तथेन्द्रियाणामुत्पत्तिस्तु तेभ्यः पूर्वमेव। तस्मादिन्द्रियाणि

हो जाता है वैसे ही अणिमा आदि सिद्धियों की प्राप्ति हुई तो उसका भी वियोग निश्चित रूप से होगा ही ।।८२।।

नेन्द्रादिपदयोगोऽपि तद्वत् ।।८३।।

सूत्रार्थ= इन्द्र, ब्रहस्पति आदि पद की प्राप्ति हो जाना भी मुक्ति नहीं है। संयोग और वियोग के समान।

[**(इन्द्रादिपदयोगः-अपि न तद्वत्) इन्द्रबृहस्पत्यादिपदप्राप्तिरपि मुक्तिर्न युक्ता योगस्य वियोगधर्मत्वात् प्राप्तेः क्षयधर्मत्वात्**] इंद्र-ब्रहस्पति आदि पद की प्राप्ति हो जाए ये भी मुक्ति नहीं है, जो भी उपाधि प्राप्त होगी एक न एक दिन छूट जाएगी ।।८३।।

इंद्र तो वह है जिसकी इंद्रियाँ पहचान के लक्षण हैं वह है जीवात्मा जिसको ''मैं'' नाम से बोला जाता है । (ये भूमिका सटीक नहीं है)

न भूतप्रकृतित्वमिन्द्रियाणामाहङ्कारिकत्वश्रुतेः ।।८४।।

सूत्रार्थ= इंद्रियों की उत्पत्ति पाँच महाभूतों से नहीं हुई है, इनकी उत्पत्ति अहंकार से सुनायी देने से।

[**(इन्द्रियाणां-भूतप्रकृतित्वं न) इन्द्रियाणि भूतप्रकृतीनि न** इंद्रियों का उपादान कारण पंचमहाभूत नहीं है, **भूतेभ्यः पृथिव्यादिस्थूलभूतेभ्यो नोत्पन्नानि**] ये इंद्रियाँ पृथ्वी आदि पाँच स्थूलभूतों से उत्पन्न नहीं हुई। [**तेषाम् (आहंकारिकत्वश्रुतेः) इन्द्रियाणामाहंकारिकत्वमहंकारादुत्पत्तिः श्रूयते न स्थूलभूतेभ्यः**] उन इंद्रियों का अहंकारीकत्व सुनाई देता है अर्थात् अहंकार से उनकी उत्पत्ति सुनाई देती है स्थूल भूतों से नहीं [**''एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च । खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवी विश्वस्य धारिणी''**] (ये प्रमाण इस प्रसंग में यहाँ ठीक नहीं बैठता) [**(मुण्डको० २.१.३) अत्रेन्द्रियेभ्यः पश्चात् स्थूलभूतानामुत्पत्तिस्तथेन्द्रियाणामुत्पत्तिस्तु तेभ्यः पूर्वमेव**] (ये हेतु भी ठीक नहीं बैठता)।[**तस्मादिन्द्रियाणि**

स्थूलभूतेभ्यो नोत्पन्नानि। तथा कृत्वैव सांख्यदर्शनेऽत्र ''सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः प्रकृतेर्महान् महतोऽहंकारोऽहंकारात् पञ्चतन्मात्राण्युभयमिन्द्रियं तन्मात्रेभ्यः स्थूलभूतानि...'' (सांख्य० १.६१) अत्राहंकारात् पञ्चतन्मात्राणि तथोभयमिन्द्रियमिति गणद्वयस्योत्पत्तिर्दर्शिता सांख्यमते पञ्चतन्मात्रेभ्यः पश्चादिन्द्रियाणां निर्देशात्तानीन्द्रियाणि पञ्चतन्मात्रेभ्यः पश्चादुत्पन्नानि मन्तुं शक्यन्ते, श्रुतौ तन्मात्राणां निर्देशो नास्ति पञ्चभूतानामुत्पत्तिर्दर्शिता ततश्च पूर्वमिन्द्रियाणाम्, इत्थं स्थूलभूतेभ्य इन्द्रियाणामुत्पत्तिकल्पना तूभयत्रापि न युज्यते ।।८४।।

अथ च तत्रैव मुक्तिविषये -

स्थूलभूतेभ्यो नोत्पन्नानि] इसलिए इंद्रियाँ स्थूलभूत से उत्पन्न नहीं हुई। **[तथा कृत्वैव सांख्यदर्शनेऽत्र ''सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः प्रकृतेर्महान् महतोऽहंकारोऽहंकारात् पञ्चतन्मात्राण्युभयमिन्द्रियं तन्मात्रेभ्यः स्थूलभूतानि...'']** इसी कारण से साख्यदर्शन में पहले भी कही जा चुकी है - **[(सांख्य० १.६१) अत्राहंकारात् पञ्चतन्मात्राणि तथोभयमिन्द्रियमिति गणद्वयस्योत्पत्तिर्दर्शिता सांख्यमते]** यहाँ इस सूत्र में अहंकार से पाँच तन्मात्राएँ और दोनों प्रकार की इंद्रियों का समुदाय उत्पन्न हुआ ये सांख्यमत में प्रदर्शित किया है **[पञ्चतन्मात्रेभ्यः पश्चादिन्द्रियाणां निर्देशात्तानीन्द्रियाणि पञ्चतन्मात्रेभ्यः पश्चादुत्पन्नानि मन्तुं शक्यन्ते]** पाँच तन्मात्राओं के बाद इंद्रियों का निर्देश होने से, इंद्रियों के बाद पाँच तन्मात्राओं की उत्पत्ति मानने में शंका है (इन सबकी १६ पदार्थों की उत्पत्ति एक साथ हो सकती है), **[श्रुतौ तन्मात्राणां निर्देशो नास्ति पञ्चभूतानामुत्पत्तिर्दर्शिता ततश्च पूर्वमिन्द्रियाणाम्]** श्रुति में तन्मात्राओं का निर्देश नहीं है फिर पंचभूतों की उत्पत्ति दिखाई गई है और भूतों से पहले इंद्रियों की उत्पत्ति दिखाई गई है, **[इत्थं स्थूलभूतेभ्य इन्द्रियाणामुत्पत्तिकल्पना तूभयत्रापि न युज्यते]** इस प्रकार से स्थूलभूतों से इंद्रियों की कल्पना ये दोनों ही स्थलों पर उचित नहीं है।।८४।।

अथ च तत्रैव मुक्तिविषये - अब मुक्ति विषय में आगे चर्चा करते हैं-

न षट्पदार्थनियमस्तद्बोधान्मुक्तिः ।।८५।।

सूत्रार्थ=छः पदार्थों के ज्ञान से ही मोक्ष होता हो ऐसा अनिवार्य नियम नहीं है। अपितु प्रकृति पुरुष का ज्ञान होना अनिवार्य है।

[(षट्पदार्थनियमः-न) मुक्तिविषये षट्पदार्थानां नियमो नास्ति। यत् (तद्बोधात्-मुक्तिः) तेषां षट्पदार्थानां बोधादेव मुक्तिर्भवति] मुक्ति के विषय में छः पदार्थों का नियम नहीं है। कि उन छः पदार्थों के जानने से ही मुक्ति हो ऐसा नहीं है। **[भवतु षट्पदार्थानामपि बोधस्यापेक्षा मुक्तौ]** होवे छः पदार्थों के ज्ञान की अपेक्षा मुक्ति में **[परन्तु प्रकृतिपुरुषयोर्विवेकस्यानिवार्यत्वमस्ति]** परंतु प्रकृति पुरुष के विवेक की अनिवार्यता है तभी मुक्ति होगी। **[न हि षट्पदार्थबोधस्य नियमो मुक्तौ]** मुक्ति के लिए छः

न षट्पदार्थनियमस्तद्बोधान्मुक्तिः ।।८५।।

(षट्पदार्थनियमः-न) मुक्तिविषये षट्पदार्थानां नियमो नास्ति। यत् (तद्बोधात्-मुक्तिः) तेषां षट्पदार्थानां बोधादेव मुक्तिर्भवति। भवतु षट्पदार्थानामपि बोधस्यापेक्षा मुक्तौ परन्तु प्रकृतिपुरुषयोर्विवेकस्यानिवार्यत्वमस्ति। न हि षट्पदार्थबोधस्य नियमो मुक्तौ। अत्र नियमशब्दो न सर्वथा तत्पक्षनिराकरणाय किन्तु प्रतिबन्धाभाव- दर्शनार्थः, भवतु सोऽपि पक्षः। यथाऽन्यत्र ''न स्थूलमिति नियम आतिवाहिकस्यापि विद्यमानत्वात्'' (सांख्य० ४.१०३) भवतु स्थूलशरीरमपि परन्तु सूक्ष्मशरीरमपि त्वनिवार्यमस्ति। तथा च ''न बाह्यबुद्धिनियमो वृक्षगुल्मलतौषधिवनस्पतिवीरुधादीनामपि भोक्तृभोगायतनत्वं पूर्ववत्'' (सांख्य० ५.१२१) भवतु बाह्यबुद्ध्याऽपि भोगः किन्तु तत्रान्तर्बुद्धेः खल्वप्यनिवार्यत्वमस्ति ।।८५।।

पदार्थों को जानना अनिवार्य नहीं है कि इनके जानने से ही मोक्ष होगा। [**अत्र नियमशब्दो न सर्वथा तत्पक्षनिराकरणाय किन्तु प्रतिबन्धाभावदर्शनार्थः, भवतु सोऽपि पक्षः**] यहाँ इस सूत्र में नियम शब्द से सर्वथा उस पक्ष का खंडन करने के लिए नहीं है, किन्तु प्रतिबंध का भाव दिखाना चाहते हैं, छः पदार्थों को भी जान ले कोई बात नहीं। [**यथाऽन्यत्र ''न स्थूलमिति नियम आतिवाहिकस्यापि विद्यमानत्वात्''(सांख्य० ४.१०३)**] जैसा कि एक अन्य सूत्र में भी कहा-केवल स्थूल शरीर ही हो ऐसा नियम नहीं है, सूक्ष्म शरीर भी विद्यमान है [**भवतु स्थूलशरीरमपि परन्तु सूक्ष्मशरीरमपि त्वनिवार्यमस्ति**] जीवात्मा के कर्म करने के लिए भले ही स्थूल शरीर हो परंतु सूक्ष्म शरीर भी अति अनिवार्य है। [**तथा च ''न बाह्यबुद्धिनियमो वृक्षगुल्मलतौषधिवनस्पतिवीरुधादीनामपि भोक्तृभोगायतनत्वं पूर्ववत्''(सांख्य० ५.१२१)**] और ऐसे ही प्रमाण दिया- सुख-दु:ख भोगने के लिए बाह्य अनुभूतियाँ हो ऐसा कोई नियम नहीं है, क्योंकि वृक्ष लता गुल्म औषधि वनस्पति वीरुध आदि भी जीवात्माओं का भोगायतन (शरीर) है, जैसे पहले छः प्रकार के शरीर बताए गए [**भवतु बाह्यबुद्ध्याऽपि भोगः किन्तु तत्रान्तर्बुद्धेः खल्वप्यनिवार्यत्वमस्ति**] भले ही बाह्य बुद्धि से भोग होता हो किन्तु आंतरिक अनुभूति होना अनिवार्य है, जैसे वृक्ष आदि में।।८५।।

तथा -

षोडशादिष्वप्येवम् ।।८६।।

सूत्रार्थ= सोलह पदार्थों के ज्ञान से ही मोक्ष होता हो ऐसा भी नियम नहीं है।

[**(षोडशादिषु-अपि-एवम्) षोडशादिषु पदार्थेषु खल्वपीत्थं मन्तव्यं यन्न षोडशादिपदार्थबोधादेव मुक्तिः**] सोलह आदि पदार्थों के जानने से ही मुक्ति हो ऐसा भी नहीं है, [**भवतु तद्बोधादपि मुक्तिः परन्तु न नियमः प्रतिबन्धः**] भले ही सोलह पदार्थों के जानने से मोक्ष हो जाता हो उसका विरोध नहीं है, परंतु ऐसा नहीं है कि सोलह ही जानोगे तभी मुक्ति होगी, [**प्रकृतिपुरुषयोर्विवेकस्तु खल्वनिवार्यो मुक्तौ**] मुक्ति के लिए प्रकृति पुरुष का विवेक अनिवार्य है, इसके बिना तो नहीं होगा ।।८६।।

तथा –

षोडशादिष्वप्येवम् ।।८६।।

(षोडशादिषु-अपि-एवम्) षोडशादिषु पदार्थेषु खल्वपीत्थं मन्तव्यं यन्न षोडशादिपदार्थबोधादेव मुक्तिः, भवतु तद्बोधादपि मुक्तिः परन्तु न नियमः प्रतिबन्धः, प्रकृतिपुरुषयोर्विवेकस्तु खल्वनिवार्यो मुक्तौ ।।८६।।

मुक्तौ प्रकृतिपुरुषयोर्विवेकोऽनिवार्यत्वेनापेक्ष्यते तौ हि नित्यौ स्तः, पुरुषश्चेतनः प्रकृतिर्जडा सा जगदुपादानकारणं तस्मात्तयोर्विवेकापेक्षा, अतो नान्यस्य कार्यभूतस्यैव बोधे नियमो मुक्तये । एवमणूनां तन्मात्राणां बोधस्यापि नियमो मुक्तौ न यतः –

नाणुनित्यता तत्कार्यत्वश्रुतेः ।।८७ ।।

मुक्ति में प्रकृति पुरुष का विवेक अनिवार्य है और वे प्रकृति पुरुष दोनों ही नित्य हैं, पुरुष चेतन है प्रकृति जड़ है और वह जगत का उपादान कारण है इसलिए इन दोनों के विवेक की आवश्यकता है, इसलिए अन्य कार्य भूत पदार्थ के जानने की आवश्यकता मुक्ति के लिए नहीं है। इस प्रकार से अणुओं का तन्मात्राओं का ज्ञान करने कि आवश्यकता नहीं है मुक्ति के लिए क्योंकि –

नाणुनित्यता तत्कार्यत्वश्रुतेः ।।८७ ।।

सूत्रार्थ= अणु नित्य नहीं है, उनकी उत्पत्ति सुनाई देने से।

[(अणुनित्यता न) अणुशब्दोऽत्र पृथिवीतन्मात्रजलतन्मात्रादिपरः] सूत्र में जो अणु शब्द आया है ये तन्मात्राओं के संदर्भ में है, पृथ्वी तन्मात्रा, जल तन्मात्रा आदि **[''पार्थिवस्याणोर्गन्धतन्मात्रं सूक्ष्मोविषयः]** पार्थिव अणु का सूक्ष्म विषय है गंध तन्मात्रा **[आप्यस्य रसतन्मात्रं]** जल का सूक्ष्म विषय रस तन्मात्रा **[तैजसस्य रूपतन्मात्रं]** अग्नि का उपदान कारण रूप तन्मात्रा **[वायव्यस्य स्पर्शतन्मात्रमाकाशस्य शब्दतन्मात्रम् (योग० १.४५ व्यासः)]** वायु के अणु का सूक्ष्म विषय स्पर्श तन्मात्रा और आकाश का शब्द तन्मात्रा है'' **[अणूनां तन्मात्राणां नित्यता नास्ति]** अणु रूप तन्मात्राओं की नित्यता नहीं है **[(तत्कार्यत्वश्रुतेः) तेषामणूनां तन्मात्राणां कार्यत्वं श्रुयते]** उन अणु रुपी तन्मात्राओं का कार्य सुनाई देता है **[''इन्द्रो मह्ना रोदसी पप्रथच्छव इन्द्रः सूर्यमरोचयत्। इन्द्रे ह विश्वा भुवनानियेमिरे इन्द्रे सुवानास इन्दवः।'' (अथर्व० २०.११६.४)] अत्र 'सुवानास इन्दवः' उत्पद्यमाना अणवः** इस मंत्र में दो शब्द है 'सुवानास इन्दवः', उत्पन्न होते हुए अणु। तथा **[''अण्वो मात्रा विनाशिन्यो दशार्धानां च याः स्मृताः। ताभिः सार्द्धमिदं सर्वं सम्भवत्यनुपूर्वशः'' (मनु० १.२७)]** तन्मात्राएँ सूक्ष्म है अणु है उनका विनाश होता है दश की आधी पाँच मानी जाती हैं । उन्हीं तन्मात्राओं के साथ-साथ ये सारा जगत उत्पन्न होता है क्रम से ।।८७।।

(अणुनित्यता न) अणुशब्दोऽत्र पृथिवीतन्मात्रजलतन्मात्रादिपरः "पार्थिवस्याणोर्गन्धतन्मात्रं सूक्ष्मोविषयः आप्यस्य रसतन्मात्रं तैजसस्य रूपतन्मात्रं वायव्यस्य स्पर्शतन्मात्रमाकाशस्य शब्दतन्मात्रम्" (योग० १.४५ व्यासः) अणूनां तन्मात्राणां नित्यता नास्ति (तत्कार्यत्वश्रुतेः) तेषामणूनां तन्मात्राणां कार्यत्वं श्रूयते "इन्द्रो मह्ना रोदसी पप्रथच्छव इन्द्रः सूर्यमरोचयत्। इन्द्रे ह विश्वा भुवनानियेमिरे इन्द्रे सुवानास इन्दवः।" (अथर्व० २०.११६.४) अत्र 'सुवानास इन्दवः' उत्पद्यमाना अणवः। तथा "अण्वो मात्रा विनाशिन्यो दशार्धानां च याः स्मृताः। ताभिः सार्द्धमिदं सर्वं सम्भवत्यनुपूर्वशः" (मनु० १.२७) ।।८७।।

अत एव -

न तन्निर्भागत्वं कार्यत्वात् ।।८८।।

(तन्निर्भागत्वं कार्यत्वात्-न) तेषामणूनां तन्मात्राणां कार्यत्वात् निर्भागत्वं भागराहित्यं मूलत्वं

न तन्निर्भागत्वं कार्यत्वात् ।।८८।।

सूत्रार्थ= तन्मात्राएँ अवयव रहित नहीं है, कार्य द्रव्य होने से।

[(तन्निर्भागत्वं कार्यत्वात्-न) तेषामणूनां तन्मात्राणां कार्यत्वात् निर्भागत्वं भागराहित्यं मूलत्वं जगतो मूलकारणत्वं नास्ति] उन अणुओं का अर्थात तन्मात्राओं का कार्यरूप होने से अवयव रहित हो ऐसा नहीं है, वह जगत का मूल कारण नहीं है, **[तस्मात् प्रकृतिवत् तेषां बोधस्य मुक्तौ न मुख्यत्वं विज्ञेयम्]** इसलिए प्रकृति के समान मोक्ष प्राप्ति में उनके ज्ञान की मुख्यता ऐसा नहीं है जैसे प्रकृति को जानना आवश्यक है ।।८८।।

आप कह रहे है प्रकृति पुरुष को जानना आवश्यक है मोक्ष प्राप्ति हेतु, परंतु प्रश्न ये है प्रकृति और पुरुष दोनों ही रूप वाले नहीं है फिर उनका प्रत्यक्ष कैसे होगा? इसका उत्तर देते हैं-

न रूपनिबन्धनात् प्रत्यक्षत्वनियमः ।।८९।।

सूत्रार्थ= रूप गुण के कारण से ही प्रत्यक्ष होने का नियम नहीं है, रूप रहित ईश्वर आदि पदार्थों का भी प्रत्यक्ष होने से।

[(रूपनिबन्धनात् प्रत्यक्षत्वनियमः-न) रूपनिमित्तात् प्रत्यक्षत्वस्य नियमो नास्ति] रूप के निमित्त ही प्रत्यक्ष होता हो ऐसा कोई नियम नहीं है **[यद् रूपवदेव वस्तु प्रत्यक्षं भवति रूपरहितं नेति प्रतिबन्धो नास्ति सांख्यप्रत्यक्षे]** सांख्य की मान्यता में प्रत्यक्ष रूप वाली वस्तु भी प्रत्यक्ष होती है रूप रहित भी होती है केवल रूप वाली ही हो ऐसा कोई नियम नहीं है, **[भवतु रूपवदपि प्रत्यक्षं किन्तु रूपरहितमपि प्रत्यक्षं भवति तस्य सांख्यप्रत्यक्षलक्षणान्तर्गतत्वात्]** रूप वाली वस्तु का भी प्रत्यक्ष होवे किन्तु रूप रहित वस्तु का भी प्रत्यक्ष होता है क्योंकि वह सांख्य के प्रत्यक्ष लक्षण के अंतर्गत आती है। **[सांख्यप्रत्यक्षे नहीन्द्रियार्थसम्बन्धजनितं ज्ञानमेव प्रत्यक्षं]** सांख्य के प्रत्यक्ष में केवल उतना ही ज्ञान प्रत्यक्ष नहीं माना जाता जो इंद्रियार्थ संबंध से प्रत्यक्ष हुआ हो **[किन्तु "यत्सम्बन्धसिद्धं तदाकारोल्लेखि विज्ञानं तत् प्रत्यक्षम्"(सांख्य०**

जगतो मूलकारणत्वं नास्ति, तस्मात् प्रकृतिवत् तेषां बोधस्य मुक्तौ न मुख्यत्वं विज्ञेयम् ।।८८।।

भवतु सांख्यमते प्रकृतिपुरुषसाक्षात्कारो मोक्षहेतुः परन्तु प्रकृतिपुरुषौ न रूपवन्तौ पुनस्तयोः कथं प्रत्यक्षत्वमित्यत्रोच्यते -

न रूपनिबन्धनात् प्रत्यक्षत्वनियमः ।।८९।।

(रूपनिबन्धनात् प्रत्यक्षत्वनियमः-न) रूपनिमित्तात् प्रत्यक्षत्वस्य नियमो नास्ति, यद् रूपवदेव वस्तु प्रत्यक्षं भवति रूपरहितं नेति प्रतिबन्धो नास्ति सांख्यप्रत्यक्षे, भवतु रूपवदपि प्रत्यक्षं किन्तु रूपरहितमपि प्रत्यक्षं भवति तस्य सांख्यप्रत्यक्षलक्षणान्तर्गतत्वात् । सांख्यप्रत्यक्षे नहीन्द्रियार्थसम्बन्धजनितं

१.८९)] किन्तु सांख्य में तो ये कहा गया है कि-किसी भी वस्तु के संबंध से हो वह उस वस्तु के स्वरूप को बताए वही प्रत्यक्ष है [**अत्र केवलमिन्द्रियसम्बन्धसिद्धमेव न किन्तु यत्सम्बन्धसिद्धमुक्तं प्रत्यक्षं**] यहाँ केवल इंद्रिय के संबंध से ज्ञान की सिद्धि नहीं कहा बल्कि ये कहा जिस किसी भी साधन से सिद्ध हो वह प्रत्यक्ष है [**तच्चेन्द्रियैर्मनसा स्वात्मना च सम्बन्धसिद्धमपि भवति**] वह प्रत्यक्ष इंद्रियों से भी मन से भी आत्मा का संबंध होने से सिद्ध होता है [**तथाकृत्वैव ''योगिनामाबाह्यप्रत्यक्षत्वान्न दोषः''(सांख्य० १.९०)**] इसीलिए योगियों का आंतरिक प्रत्यक्ष स्वीकार होने से, प्रत्यक्ष लक्षण में कोई दोष नहीं है [**''लीनवस्तुलब्धातिशयसम्बन्धाद्वाऽदोषः''(सांख्य० १.९१) इति सूत्राभ्यां तत्प्रत्यक्षस्य विस्तृतस्वरूपं दर्शितं**] इसी कारण से इन दो सूत्रों के द्वारा विस्तृत स्वरूप दिखलाया गया था [**तेनेश्वरप्रत्यक्षत्वं सूक्ष्मवस्तुप्रत्यक्षत्वमपि भवति**] इन चर्चाओं से ये सिद्ध होता है कि ईश्वर का भी प्रत्यक्ष होता है भले ही रूप न हो, [**तत्प्रत्यक्षात् खलु मोक्षलाभो युक्तः**] उसका प्रत्यक्ष होने से मोक्ष लाभ की प्राप्ति उचित है। [**एवमेवाणूनां तन्मात्राणां कार्यत्वप्रत्यक्षमपि भवति**] इस प्रकार से अणुओं का तन्मात्राओं का कार्यत्व प्रत्यक्ष हो जाता है ।।८९।।

कार्य द्रव्यों के स्थूल और सूक्ष्म होने से उनका परिमाण भी दो प्रकार का है, उसका ज्ञान कराने के लिए दो प्रकार का परिमाण सांख्यदर्शन में पर्याप्त है । इस बात को अब कहते हैं-

न परिमाणचातुर्विध्यं द्वाभ्यां तद्योगात् ।।९०।।

सूत्रार्थ= सांख्यदर्शन में चार प्रकार के परिमाण मानने की आवश्यकता नहीं है, दो परिमाणों से ही कार्य सिद्ध होने से।

[**(परिमाणचातुर्विध्यं न) सांख्यमते कार्यमात्रस्य परिमाणचातुर्विध्यम् 'अणुमहद्ध्रस्वदीर्घत्वम्' न स्वीक्रियते नापेक्ष्यते**] वैशेषिक दर्शन में चार प्रकार का परिमाण बताया है अणु, महद्, ह्रस्व और दीर्घ । सांख्यमत में कार्य द्रव्य के चार प्रकार के परिमाण मानने की आवश्यकता नहीं है, ज्यादा की अपेक्षा नहीं है [**(द्वाभ्यां तद्योगात्) यतो ह्यणुमहद्भ्यां परिमाणाभ्यां तद्योगस्तयोः सूक्ष्मस्थूलयोः सामान्यविशेषयोः** *

ज्ञानमेव प्रत्यक्षं किन्तु ''यत्सम्बन्धसिद्धं तदाकारोल्लेखि विज्ञानं तत् प्रत्यक्षम्'' (सांख्य० १.८९) अत्र केवलमिन्द्रियसम्बन्धसिद्धमेव न किन्तु यत्सम्बन्धसिद्धमुक्तं प्रत्यक्षं तच्चेन्द्रियैर्मनसा स्वात्मना च सम्बन्धसिद्धमपि भवति तथाकृत्वैव ''योगिनामाबाह्यप्रत्यक्षत्वान्न दोषः'' (सांख्य० १.९०) ''लीनवस्तुलब्धातिशयसम्बन्धाद्वाऽदोषः'' (सांख्य० १.९१) इति सूत्राभ्यां तत्प्रत्यक्षस्य विस्तृतस्वरूपं दर्शितं तेनेश्वरप्रत्यक्षत्वं सूक्ष्मवस्तुप्रत्यक्षत्वमपि भवति, तत्प्रत्यक्षात् खलु मोक्षलाभो युक्तः ।एवमेवाणूनां तन्मात्राणां कार्यत्वप्रत्यक्षमपि भवति ।।८९।।

कार्याणां स्थूलसूक्ष्मभावेन द्विविधत्वात् तेषां परिमाणस्यापि द्वैविध्यमेव तद्बोधाय सांख्ये पर्याप्तमित्युच्यते -

---

कार्ययोर्योगो युक्तत्वं सम्भवःपर्याप्तत्वमस्ति अणु] और महद् ये दो परिमाण हैं इन दो परिमाणों से स्थूल और सूक्ष्म, सामान्य और विशेष सब पदार्थों का कार्य योग हो जाता है।।९०।।

सामान्य और विशेष इन दोनों कार्यों में से जो विशेष पदार्थ हैं इनकी तो स्वतः उपलब्धि हो जाती है परंतु सामान्य की उपलब्धि कैसे होगी? इस पर कहते हैं-

अनित्यत्वेऽपि स्थिरता योगात् प्रत्यभिज्ञानं सामान्यस्य ।।९१।।

सूत्रार्थ= तन्मात्राओं के अनित्य होने पर भी पृथ्वी आदि महाभूतों में तन्मात्राएं स्थिरता पूर्वक विद्यमान रहने से पाँच महाभूतों को देखकर इनमें विद्यमान तन्मात्राओं का ज्ञान हो जाता है।

[(सामान्यस्य-अनित्यत्वे-अपि) सामान्यं तन्मात्रं यद्यप्यनित्यं कार्यरूपमस्ति, तथापि (स्थिरतायोगात्) विशेषेषु पृथिव्यादिषु कार्येषु तस्य स्थिरतायोगः सम्बन्धोऽस्ति तेषु स्थिरत्वेन विद्यते] सामान्य तन्मात्रा यद्यपि है तो वो अनित्य है कार्य रूप है, फिर भी विशेष पृथ्वी आदि कार्यों में उसका स्थिरता योग का विशेष संबंध है, उनका भूतों में तन्मात्राओं का स्थिर संबंध है, **[तस्मात् (प्रत्यभिज्ञानम्) विशेषं कार्यं दृष्ट्वा तथाभूतस्य सामान्यस्य कारणसामान्यस्य प्रत्यभिज्ञानं स्मृत्या ज्ञानं तु भवत्येव]** स्मृति से ज्ञान हो जाएगा, हर कार्य वस्तु में उसका कारण द्रव्य विद्यमान होता ही है, स्थूल भूतों में भी तन्मात्रा है इस प्रकार से स्मृति से भी ज्ञान हो जाएगा इसको ''प्रत्यभिज्ञानम''**(सांख्य० १.९०)** कहते हैं ।।९१।।

न तदपलापस्तस्मात् ।।९२।।

सूत्रार्थ= पृथ्वी आदि पाँच महाभूतों में विद्यमान कारण द्रव्यों तन्मात्राओं की सत्ता का खण्डन नहीं हो सकता है।

[(तस्मात् तदपलापः-न) तस्मात् तस्य सामान्यस्य तन्मात्रस्य पृथिव्यादिषु विशेषेषु कार्येषु वर्तमानस्यापलापोऽकथनमन्यथा कथनं न सम्भवति] इसलिए उस तन्मात्रा (सामान्य) का पृथ्वी आदि विशेष कार्यों में विद्यमान है जो उसका खण्डन विरोध अथवा अन्यथा कथन संभव नहीं है।।९२।।

न परिमाणचातुर्विध्यं द्वाभ्यां तद्योगात् ।।९०।।

(परिमाणचातुर्विध्यं न) सांख्यमते कार्यमात्रस्य परिमाणचातुर्विध्यम् 'अणुमहद्ध्रस्वदीर्घत्वम्' न स्वीक्रियते नापेक्ष्यते (द्वाभ्यां तद्योगात्) यतो ह्यणुमहद्भ्यां परिमाणाभ्यां तद्योगस्तयोः सूक्ष्मस्थूलयोः सामान्यविशेषयोः* कार्ययोर्योगो युक्तत्वं सम्भवः-पर्याप्तत्वमस्ति ।।९०।।

सामान्यविशेषयोः कार्ययोर्विशेषस्य तु स्वत उपलब्धिर्भवति हि सामान्यस्य कथं स्यादित्युच्यते -

अनित्यत्वेऽपि स्थिरता योगात् प्रत्यभिज्ञानं सामान्यस्य ।।९१।।

(सामान्यस्य-अनित्यत्वे-अपि) सामान्यं तन्मात्रं यद्यप्यनित्यं कार्यरूपमस्ति, तथापि (स्थिरतायोगात्) विशेषेषु पृथिव्यादिषु कार्येषु तस्य स्थिरतायोगः सम्बन्धोऽस्ति तेषु स्थिरत्वेन विद्यते,

---

अथ च -

नान्यनिवृत्तिरूपत्वं भावप्रतीतेः ।।९३।।

सूत्रार्थ= पृथ्वी आदि भूतों के नष्ट हो जाने का नाम तन्मात्रा का स्वरूप नहीं है, क्योंकि उसका अस्तित्व प्रमाणों से सिद्ध होता है।

[(अन्यनिवृत्तिरूपत्वं न भावप्रतीतेः) अन्यत् तन्निवृत्तिरूपमन्यनिवृत्तिरूपं तस्य भावोऽन्यनिवृत्तिरूपत्वम्] उस अन्य के स्वरूप की निर्वृत्ति हो जाना अन्य वृति का भाव बता रहे हैं अन्यवृति। **[विशेषात् कार्यात् पृथिव्यादेरन्यत्]** विशेष कार्य से जो पृथ्वी आदि से जो भिन्न है वह अन्यत है, **[तस्य विशेषस्य कार्यस्य पृथिव्यादिकस्य निवृत्तिरूपमभावरूपं सामान्यं स्यादिति न यतो भावप्रतीतेः]** उसका विशेष कार्य का पृथ्वी आदि का निवृत्ति हो जाना अभावरूप हो जाना ऐसा तन्मात्रा का स्वरूप नहीं है क्योंकि उसका अस्तित्व सिद्ध होता है, **[तस्य भावप्रत्ययाद् भावात्मकतया भासनात्]** उसका भाव के रूप में ज्ञान होने से भावात्मक रूप से उसकी प्रतीति होने से, **[स्थूलं सूक्ष्मीभूतं सामान्यं सदपि भावात्मकत्वेनावतिष्ठते तस्याणुपरिमाणत्वात्]** जो स्थूल वस्तु है वह सूक्ष्म होकर के भी विशेष से वह सामान्य हो गयी इतना होने पर भी वह सत्तारूप में रहती है उसका परिमाण छोटा हो जाता है।।९३।।

विशेष कार्य द्रव्यों में परस्पर समानता है रूप सामान्य है एक जैसे हैं।

न तत्त्वान्तरं सादृश्यं प्रत्यक्षोपलब्धेः निजशक्त्यभिव्यक्तिर्वा वैशिष्ट्यात् तदुपलब्धेः ।।९४-९५।।

सूत्रार्थ= सादृश नाम की जो वस्तु है वह दो वस्तुओं से भिन्न कोई तीसरी वस्तु नहीं है प्रत्यक्ष दो ही पदार्थ दिख रहे हैं। अथवा किसी पदार्थ के अपने स्वरूप की अभिव्यक्ति का नाम ही सादृश है, वह विशेष रूप से उपलब्ध होने से।

[(सादृश्यं तत्त्वान्तरं न प्रत्यक्षोपलब्धेः) विशेषेषु कार्येषु पृथिव्यादिषु पार्थिवादिषु वा

तस्मात् (प्रत्यभिज्ञानम्) विशेषं कार्यं दृष्ट्वा तथाभूतस्य सामान्यस्य कारणसामान्यस्य प्रत्यभिज्ञानं स्मृत्या ज्ञानं तु भवत्येव ।।९१।।

न तदपलापस्तस्मात् ।।९२।।

(तस्मात् तदपलापः-न) तस्मात् तस्य सामान्यस्य तन्मात्रस्य पृथिव्यादिषु विशेषेषु कार्येषु वर्तमानस्यापलापोऽकथनमन्यथा कथनं न सम्भवति ।।९२।।

अथ च -

नान्यनिवृत्तिरूपत्वं भावप्रतीतेः ।।९३।।

(अन्यनिवृत्तिरूपत्वं न भावप्रतीतेः) अन्यत् तन्निवृत्तिरूपमन्यनिवृत्तिरूपं तस्य भावोऽन्यनिवृत्तिरूपत्वम्। विशेषात् कार्यात् पृथिव्यादेरन्यत्, तस्य विशेषस्य कार्यस्य पृथिव्यादिकस्य निवृत्तिरूपमभावरूपं सामान्यं स्यादिति न यतो भावप्रतीतेः, तस्य भावप्रत्ययाद् भावात्मकतया भासनात्,

---

यत्सामान्याभासं सादृश्यमस्ति] विशेष कार्यों में पृथ्वी आदि में या पार्थिव आदि पदार्थों में जो समानता है सादृशता है **[तत्सांख्यमते तत्त्वान्तरं नास्ति न तत्सामान्यनाम्ना तत्त्वान्तरं मन्यते]** वह सांख्यदर्शन की मान्यता में कोई अलग वस्तु नहीं है वह सामान्य नाम से कोई तीसरी वस्तु नहीं मानी जाती। **[कुतः प्रत्यक्षोपलब्धेः]** क्योंकि प्रत्यक्ष दिखने से, **[प्रत्यक्षं विशेषस्य कार्यस्य पृथिव्यादिकस्य पार्थिवादिकस्य वा रूपसामान्यस्योपलब्धिर्भवति न विशेषात् पृथक् सत्ता तत्समाना काचिदस्ति]** जो प्रत्यक्ष विशेष कार्य है पृथ्वी आदि और पार्थिव पदार्थ इन सब में जो रूप की समानता दिखती है, उस सादृश की पृथक सत्ता नहीं है, **[एकेन विशेषेण कार्यरूपेण सदृशोऽन्यो विशेषः कार्यरूपो रूपसामान्यगतः प्रत्यक्षमुपलभ्यते]** एक विशेष कार्य रूप पदार्थ के साथ उसके जैसा दूसरा विशेष कार्य रूप द्रव्य की रूप समानता दिखती है प्रत्यक्ष, **[न विशेषात् कार्यरूपाद् भिन्नः पदार्थः]** उस कार्य रूप विशेष पदार्थ दो से भिन्न तीसरी कोई वस्तु नहीं दिखती, **[यथा स स्थूलत्वकठोरत्वजडत्वरूपादिमान् तथैव द्वितीयोऽपि विशेषः पदार्थः]** जैसे वह एक पदार्थ स्थूल कठोर जड़ रूप आदि गुण वाला है वैसा ही दूसरा पदार्थ भी होता है।

[(वा) अथवा विशेषेषु कार्येषु पृथिव्यादिषु पार्थिवादिषु च यत्सामान्याभासं रूपसामान्यं सादृश्यमस्ति] अथवा इसको दूसरे प्रकार से समझें- विशेष कार्यों में पृथ्वी आदि और पार्थिव आदि में जो समानता प्रतीत होती है रूप की जो समानता है वह सादृश है **[(निजशक्त्यभिव्यक्तिः) तस्य तस्य विशेषस्य कार्यस्य पृथिव्यादेः पार्थिवादिकस्य च निजशक्तरभिव्यक्तिरेव सा हि तत्स्वरूपेषु सदृशभावेन वर्तते]** उस उस विशेष कार्य पदार्थ की पृथ्वी आदि की अथवा पार्थिव आदि की वह अपने स्वरूप की अभिव्यक्ति मात्र है वह उसकी अपने अपने स्वरूप में सादृश प्रदर्शित हो रही है **[(वैशिष्ट्यात् तदुपलब्धेः) विशिष्टं विशिष्टं कार्यं प्रति तस्या अभिव्यक्तेरुपलब्धिर्भवतीति हेतोर्विशेषस्य कार्यस्य निजशक्त्यभिव्यक्तिरेव सादृश्यं न तत्त्वान्तरम्]** विशेष विशेष कार्य के प्रति उस अभिव्यक्ति की उपलब्धि हो रही है इस कारण से विशेष कार्य की अपने स्वरूप की अभिव्यक्ति ही सादृश है कोई अलग

स्थूलं सूक्ष्मीभूतं सामान्यं सदपि भावात्मकत्वेनावतिष्ठते तस्याणुपरिमाणत्वात् ।।९३।।

यत्खलु विशेषेषु कार्येषु परस्परं सामान्याभासं रूपसामान्यं सादृश्यं तत् -

न तत्त्वान्तरं सादृश्यं प्रत्यक्षोपलब्धेः निजशक्त्यभिव्यक्तिर्वा वैशिष्ट्यात् तदुपलब्धेः ।।९४-९५।।

(सादृश्यं तत्त्वान्तरं न प्रत्यक्षोपलब्धेः) विशेषेषु कार्येषु पृथिव्यादिषु पार्थिवादिषु वा यत्सामान्याभासं सादृश्यमस्ति तत्सांख्यमते तत्त्वान्तरं नास्ति न तत्सामान्यनाम्ना तत्त्वान्तरं मन्यते। कुतः प्रत्यक्षोपलब्धेः, प्रत्यक्षं विशेषस्य कार्यस्य पृथिव्यादिकस्य पार्थिवादिकस्य वा रूपसामान्यस्योपलब्धिर्भवति न विशेषात् पृथक् सत्ता तत्समाना काचिदस्ति, एकेन विशेषेण कार्यरूपेण सदृशोऽन्यो विशेषः कार्यरूपो रूपसामान्यगतः प्रत्यक्षमुपलभ्यते, न विशेषात् कार्यरूपाद् भिन्नः पदार्थः, यथा स स्थूलत्वकठोरत्वजडत्वरूपादिमान् तथैव द्वितीयोऽपि विशेषः पदार्थः (वा) अथवा विशेषेषु

भिन्न पदार्थ की नहीं।।९४-९५।।

सामान्य का विचार पूरा हो गया, अब संबंध के विषय में विचार आरंभ होता है। पहले संज्ञासंज्ञि के संबंध के विषय में कहते हैं-

न संज्ञासंज्ञिसम्बन्धोऽपि ।।९६।।

सूत्रार्थ=

[**(संज्ञासंज्ञिसम्बन्धः-अपि न) तत्त्वान्तरमिति वर्तते**] संज्ञासंज्ञि संबंध भी उन दो वस्तुओं से भिन्न तीसरी वस्तु नहीं है। [**संज्ञासंज्ञिसम्बन्धोऽपि तत्त्वान्तरं नास्ति**] नाम और वस्तु के संबंध से भिन्न नहीं है। [**संज्ञा वाचको ध्वन्यात्मकत्वेन**] संज्ञा कहते हैं वाचक को जो ध्वनि के रूप में शब्द बोलते हैं, [**संज्ञीवाच्यो वस्त्वात्मकत्वेन भवति**] संज्ञि वो वाच्य है वस्तु के स्वरूप में है, [**ताभ्यां वाच्यवाचकाभ्यां भिन्न उपलब्धसत्ताको न संज्ञासंज्ञिसम्बन्धोऽस्ति**] वाचक और वाच्य इन दो के उपलब्ध होने से अलग तीसरा संबंध नामक पदार्थ सत्ता वाला पदार्थ उपलब्ध नहीं हो रहा [**किन्तु तयोः संज्ञासंज्ञिनोरेवान्तर्वर्तमानाऽर्थशक्तिरेवसम्बन्धोऽस्ति न हि ताभ्यां पृथक्स्वरूपवान्**] किन्तु उन दोनों संज्ञा और संज्ञि इनके अंदर वर्तमान रहने वाली जो अर्थ शक्ति है वही इस संबंध के रूप में है । वह इन दोनों पदार्थों से लगा स्वरूप वाली नहीं है ।।९६।।

न सम्बन्धनित्यतोभयानित्यत्वात् ।।९७।।

सूत्रार्थ= वाचक और वाच्य में जो सम्बंध है वह नित्य नहीं है। दोनों के अनित्य होने से।

[**(सम्बन्धनित्यता न-उभयानित्यत्वात्) एतादृशस्य वाच्यवाचकयोर्मध्ये वर्तमानस्यापि**

कार्येषु पृथिव्यादिषु पार्थिवादिषु च यत्सामान्याभासं रूपसामान्यं सादृश्यमस्ति (निजशक्त्यिभिव्यक्तिः) तस्य तस्य विशेषस्य कार्यस्य पृथिव्यादेः पार्थिवादिकस्य च निजशक्तरभिव्यक्तिरेव सा हि तत्स्वरूपेषु सदृशभावेन वर्तते (वैशिष्ट्यात् तदुपलब्धेः) विशिष्टं विशिष्टं कार्यं प्रति तस्या अभिव्यक्तेरुपलब्धिर्भवतीति हेतोर्विशेषस्य कार्यस्य निजशक्त्यभिव्यक्तिरेव सादृश्यं न तत्त्वान्तरम् ।।९४-९५।।

गतः सामान्यविचारोऽथ सम्बन्धविषये विचारः प्रवर्तते तत्र प्रथमं संज्ञासंज्ञिसम्बन्धविषये -

न संज्ञासंज्ञिसम्बन्धोऽपि ।।९६।।

(संज्ञासंज्ञिसम्बन्धः-अपि न) तत्त्वान्तरमिति वर्तते। संज्ञासंज्ञिसम्बन्धोऽपि तत्त्वान्तरं नास्ति। संज्ञा वाचको ध्वन्यात्मकत्वेन, संज्ञीवाच्यो वस्त्वात्मकत्वेन भवति, ताभ्यां वाच्यवाचकाभ्यां भिन्न उपलब्धसत्ताको न संज्ञासंज्ञिसम्बन्धोऽस्ति किन्तु तयोः संज्ञासंज्ञिनोरेवान्तर्वर्तमानाऽर्थशक्तिरेवसम्बन्धोऽस्ति न हि ताभ्यां पृथक्स्वरूपवान् ।।९६।।

पुनश्चैतादृशसम्बन्धस्यापि -

न सम्बन्धनित्यतोभयानित्यत्वात् ।।९७।।

सम्बन्धस्य नित्यता नास्ति तयोरुभययोर्वाच्यवाचकयोरनित्यत्वात्] इस प्रकार के वाच्य और वाचक के मध्य जो सम्बंध है उस सम्बंध की नित्यता नहीं है उन वाच्य वाचक के अनित्य होने से, **[यतो वाच्यवाचकौ नित्यौ न स्तः]** क्योंकि वस्तु और नाम दोनों ही नित्य नहीं है। **[विशेषस्य कार्यस्य वाच्यस्य न नित्यत्वमतस्तद्वाचकस्यापि न नित्यत्वं]** विशेष कार्य का जो वाच्य रूप है उसका नित्यत्व नहीं है और उसका वाचक भी अनित्य है वह भी नित्य नहीं है **[पुनस्तयोर्मध्ये वर्तमानस्य सम्बन्धस्यापि न नित्यत्वम्]** फिर उनमें मध्य रहने वाला सम्बंध भी नित्य नहीं रहेगा।।९७।।

नाजः * सम्बन्धो धर्मिग्राहकप्रमाणबाधात् ।।९८।।

सूत्रार्थ= प्रकृति और पुरुष में स्वाभाविक सम्बंध नहीं है, प्रकृति पुरुष के स्वाभाविक सम्बंध को सिद्ध करने वाला धर्मी प्रमाण के खंडित होने से।

[(आजः सम्बन्धः-न) अजयोः प्रकृतिपुरुषयोर्वर्तमानः सम्बन्धः खल्वाजो नैसर्गिकः स्वाभाविकः सम्बन्धो न सांख्यसिद्धान्ते स्वीक्रियते] जो कभी जन्म नहीं लेंगे वह हैं प्रकृति और पुरुष (जीव और ईश्वर)। इनका जो वर्तमान सम्बंध है वह आजः, नैसर्गिक, स्वाभाविक सम्बंध है। सांख्य मत में इनका स्वाभाविक सम्बंध स्वीकार नहीं किया जाता। (प्रकृति जीव और ईश्वर इन तीनों में यद्यपि संबंध तो है किन्तु ''प्रकृति भोग्य वस्तु है, जीवात्मा भोक्ता है, परमात्मा भोग की व्यवस्था करता है'' ये कारण पूर्वक है स्वाभाविक नहीं है)। **[यतः (धर्मिग्राहकप्रमाणबाधात्) सम्बन्धो धर्मः, सम्बन्धो धर्मोऽस्यास्तीति स धर्मी**

(सम्बन्धनित्यता न-उभयानित्यत्वात्) एतादृशस्य वाच्यवाचकयोर्मध्ये वर्तमानस्यापि सम्बन्धस्य नित्यता नास्ति तयोरुभययोर्वाच्यवाचकयोरनित्यत्वात्, यतो वाच्यवाचकौ नित्यौ न स्तः। विशेषस्य कार्यस्य वाच्यस्य न नित्यत्वमतस्तद्वाचकस्यापि न नित्यत्वं पुनस्तयोर्मध्ये वर्तमानस्य सम्बन्धस्यापि न नित्यत्वम् ।।९७।।

अथ नैसर्गिकसम्बन्धविषये -

नाजः * सम्बन्धो धर्मिग्राहकप्रमाणबाधात् ।।९८।।

(आजः सम्बन्धः-न) अजयोः प्रकृतिपुरुषयोर्वर्तमानः सम्बन्धः खल्वाजो नैसर्गिकः स्वाभाविकः सम्बन्धो न सांख्यसिद्धान्ते स्वीक्रियते। यतः (धर्मिग्राहकप्रमाणबाधात्) सम्बन्धो धर्मः, सम्बन्धो धर्मोऽस्यास्तीति स धर्मी सम्बन्धधर्मी तौ धार्मिणौ तयोरजयोर्धर्मिणोः प्रकृतिपुरुषयोर्धर्मिणोर्ग्राहकप्रमाणस्य

सम्बन्धधर्मी] क्योंकि धर्म है सम्बंध, सम्बंध धर्म है जिसका वह है सम्बंध धर्मी **[तौ धार्मिणौ तयोरजयोर्धर्मिणोः प्रकृतिपुरुषयोर्धर्मिणोर्ग्राहकप्रमाणस्य बाधनात्]** वे धर्मी (प्रकृति और पुरुष) उन धर्मियों के, उनको स्वाभाविक सिद्ध कराने वाला प्रमाण खंडित होने से **[तयोर्धर्मित्वेन सम्बन्धधर्मित्वेन ग्राहकं प्रमाणं बाध्यते]** प्रकृति पुरुष को धर्मी के रूप में स्वाभाविक सम्बंध धर्मी के रूप में ग्रहण करने वाला ज्ञान कराने वाला प्रमाण खंडित हो जाता है, इसलिए इनमें कोई स्वाभाविक सम्बंध नहीं है। **[न तथाभूतौ प्रकृतिपुरुषौ प्रमाणं साधयितुं समर्थम्]** प्रकृति पुरुष को उस प्रकार का स्वाभाविक सम्बंध सिद्ध करने वाला कोई भी प्रमाण सिद्ध नहीं है। **[यतः प्रकृतिस्तु जड़ाऽचेतना च न सा पुरुषेण सह सम्बन्धस्थापनाय स्वतन्त्रा समर्था च तस्या जडत्वादचेतनत्वात्]** क्योंकि प्रकृति तो जा् वस्तु है अचेतन है वह पुरुष के साथ सम्बंध स्थापित करने में स्वतंत्र नहीं है समर्थ नहीं है और उसके जड़ होने से। **[पुरुषश्च नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावः प्रकृत्या सह सम्बन्धस्थापनाय नाभिलाषवान् तस्य नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाववत्त्वात्]** पुरुष (ईश्वर) नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव वाला है वह प्रकृति के साथ सम्बंध जोड़ने की कोई अभिलाषा नहीं रखता क्योंकि वह तो नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त स्वभाव वाला है, **[तथा पुरुषो जीवात्मा न स्वभावतो बद्ध इति पूर्वतः प्रतिपादितत्वात् स्वभावतोऽपि प्रकृत्या सह तस्य सम्बन्धो न घटते]** तथा जीव और प्रकृति का स्वाभाविक सम्बंध होता तो वह बद्ध होता किन्तु वह स्वभाव से बद्ध नहीं है इसका पहले ही खंडन कर चुके हैं, इसलिए प्रकृति और जीव का भी स्वाभाविक सम्बंध नहीं घटता। **[इत्थं सम्बन्धधर्मी न पुरुषस्तथा न सम्बन्धधर्मिणी प्रकृतिः]** इस प्रकार से सम्बंध धर्म वाला न तो कोई पुरुष है और न ही सम्बंध धर्म वाली प्रकृति है, **[तयोः सम्बन्धधर्मित्वेन प्रमाणं न प्रवर्तते किन्तु बाध्यतेऽतो नैसर्गिकसम्बन्धो यद्वा स्वाभाविकसम्बन्धोऽपि न सांख्यसिद्धान्ते मन्यते]** इसलिए प्रकृति पुरुष को स्वाभाविक सम्बंध वाला धर्मी सिद्ध करने वाला कोई भी प्रमाण सिद्ध नहीं होता अतः स्वाभाविक सम्बंध अथवा नैसर्गिक सम्बंध संख्या सिद्धान्त में नहीं माना जाता। **[विज्ञानभिक्षुभाष्ये 'नाजः' इत्यस्य स्थाने 'नातः' पाठःकल्पितः स न युक्तः]** इस सूत्र के विज्ञानभिक्षु भाष्य में ''नाजः'' के स्थान पर ''नातः'' का पाठ कल्पित किया है जो उचित नहीं है। **[सम्बन्धविचारप्रसंगस्तत्र संज्ञासंज्ञी सम्बन्धः पूर्वं गतः]** यहाँ सम्बंध का विचार प्रसंग चल रहा है और उस संदर्भ में पहले संज्ञासंज्ञी का प्रसंग पूरा

बाधनात् तयोर्धर्मित्वेन सम्बन्धधर्मित्वेन ग्राहकं प्रमाणं बाध्यते। न तथाभूतौ प्रकृतिपुरुषौ प्रमाणं साधयितुं समर्थम्। यतः प्रकृतिस्तु जडाऽचेतना च न सा पुरुषेण सह सम्बन्धस्थापनाय स्वतन्त्रा समर्था च तस्या जडत्वादचेतनत्वात्। पुरुषश्च नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावः प्रकृत्या सह सम्बन्धस्थापनाय नाभिलाषवान् तस्य नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाववत्त्वात्, तथा पुरुषो जीवात्मा न स्वभावतो बद्ध इति पूर्वतः प्रतिपादितत्वात् स्वभावतोऽपि प्रकृत्या सह तस्य सम्बन्धो न घटते। इत्थं सम्बन्धधर्मी न पुरुषस्तथा न सम्बन्धधर्मिणी प्रकृतिः, तयोः सम्बन्धधर्मित्वेन प्रमाणं न प्रवर्तते किन्तु बाध्यतेऽतो नैसर्गिकसम्बन्धो यद्वा स्वाभाविकसम्बन्धोऽपि न सांख्यसिद्धान्ते मन्यते। विज्ञानभिक्षुभाष्ये 'नाजः' इत्यस्य स्थाने 'नातः' पाठःकल्पितः स न युक्तः। सम्बन्धविचारप्रसंगस्तत्र संज्ञासंज्ञी सम्बन्धः पूर्वं गतः, अग्रे समवायसम्बन्धविचारः प्रवर्तिष्यमाणोऽस्ति, अत्र खल्वाजः सम्बन्धो नैसर्गिको नित्यः सम्बन्धो विचार्यते ।।९८।।

समवायसम्बन्धे च -

न समवायोऽस्ति प्रमाणाभावात् ।।९९।।

(समवायः न-अस्ति) सांख्यसिद्धान्ते समवायसम्बन्धस्तत्त्वान्तरं न मन्यते (प्रमाणाभावात्) तत्साधनप्रमाणाभावात् ।।९९।।

हो गया, [**अग्रे समवायसम्बन्धविचारः प्रवर्तिष्यमाणोऽस्ति**] और अगले सूत्र में समवाय सम्बंध का विचार आने ही वाला है, [**अत्र खल्वाजः सम्बन्धो नैसर्गिको नित्यः सम्बन्धो विचार्यते**] इसलिए इस सूत्र में जिस सम्बंध पर चर्चा हो रही है वह यही सम्बंध होना चाहिए स्वाभाविक सम्बन्ध नैसर्गिक सम्बंध नहीं है ।।९८।।

समवाय सम्बंध दो नित्य वस्तुओं में होता है जो हमेशा जुड़ के रहती हैं ।

न समवायोऽस्ति प्रमाणाभावात् ।।९९।।

सूत्रार्थ= समवाय नित्य सम्बन्ध भी सांख्यमत में गुण और गुणी आदि से तत्वांतर तीसरा पदार्थ नहीं है, प्रमाण के अभाव होने से।

[**(समवायः न-अस्ति) सांख्यसिद्धान्ते समवायसम्बन्धस्तत्त्वान्तरं न मन्यते (प्रमाणाभावात्) तत्साधनप्रमाणाभावात्**] सांख्यमत में समवाय सम्बंध तत्वांतर नहीं माना जाता क्योंकि उसको अलग सिद्ध करने वाले साधन प्रमाण के अभाव होने से ।।९९।।

प्रमाण का अभाव कैसे है इसको बताते हैं-

उभयत्राप्यन्यथासिद्धेर्न प्रत्यक्षमनुमानं वा ।।१००।।

सूत्रार्थ= कार्य में कार्यपन और कारण में कारणपन स्वतः सिद्ध होने से समवाय संबंध को कार्य कारण से तत्वांतर सिद्ध करने में ना कोई प्रत्यक्ष प्रमाण है न कोई अनुमान प्रमाण है।

कथं प्रमाणाभाव इत्युच्यते -

उभयत्राप्यन्यथासिद्धेर्न प्रत्यक्षमनुमानं वा ।।१००।।

(उभयत्र-अपि) कार्यकारणयोरपि सांख्यसिद्धान्ते सत्कार्यवादे कारणस्य कार्याभिव्यक्तिधर्मवत्त्वात् कारणत्वं कार्यस्य कारणानुवर्तिधर्मित्वात् कार्यत्वं खलु (अन्यथासिद्धेः) प्रमाणमन्तरा-स्वतः सिद्धं स्वरूपतः सिद्धमस्ति। तस्मात् (प्रत्यक्षम्-अनुमानं वा न) तत्र प्रत्यक्षमथवाऽनुमानं प्रमाणं कार्यकारणाभ्यां भिन्नस्य समवायाख्यस्य तत्त्वान्तरत्वसाधकं न भवति, कार्ये भवति कारणं प्रत्यक्षं कारणाच्च कार्यस्य भवति खल्वनुमानं परन्तु ताभ्यां प्रत्यक्षानुमानाभ्यां तयोः कार्यकारणयोः समवायस्ताभ्यां कार्यकारणाभ्यां तत्त्वान्तरं सांख्यसिद्धान्ते नापेक्ष्यते न मन्यते न सिध्यति ।।१००।।

कारणस्य कारणत्वं कार्यस्य कार्यत्वं भवतु स्वरूपतः, ताभ्यां कार्यकारणाभ्यां तत्त्वान्तरं

[**(उभयत्र-अपि) कार्यकारणयोरपि सांख्यसिद्धान्ते सत्कार्यवादे कारणस्य कार्याभिव्यक्तिधर्मवत्त्वात् कारणत्वं कार्यस्य कारणानुवर्तिधर्मित्वात् कार्यत्वं खलु (अन्यथासिद्धेः) प्रमाणमन्तरा-स्वतः सिद्धं स्वरूपतः सिद्धमस्ति**] कार्य और कारण दोनों का ही सांख्य सिद्धान्त में सत्कार्यवाद (जो कार्य है वह अपने कारण में पहले से विद्यमान होता है) में कोई भी कार्य अपनी अभिव्यक्ति से पूर्व विद्यमान था (सांख्य और योग दोनों सत्कार्यवाद को मानते हैं, न्याय और वैशेषिक का असत्कार्यवाद है- विरोध नहीं है प्रस्तुतिकरण का अंतर है) कारण कार्य की अभिव्यक्ति करता है कार्य कारण की अनुवर्ति करता है उसका यह धर्म है, इस प्रकार से कारण और कार्य दोनों अपने स्वरूप से सिद्ध हैं। [**तस्मात् (प्रत्यक्षम्-अनुमानं वा न) तत्र प्रत्यक्षमथवाऽनुमानं प्रमाणं कार्यकारणाभ्यां भिन्नस्य समवायाख्यस्य तत्त्वान्तरत्वसाधकं न भवति**] इसलिए वहाँ प्रत्यक्ष प्रमाण या अनुमान प्रमाण कार्य कारण से भिन्न समवाय नामक किसी पदार्थ को सिद्ध करने वाला कोई अलग से प्रमाण सिद्ध नहीं होता, [**कार्ये भवति कारणं प्रत्यक्षं कारणाच्च कार्यस्य भवति खल्वनुमानं**] कार्य में कारण प्रत्यक्ष ही दिखता है और कारण से कार्य का अनुमान हो जाता है [**परन्तु ताभ्यां प्रत्यक्षानुमानाभ्यां तयोः कार्यकारणयोः समवायस्ताभ्यां कार्यकारणाभ्यां तत्त्वान्तरं सांख्यसिद्धान्ते नापेक्ष्यते न मन्यते न सिध्यति**] परंतु प्रत्यक्ष अनुमान प्रमाण के माध्यम से कार्य और कारण से जो समवाय संबंध है वो इन दोनों से भिन्न तीसरा पदार्थ है, ये सांख्यदर्शन में स्वीकार नहीं किया जाता क्योंकि प्रमाण से सिद्ध नहीं हो रहा ।।१००।।

[**कारणस्य कारणत्वं कार्यस्य कार्यत्वं भवतु स्वरूपतः**] कारण का कारणत्व और कार्य का कार्यत्व स्वरूप से होवे, [**ताभ्यां कार्यकारणाभ्यां तत्त्वान्तरं समवायसम्बन्धो न स्यात्**] कार्य और कारण समवाय से तीसरी वस्तु अलग न होवे [**परन्तु कारणात् कार्याभिव्यक्तिः क्रियया भवति**] परंतु कारण से

समवायसम्बन्धो न स्यात् परन्तु कारणात् कार्याभिव्यक्तिः क्रियया भवति किं सा क्रियाऽनुमानगम्या मन्तव्या? यथा बीजादङ्कुरस्योत्पादनक्रियाऽनुमेया, इत्याकांक्षायामुच्यते -

नानुमेयत्वमेव क्रियया नेदिष्ठस्य तत्तद्वतोरेवापरोक्षप्रतीतेः ।।१०१।।

(क्रियायाः-अनुमेयत्वम्-एव न) क्रियायाः खल्वनुमेयत्वमेव न मन्तव्यं किन्तु प्रत्यक्षत्वमपि भवति, यतः (नेदिष्ठस्य तत्तद्वतोः-एव-अपरोक्षप्रतीतेः) निकटस्थस्य जनस्य क्रियाक्रियावतोः-क्रियायाःक्रियावतश्चैव प्रत्यक्षज्ञानाद्। यः खलु देशकालदृष्ट्या निकटस्थो भवति स क्रियां क्रियावति प्रत्यक्षमपि पश्यति, गच्छति पुरुषे गमनक्रियां पच्यमाने ह्योदने पचनक्रियां मृत्तिकातो निर्मायमाणे हि घटे निर्माणक्रियां साक्षात्पश्यति हि। देशकालव्यवहिता क्रिया खल्वनुमेया भवति ।।१०१।।

यत्र ह्यनुमेया क्रिया भवति तत्र कार्यात् कारणस्याप्यनुमानम्, तद्यथा -

न पाञ्चभौतिकं शरीरं बहूनामुपादानायोगात् ।।१०२।।

(शरीरं पाञ्चभौतिकं न) शरीरं पाञ्चभौतिकं नास्ति, पञ्चभूतेभ्यो नोत्पन्नम् । यतः (बहूनाम्-

---

जो कार्य की अभिव्यक्ति होती है वह क्रिया से होता है (जब तक कारण द्रव्य में क्रिया न हो तो कार्य नहीं बनता) **[किं सा क्रियाऽनुमानगम्या मन्तव्या]** क्या वह क्रिया हो रही है उसे अनुमान से नहीं मानें? **[यथा बीजादङ्कुरस्योत्पादनक्रियाऽनुमेया]** जैसे बीज बोया उसके अंदर अंदर क्रिया उत्पादन की क्रिया होती है वह अनुमान से जानने योग्य है, **इत्याकांक्षायामुच्यते** - इस प्रश्न के उत्तर में कहते हैं-

नानुमेयत्वमेव क्रियया नेदिष्ठस्य तत्तद्वतोरेवापरोक्षप्रतीतेः ।।१०१।।

सूत्रार्थ= क्रिया सब जगह पर अनुमान प्रमाण से ही जानने योग्य नहीं होती, क्रिया और क्रिया वाले पदार्थ के निकट स्थित व्यक्ति को क्रिया का प्रत्यक्ष ज्ञान होने से।

[(क्रियायाः-अनुमेयत्वम्-एव न) क्रियायाः खल्वनुमेयत्वमेव न मन्तव्यं किन्तु प्रत्यक्षत्वमपि भवति] क्रिया सब जगह अनुमेय हो ऐसा नहीं मानना चाहिए किन्तु अनेक स्थानों पर क्रिया प्रत्यक्ष भी होती है, **[यतः (नेदिष्ठस्य तत्तद्वतोः-एव-अपरोक्षप्रतीतेः) निकटस्थस्य जनस्य क्रियाक्रियावतोः-क्रियायाःक्रियावतश्चैव प्रत्यक्षज्ञानाद्]** निकट में विद्यमान जो मनुष्य है जहां-जहां क्रिया चल रही है उस क्रिया और क्रिया वाले पदार्थ के निकट जो व्यक्ति उपस्थित है वह क्रिया को प्रत्यक्ष देखता है। **[यः खलु देशकालदृष्ट्या निकटस्थो भवति स क्रियां क्रियावति प्रत्यक्षमपि पश्यति]** जो देश काल की दृष्टि से निकटस्थ होता है (जहां क्रिया हो रही है) ऐसे में वह क्रिया को भी देखता है और क्रिया वाले पदार्थ में प्रत्यक्ष भी देखता है, **[गच्छति पुरुषे गमनक्रियां पच्यमाने ह्योदने पाचनक्रियां मृत्तिकातो निर्माणमाणे हि घटे निर्माणक्रियां साक्षात्पश्यति हि]** व्यक्ति के चलने में गमन क्रिया दिखती है, भात पकाने में पकाने की क्रिया दिखती है ऐसे ही मिट्टी से घड़ा बनाते समय क्रिया प्रत्यक्ष होती है, इस प्रकार से निकटस्थ व्यक्ति साक्षात क्रिया को देखता है। **[देशकालव्यवहिता क्रिया खल्वनुमेया भवति]** देश काल से छिपी हुई जो क्रिया होती है वह अनुमेंय होती है ।।१०१।।

उपादानयोगात्) बहूनां भूतानामेकस्मिन् कार्ये कार्याभिव्यक्तौ खलूपादानत्वयोगः परिणम्यमानयुक्तता नास्ति। अत्र वक्तव्यम् - तृतीयाध्याये ''पाञ्चभौतिको देहः'' १७, चातुर्भौतिकमित्येके १८, ऐकभौतिकमित्यपरे १९ ''इत्यत्र सूत्रत्रये शरीरस्य कारणविचारणायां चातुर्भौतिकविचारे 'एके' ऐकभौतिकविचारे 'अपरे' शब्दाभ्यां भिन्नमतप्रकाशनं कृतं किन्तु ''पाञ्चभौतिको देहः'' १० इति सूत्रे नान्यमतप्रकाशनसंकेतः, इत्थं तु खलु तत्र पाञ्चभौतिकं शरीरमिति सांख्यमतं मनाक् कल्पयितुं शक्यते परन्तु ''न पाञ्चभौतिकं शरीरं बहूनामुपादानायोगात्'' अत्र प्रस्तुतसूत्रे पाञ्चभौतिकत्वं शरीरस्य निराक्रियते पुनः सांख्यमतं शरीरस्योपादानत्वे किमिति प्रश्नः समुपतिष्ठते तत्र चातुर्भौतिकत्वं तथैकभौतिकत्वं तु न

यत्र ह्यनुमेया क्रिया भवति तत्र कार्यात् कारणस्याप्यनुमानम्, तद्यथा - जहां क्रिया अनुमान से जानने योग्य हो वहाँ कार्य से कारण का भी अनुमान हो जाता है। जैसे कि-

न पाञ्चभौतिकं शरीरं बहूनामुपादानायोगात् ।।१०२।।

सूत्रार्थ=शरीर पाँच महाभूतों से समान मात्रा में नहीं बना है बहुत से कारण द्रव्य समान मात्रा में मिलकर किसी कार्य द्रव्य को ठीक प्रकार से उत्पन्न करने में असमर्थ होने से।

[**(शरीरं पाञ्चभौतिकं न) शरीरं पाञ्चभौतिकं नास्ति, पञ्चभूतेभ्यो नोत्पन्नम्**] शरीर पंचभौतिक नहीं है, पाँच महाभूतों से उत्पन्न नहीं हुआ।[**यतः क्योंकि (बहूनाम्-उपादानयोगात्) बहूनां भूतानामेकस्मिन् कार्ये कार्याभिव्यक्तौ खलूपादानत्वयोगः परिणम्यमानयुक्तता नास्ति**] पाँच भूत समान मात्र में उपादान नहीं हैं। अत्र वक्तव्यम् यहाँ समीक्षा कर रहे हैं [**- तृतीयाध्याये ''पाञ्चभौतिको देहः'' १७, चातुर्भौतिकमित्येके १८, ऐकभौतिकमित्यपरे १९ ''इत्यत्र सूत्रत्रये शरीरस्य कारणविचारणायां चातुर्भौतिकविचारे 'एके' ऐकभौतिकविचारे 'अपरे' शब्दाभ्यां भिन्नमतप्रकाशनं कृतं**] तृतीय अध्याय में जो तीन सूत्र आए थे, इन तीन सूत्रों में जब शरीर के कारणों का विचार चल रहा था ''कि शरीर कितने और किन-किन कारणों से बना है'' उस प्रसंग में जब ये कहा था कि ''चातुर्भौतिकमित्येके'' कुछ लोग ऐसा मानते हैं, ''ऐकभौतिकमित्यपरे'' और कुछ ऐसा भी मानते हैं, ये अन्यों का मत प्रकाशित किया [**किन्तु ''पाञ्चभौतिको देहः'' १० इति सूत्रे नान्यमतप्रकाशनसंकेतः**] किन्तु ''पाञ्चभौतिको देहः'' इस सूत्र में किसी अन्य के मत प्रकाशन नहीं है, [**इत्थं तु खलु तत्र पाञ्चभौतिकं शरीरमिति सांख्यमतं मनाक् कल्पयितुं शक्यते**] इस प्रकार से वहाँ पंचभौतिक है शरीर ये सांख्य का अपना मत है, ये स्वाभाविक रूप से कल्पित किया जा सकता है [**परन्तु ''न पाञ्चभौतिकं शरीरं बहूनामुपादानायोगात्'' अत्र प्रस्तुतसूत्रे पाञ्चभौतिकत्वं शरीरस्य निराक्रियते**] परंतु प्रस्तुत प्रसंग में पंचभौतिक शरीर का खंडन किया जा रहा है [**पुनः सांख्यमतं शरीरस्योपादानत्वे किमिति प्रश्नः समुपतिष्ठते**] फिर सांख्य का अपना मत क्या है! ये प्रश्न उपस्थित होता है [**तत्र चातुर्भौतिकत्वं तथैकभौतिकत्वं तु न सांख्यमतं कल्पयितुं युज्यते**] इस प्रकरण में शरीर चार भूतों से बना है एक भूत से बना है ये तो सांख्य का अपना मत कल्पित नहीं किया जा सकता है [**'एके' 'अपरे' शब्दाभ्यां भिन्नमतप्रदर्शनात्**]'एके''अपरे' शब्दो से भिन्न मत को प्रदर्शित किया है।[**शरीरमनेकभूतेभ्यो निष्पन्नमिति**

सांख्यमतं कल्पयितुं युज्यते 'एके' 'अपरे' शब्दाभ्यां भिन्नमतप्रदर्शनात्। शरीरमनेकभूतेभ्यो निष्पन्नमिति सांख्यमतं तु ध्वन्यते ''न सांसिद्धिकं चैतन्यं प्रत्येकादृष्टेः'' (सांख्य० ३.२०) यथा विज्ञानभिक्षुभाष्येऽपि ''भूतेषु पृथक् पृथक् कृतेषु चैतन्यादर्शनाद् भौतिकस्य देहस्य न स्वाभाविकं चैतन्यम्''। सूत्रे 'प्रत्येकादृष्टेः' पदेन शरीरमनैकभौतिकं तु सिद्धं भवति हि तत्र। अत्रोच्यते न पाञ्चभौतिकं शरीरम्। उभयप्रकरणालोचनया शरीरस्य कारणविषये सांख्यमतमस्तीदं यत्-शरीरमभिनिष्पन्नं तु पञ्चभूतेभ्यः ''पाञ्चभौतिको देहः'' इति कथनात् परन्तु तत्र पञ्चसु भूतेषु पादानत्वं परिणम्यमानत्वं न पञ्चभूतानाम् ''बहूनामुपादानत्वायोगात्'' तर्ह्येकस्य भूतस्योपादानत्वं परिणम्यमानत्वं भवति शरीररूपे कस्यैकस्येति प्रश्ने तु पृथिव्या एवोपादनत्वं परिणम्यमानत्वमस्ति तत्रान्येषां तूपष्टम्भकत्वं सहकारित्वमनिवार्यमेवेति सांख्यमतम्। उक्तं यथाऽतोग्रे हि ''सर्वेषु पृथिव्युपादानमसाधारण्यात् तद्व्यपदेशः पूर्ववत्'' (११२) पृथिवी ह्यसाधारणकारणं

सांख्यमतं तु ध्वन्यते] शरीर अनेक भूतों से उत्पन्न हुआ है ये तो दूसरे स्त्रोत से पता चलता है **[''न सांसिद्धिकं चैतन्यं प्रत्येकादृष्टेः']** शरीर में जो चेतनता है वह स्वाभाविक नहीं है प्रत्येक भूत को जाँचने से' **[(सांख्य० ३.२०) यथा विज्ञानभिक्षुभाष्येऽपि ''भूतेषु पृथक् पृथक् कृतेषु चैतन्यादर्शनाद्॒ भौतिकस्य देहस्य न स्वाभाविकं चैतन्यम्'']** जैसे विज्ञानभिक्षु भाष्य में भी ये कहा गया है -भूतो को अलग अलग जाँचने पर चेतनता दिखाई नहीं दी। सब में चेतनता का अभाव होने से भौतिक देह में स्वाभाविक चेतना नहीं है। **[सूत्रे 'प्रत्येकादृष्टेः' पदेन शरीरमनैकभौतिकं तु सिद्धं भवति हि तत्र]** उस सूत्र में' प्रत्येकादृष्टेः' इस शब्द से ''शरीर अनेक भूतों से बना है'' ये तो सिद्ध हो ही रहा है। **[अत्रोच्यते न पाञ्चभौतिकं शरीरम्]** यहाँ कहा कि पाँच भूतो से शरीर नहीं बना। **[उभयप्रकरणालोचनया शरीरस्य कारणविषये सांख्यमतमस्तीदं यत्-शरीरमभिनिष्पन्नं तु पञ्चभूतेभ्यः ''पाञ्चभौतिको देहः'' इति कथनात्]** दोनों प्रकरणों को देखकर शरीर उत्पन्न तो हुआ है पंचभूतों से ये तो तीसरे अध्याय से सिद्ध हो रहा है **[परन्तु तत्र पञ्चसु भूतेषु पादानत्वं परिणम्यमानत्वं न पञ्चभूतानाम्]** परंतु वहाँ पांचों भूतों का उपादान होना और उसका परिणाम होना ये सटीक नहीं लगता **''बहूनामुपादानत्वायोगात्''** इस सूत्र में ये कहा कि सारे के सारे उपादान नहीं हो सकते **[तर्ह्येकस्य भूतस्योपादानत्वं परिणम्यमानत्वं भवति शरीररूपे कस्यैकस्येति प्रश्ने तु पृथिव्या एवोपादनत्वं परिणम्यमानत्वमस्ति]** फिर एक भूत का ही उपादान होना चाहिए उसी के परिणाम से ये सारा शरीर बना है । शरीर में किस एक भूत का उपादानत्व है? पृथ्वी का ही उपादानत्व सिद्ध होता है उसी का ये परिणाम है **[तत्रान्येषां तूपष्टम्भकत्वं सहकारित्वमनिवार्यमेंवेति सांख्यमतम्]** वहाँ अन्य भूतों का थोड़ा-थोड़ा सहयोग है और मुख्य उपादानत्व एक है यह सांख्य का मत है। **[उक्तं यथाऽतोग्रे हि''सर्वेषु पृथिव्युपादानमसाधारण्यात् तद्व्यपदेशः पूर्ववत्'']** जैसा कि यहाँ आगे भी कहा है- सभी शरीरों में पृथ्वी उपादान है, विशेष होने से शेष कथन पूर्व के समान है **[(११२) पृथिवी ह्यसाधारणकारणं विशेषकारणं प्रधानकारणमुपादानकारणमन्यानि भूतानि तु साधारणकारणानि गौणकारणानि सहकारिकारणानीत्यर्थः]** पृथ्वी मुख्य कारण है असाधारण कारण है विशेष कारण है प्रधान कारण है उपादान कारण है अन्य साधारण सहयोगी कारण हैं, **[यथा घटस्योपादानकारणं मृत्तिका तत्र पिण्डीकरणे जलम्]** जैसे घड़े का उपादान कारण मिट्टी है उसको पिंडी बनाने में सहयोगी जल है, **पाकेऽग्निः** घड़े को पकाने के लिए अग्नि का सहयोग,

विशेषकारणं प्रधानकारणमुपादानकारणमन्यानि भूतानि तु साधारणकारणानि गौणकारणानि सहकारिकारणानीत्यर्थः, यथा घटस्योपादानकारणं मृत्तिका तत्र पिण्डीकरणे जलम्, पाकेऽग्निः, गतिव्यवहारे वायुः, अवकाशप्रदाने चाकाशः सहकारिकारणानि सन्ति। आहारनियमादपि तथैव प्रतीयते शरीरस्य स्थविष्ठत्वे स्थिरत्वे वृद्धौ च पार्थिव आहार एव प्राधान्येनापेक्ष्यते जलाग्निवाय्वाकाशानां सम्पर्कोऽपि सूक्ष्मभावेन निमित्तं भवति ।।१०२।।

बाह्यस्थूलशरीरान्तरे सूक्ष्मशरीरमप्यस्तीत्याह -

न स्थूलमिति नियम आतिवाहिकस्यापि विद्यमानत्वात् ।।१०३।।

(स्थूलम्-इति नियमः-न) स्थूलशरीरमेवास्तीति नियमः सिद्धान्तो न, यतः (आतिवाहिकस्य-अपि विद्यमानत्वात्) अतिवाहे-देहाद् देहान्तरप्राप्तौ निमित्तं यत् तदातिवाहिकं सूक्ष्मशरीरं तस्यापि विद्यमानत्वमस्ति, नहि निराश्रयो जीवात्मा देहाद् देहान्तरं गन्तुमर्हः। उक्तं लिंगशरीरम् ''तदेव सक्तः सह

गतिव्यवहारे वायुः उठान लाना ले जाना में गति का व्यवहार वायु से है, [**अवकाशप्रदाने चाकाशः सहकारिकारणानि सन्ति**] घड़े को टिकाने के लिए आकाश का सहयोग होता है। [**आहारनियमादपि तथैव प्रतीयते शरीरस्य स्थविष्ठत्वे स्थिरत्वे वृद्धौ च पार्थिव आहार एव प्राधान्येनापेक्ष्यते**] शरीर को आहार आदि का भी सहयोग प्रतीत होता है उसे स्थूल बनाने में स्थिर रखने में वृद्धि कराने पार्थिव आहार की ही प्रधानता होती है [**जलाग्निवाय्वाकाशानां सम्पर्कोऽपि सूक्ष्मभावेन निमित्तं भवति**] जल, अग्नि, वायु, आकाश आदि का संपर्क सहयोग सूक्ष्म रूप से होता है। उसका कोई विरोध नहीं है।।१०२।।

बाह्य स्थूल शरीर के अन्दर एक सूक्ष्म शरीर भी है। इस बात को अगले सूत्र से कहते हैं-

न स्थूलमिति नियम आतिवाहिकस्यापि विद्यमानत्वात् ।।१०३।।

सूत्रार्थ=केवल स्थूल शरीर ही हो ऐसा नियम नहीं है, सूक्ष्म शरीर के भी विद्यमान रहने से।

[**(स्थूलम्-इति नियमः-न) स्थूलशरीरमेंवास्तीति नियमः सिद्धान्तो न**] स्थूल शरीर ही हो ऐसा कोई नियम व सिद्धान्त नहीं है, [**यतः क्योंकि (आतिवाहिकस्य-अपि विद्यमानत्वात्) अतिवाहे-देहाद् देहान्तरप्राप्तौ निमित्तं यत् तदातिवाहिकं सूक्ष्मशरीरं तस्यापि विद्यमानत्वमस्ति**] एक शरीर को छोडकर दूसरे शरीर की प्राप्ति में जो निमित्त बनता है वह आतिवाहिक (सूक्ष्म शरीर) है। वह सूक्ष्म शरीर की भी विद्यमानता है, [**नहि निराश्रयो जीवात्मा देहाद् देहान्तरं गन्तुमर्हः**] बिना आश्रय के आधार के जीवात्मा एक शरीर से दूसरे शरीर तक नहीं जा सकता। [**उक्तं लिंगशरीरम्** शास्त्रों में लिंग (सूक्ष्म) शरीर की चर्चा आती है- **''तदेव सक्तः सह कर्मणैति लिंग मनो यत्र निषक्तमस्य'' (बृह० ४.४.६)** ''उसी से आसक्त हुआ जुड़ा हुआ कमो५ के साथ जाता है जो लिंग शरीर रूपी मन है वह जिस वस्तु में जीवात्मा का मन आसक्त है वहाँ ले जाता है''।।१०३।।

कर्मणैति लिंग मनो यत्र निषक्तमस्य'' (बृह० ४.४.६) ।।१०३।।

शरीरे हीन्द्रियाणि सन्ति, तानि प्राप्तं स्वस्वविषयं प्रकाशयन्ति यद्वाऽप्राप्तं प्रकाशयन्ति, दृश्यते खलूभयं प्राप्तप्रकाशनमप्राप्तप्रकाशनं च तेषाम्। यथा श्रोत्रं प्राप्तं समीपस्थं शब्दमपि प्रकाशयति दूरस्थमप्राप्तमपि प्रकाशयति, तथा नेत्रं प्राप्तं समीपस्थं रूपमपि प्रकाशयति दूरस्थमप्राप्तमाकाशीयं नक्षत्रतारकमपि प्रकाशयति तदत्र कः सिद्धान्तः। अत्रोच्यते –

नाप्राप्तप्रकाशकत्वमिन्द्रियाणामप्राप्तेः सर्वप्राप्तेर्वा ।।१०४।।

(इन्द्रियाणाम्-अप्राप्तप्रकाशकत्वं न) इन्द्रियाणि न ह्यप्राप्तं प्रकाशयन्ति, यच्चाप्राप्तं दूरस्थं शब्दं रूपं वा प्रकाशयन्तीति प्रतीयते तन्न तथा, किन्तु तदपि विषयजातं प्राप्तमेव प्रकाशयन्तीति निश्चयः,

---

[**शरीरे हीन्द्रियाणि सन्ति, तानि प्राप्तं स्वस्वविषयं प्रकाशयन्ति यद्वाऽप्राप्तं प्रकाशयन्ति** शरीर में इंद्रियाँ हैं, वे अपने-अपने विषय का ज्ञान कराती हैं, वे इंद्रियाँ क्या बिना जुड़े ही ज्ञान प्राप्त कराती हैं, **दृश्यते खलूभयं प्राप्तप्रकाशनमप्राप्तप्रकाशनं च तेषाम्**] पूर्वपक्षी कहता है- दोनों ही प्रकार से देखा जाता है कभी इंद्रिया विषयों से जुड़कर ज्ञान कराती है और कभी अपने विषयों से जुड़े बिना ही ज्ञान प्राप्त कराती हैं। [**यथा श्रोत्रं प्राप्तं समीपस्थं शब्दमपि प्रकाशयति दूरस्थमप्राप्तमपि प्रकाशयति**] जैसे कान समीप वाले शब्दों का भी ज्ञान कराता है और दूर के शब्द का भी ज्ञान कराता है, [**तथा नेत्रं प्राप्तं समीपस्थं रूपमपि प्रकाशयति दूरस्थमप्राप्तमाकाशीयं नक्षत्रतारकमपि प्रकाशयति तदत्र कः सिद्धान्तः**] वैसे ही नेत्र समीप के दृश्यों को भी दिखाता है और दूर स्थित आकाश में नक्षत्र तारागण को भी दिखाता है। इसमें सिद्धान्त क्या है?। **अत्रोच्यते** - इसके उत्तर में कहते हैं-

नाप्राप्तप्रकाशकत्वमिन्द्रियाणामप्राप्तेः सर्वप्राप्तेर्वा ।।१०४।।

सूत्रार्थ= इंद्रियाँ अपने विषयों से संबंद्ध हुए बिना विषयों का ज्ञान नहीं कराती हैं अन्यथा किसी भी विषय का ज्ञान न हो या सभी विषयों का ज्ञान हो जाए।

[**(इन्द्रियाणाम्-अप्राप्तप्रकाशकत्वं न) इन्द्रियाणि न ह्यप्राप्तं प्रकाशयन्ति**] सिद्धांती कहता है- जो इंद्रियों से अप्राप्त विषय है उनका प्रकाश नहीं कराती, [**यच्चाप्राप्तं दूरस्थं शब्दं रूपं वा प्रकाशयन्तीति प्रतीयते तन्न**] तथा और जो अप्राप्त दूरस्थ शब्द और रूप है जो आपको प्रकाशित हो रहा था वह ऐसा नहीं है, [**किन्तु तदपि विषयजातं प्राप्तमेव प्रकाशयन्तीति निश्चयः**] किन्तु विना विषयों के अप्राप्ति के कोई भी विषय का प्रकाश नहीं होता, [**इन्द्रियाणामतीन्द्रियत्वात् तदुक्तं पूर्वम्**] इंद्रियों के अतींद्रिय होने से ऐसा पूर्व ही कहा था **''अतीन्द्रियमिन्द्रियं...'' (सांख्य० २.२३)** (ऋषियों का विचार सिद्धान्त यह है नेत्र इंद्रिय की किरणें विषय तक जाती है उसका चित्र रूपदर्शन करके आती है और हमें मन के माध्यम से ज्ञान कराती है आधुनिक विज्ञान की मान्यता है- बाहर से लाइट किरण आती हैं आँख के

इन्द्रियाणामतीन्द्रियत्वात् तदुक्तं पूर्वम् ''अतीन्द्रियमिन्द्रियं...''(सांख्य० २.२३) न हि शरीरसंसक्तानि गोलकानीन्द्रियाणि, तस्मात् प्राप्तं हि विषयं प्रकाशयन्तीन्द्रियाणि तेषां शक्तिस्वरूपत्वात् (अप्राप्तेः सर्वप्राप्तेः वा) यदि प्राप्तं न प्रकाशयेयुरिन्द्रियाणि तदा कस्मिंश्चिद् देशे काले वा प्राप्तस्य शब्दस्य रूपादिकस्य वा तस्मिन् देशे काले चाप्राप्तिर्भवेत्, भवति हि प्राप्तस्य प्राप्तिः। अथवा सर्वप्राप्तिर्भवेत् सर्वस्मिन् देशे काले च सर्वस्य विषयस्य प्राप्तिर्भवेत्, न च तथा भवति। तस्मात् प्राप्तप्राकाशकत्वमिन्द्रियाणआमिति सिद्धान्तः ।।१०४।।

ननु चेदिन्द्रियाणि प्राप्तं प्रकाशयन्ति तर्हि चक्षुस्तु तैजसं भवेद् यद् दूरस्थं नक्षत्रादिकं प्रति सर्पति तत्प्राप्तुं तैजस एव पदार्थ किरणरूपेण दूरमपसरति पुनराहंकारिकत्वमिन्द्रियाणामिति कथम्। अत्रोच्यते -

---

निकट फिर आँख देखती है फिर मस्तिष्क तक पहुंचाती फिर ज्ञान होता है) [**न हि शरीरसंसक्तानि गोलकानीन्द्रियाणि**] शरीर के साथ जो जुड़े है वह इंद्रियों के गोलक हैं इंद्रिय नहीं हैं इंद्रिय तो गोलक के अन्दर होती हैं, [**तस्मात् प्राप्तं हि विषयं प्रकाशयन्तीन्द्रियाणि तेषां शक्तिस्वरूपत्वात्**] इसलिए इंद्रिय अपने विषय को प्राप्त होती हैं उनकी शक्ति अधिक है उससे वह वस्तु अथवा विषय के स्वरूप का ज्ञान कराती हैं [**(अप्राप्तेः सर्वप्राप्तेः वा) यदि प्राप्तं न प्रकाशयेयुरिन्द्रियाणि तदा कस्मिंश्चिद् देशे काले वा प्राप्तस्य शब्दस्य रूपादिकस्य वा तस्मिन् देशे काले चाप्राप्तिर्भवेत्**] यदि प्राप्त का प्रकाश इंद्रियाँ न करें तब किसी भी देश व काल में कान में आए हुए शब्द का या आँख तक पहुंचे रूप का उस देश या काल में ज्ञान प्राप्ति नहीं होगा, [**भवति हि प्राप्तस्य प्राप्तिः**] इंद्रियों का जिन जिन से संबंध जुड़ेगा उन उनका ज्ञान होता है। [**अथवा सर्वप्राप्तिर्भवेत् सर्वस्मिन् देशे काले च सर्वस्य विषयस्य प्राप्तिर्भवेत्, न च तथा भवति**] यदि बिना विषयों से जुड़े किसी भी विषय का ज्ञान मान लिया जाए तो सभी देशों सभी कालों में हर वस्तु दिखेगी प्रत्येक विषय का प्रत्यक्ष होने लग जाएगा,और ऐसा तो होता नहीं। [**तस्मात् प्राप्तप्राकाशकत्वमिन्द्रियणामिति सिद्धान्तः**] इसलिए इंद्रियाँ जिन जिन विषयों से जुड़ेंगी उन्हीं-उन्हीं विषयों का ज्ञान कराएंगी जिनसे नहीं जुड़ेंगी उनका ज्ञान नहीं कराएंगी यही सिद्धान्त है ।।१०४।।

प्रश्न है यदि इंद्रियाँ अपने विषय से सम्बद्ध हो कर के ही ज्ञान प्राप्त कराती हैं, फिर तो चक्षु आग्नेय होना चाहिए क्योंकि वह दूर नक्षत्र आदि तक सरकेगा फिर वापिस आकर ज्ञान प्राप्त कराएगा तेजस का (ये आग्नेय तत्व होना चक्षु क्योंकि अग्नि फैलती है), क्योंकि तेजस पदार्थ जो आग्नेय तत्व है वह किरण के रूप में दूर तक फैलता है। फिर इंद्रियाँ अहंकार से बनी हैं ये कथन कैसे हुआ? इस पर कहते हैं-

न तेजोऽपसर्पणात् तैजसं चक्षुर्वृत्तितस्तत्सिद्धेः ।।१०५।।

सूत्रार्थ= अग्नि के गतिशील होने से चक्षु इंद्रियो को भी आग्नेय =अग्नि से उत्पन्न (तेजस) नहीं मानना चाहिए। चक्षु इंद्रियों की गति अपनी शक्ति से होती है।

[**(तेजोऽपसर्पणात्) तेजसोऽपसर्पणं तेजोऽपसर्पणमिति षष्ठीसमासः**] ये षष्ठी तत्पुरुष समास है, ~~अग्नि का फैलना~~ दूर तक जाना। [**तेजोविषयकमपसर्पणं भवति**] तेज का विषय है फैलना, [**अपसर्पणं**

न तेजोऽपसर्पणात् तैजसं चक्षुर्वृत्तितस्तत्सिद्धेः ।।१०५।।

(तेजोऽपसर्पणात्) तेजसोऽपसर्पणं तेजोऽपसर्पणमिति षष्ठीसमासः। तेजोविषयकमपसर्पणं भवति, अपसर्पणं तेजो धर्मस्तस्मात् (तैजसं चक्षुः-न) चक्षुस्तैजसं न मन्तव्यं यतः (वृत्तितः-तत्सिद्धेः) चक्षुषो वृत्तिद्वारेण दूरस्थं विषयं प्रत्यपसर्पणं भवति। भवन्ति हीन्द्रियाणां वृत्तयो याभिरिन्द्रियाणि दूरस्थमपि विषयं प्राप्नुवन्ति तत्समीपं सर्पन्ति, मनोऽपि त्वतैजसं सद् दूरमपसर्पति वृत्तिद्वारेण, सांख्यसिद्धान्ते मनोवदिन्द्रियाणामपि वृत्तयः स्वीक्रियन्ते, यथा मनसो वृत्तयस्तथेन्द्रियाणामपि वृत्तयो भवन्तीत्युक्तं हि पूर्वम् ''क्रमशोऽक्रमशश्चेन्द्रियवृत्तिः'' (सांख्य० २.३२) ।।१०५।।

इन्द्रियाणां वृत्तिभिर्विषयप्राप्तिरुच्यते, वृत्तिसिद्धिः कथं भवतीत्युच्यते -

प्राप्तार्थप्रकाशलिंगाद् वृत्तिसिद्धिः ।।१०६।।

(प्राप्तार्थप्रकाशलिंगात्-वृत्तिसिद्धिः) प्राप्तमर्थं प्रकाशयन्ति ज्ञापयन्तीति लिंगमनुमानं वृत्तिसिद्धौ

तेजो धर्मस्तस्मात् (तैजसं चक्षुः-न) चक्षुस्तैजसं न मन्तव्यं] फैलना अग्नि का धर्म है इतने मात्र से ये भी नहीं समझ लेना चाहिए कि चक्षु भी तेजस है **[यतः (वृत्तितः-तत्सिद्धेः) चक्षुषो वृत्तिद्वारेण दूरस्थं विषयं प्रत्यपसर्पणं भवति]** क्योंकि चक्षु वृत्ति के द्वारा दूर तक के विषय तक फैलता है। **[भवन्ति हीन्द्रियाणां वृत्तयो याभिरिन्द्रियाणि दूरस्थमपि विषयं प्राप्नुवन्ति तत्समीपं सर्पन्ति]** इंद्रियों की अपनी-अपनी वृत्तियाँ होती हैं उन व्रत्तियों के द्वारा इंद्रियाँ दूर-दूर तक फैलती है और विषय को प्राप्त करती हैं उसके पास तक सरक के जाती हैं, **[मनोऽपि त्वतैजसं सद् दूरमपसर्पति वृत्तिद्वारेण]** मन भी अतेजस होता हुआ वृत्ति के द्वारा अलग अलग इंद्रियों के समीप जाता ज्ञान प्राप्त करता है, **[सांख्यसिद्धान्ते मनोवदिन्द्रियाणामपि वृत्तयः स्वीक्रियन्ते]** सांख्यदर्शन के सिद्धान्त में मन के समान इंद्रियों की भी वृत्तियाँ स्वीकार की जाती हैं (यहाँ इंद्रियों की वृत्ति से अर्थ है इंद्रियों का स्वभाव-शक्ति), **[यथा मनसो वृत्तयस्तथेन्द्रियाणामपि वृत्तयो भवन्तीत्युक्तं हि पूर्वम् ''क्रमशोऽक्रमशश्चेन्द्रियवृत्तिः'' (सांख्य० २.३२)]** जैसे मन की पाँच व्रत्तियाँ होती हैं ऐसे ही इंद्रियों की भी अपनी अपनी व्रत्तियाँ होती हैं, जैसा कि दूसरे अध्याय में कहा ही था- इंद्रियों कि वृत्तियाँ है वह क्रम से भी होती हैं और अक्रम से भी।।१०५।।

विषयों का प्राप्ति इंद्रियों की वृत्ति से होती है। इंद्रियों की वृत्ति सिद्धि कैसे होती है? फैलती कैसे हैं? इस विषय को कहते हैं-

प्राप्तार्थप्रकाशलिंगाद् वृत्तिसिद्धिः ।।१०६।।

सूत्रार्थ= क्योंकि इंद्रियां विषय से सम्बद्ध होकर के ही ज्ञान प्राप्त कराती हैं इस प्रमाण से चंद्रमा का ज्ञान यहीं बैठे-बैठे हो रहा है इससे सिद्ध हो रहा है चंद्रमा और चक्षु इंद्रियों का सन्निकर्ष हो चुका है।

[(प्राप्तार्थप्रकाशलिंगात्-वृत्तिसिद्धिः) प्राप्तमर्थं प्रकाशयन्ति ज्ञापयन्तीति लिंगमनुमानं वृत्तिसिद्धौ यन्त्रस्य तारमिव] इंद्रियाँ प्राप्त हुए विषय का ही ज्ञान प्राप्त कराती हैं ये लिंग का अनुमान प्रमाण है वृत्ति सिद्धि में, जैसे यंत्र का तार से जुड़ाव-मेल-सम्बद्ध होता है।।१०६।।

यन्त्रस्य तारमिव ।।१०६।।

अथ किंस्वरूपा सेत्युच्यते -

भागगुणाभ्यां तत्त्वान्तरं वृत्तिः सम्बन्धार्थं सर्पतीति ।।१०७।।

(भागगुणाभ्यां तत्त्वान्तरं वृत्तिः) सा खल्विन्द्रियवृत्तिः, इन्द्रियस्य न भागोंऽशो न च गुणो रूपादिवत् किन्तु भागगुणाभ्यां वस्त्वन्तरं भिन्नं वस्तु। यतः (सम्बन्धार्थं सर्पति-इति) दूरस्थमपि विषयं प्रति सम्बन्धार्थं सर्पतीति हेतोः, इन्द्रियं विहाय तद्भागो गुणो वा न दूरं सर्पितुं शक्तस्तत्स्थत्वाद् वृत्तिस्तु विद्युत्तरंगवद् दूरमपि सर्पति ।।१०७।।

ननु वृत्तिरिन्द्रियाणां भागगुणाभ्यां तत्त्वान्तरं तर्हि सा विशिष्टा क्रिया हि स्यात् पुनः क्रिया भवति द्रव्याश्रिता द्रव्ये हि व्यापृता न ततो बहिर्गमनशीलेति विप्रतिपत्तिर्निराक्रियते -

न द्रव्ये नियमस्तद्योगात् ।।१०८।।

अब वह वृत्ति कैसे स्वरूप वाली होती है। इस विषय में कहते हैं-

भागगुणाभ्यां तत्त्वान्तरं वृत्तिः सम्बन्धार्थं सर्पतीति ।।१०७।।

सूत्रार्थ=वृत्ति इंद्रियों का भाग और गुण दोनों ही नहीं है अपितु इनसे भिन्न स्वरूप वाली है। विषय से सम्बंध जोड़ने के लिए सरकती फैलती है।

[(भागगुणाभ्यां तत्त्वान्तरं वृत्तिः) सा खल्विन्द्रियवृत्तिः, इन्द्रियस्य न भागोंऽशो न च गुणो रूपादिवत् किन्तु भागगुणाभ्यां वस्त्वन्तरं भिन्नं वस्तु] वह जो इंद्रिय वृत्ति है, वह इंद्रिय का कोई भाग या अंश नहीं है और न ही रूपादि गुण है, किन्तु भाग और गुण इन दोनों से भिन्न वस्तु है। **[यतः (सम्बन्धार्थं सर्पति-इति) दूरस्थमपि विषयं प्रति सम्बन्धार्थं सर्पतीति हेतोः]** क्योंकि वह वृत्ति दूर स्थित विषय के साथ सम्बंध जोड़ने जाती है, **[इन्द्रियं विहाय तद्भागो गुणो वा न दूरं सर्पितुं शक्तस्तत्स्थत्वाद् वृत्तिस्तु विद्युत्तरंगवद् दूरमपि सर्पति]** इंद्रिय का भाग अंश या गुण इंद्रिय को छोड़कर दूर नहीं जा सकती, वृत्ति तो विद्युत तरंग के समान दूर जाती है जब दूर जाती है तो गुण अकेला नहीं जाता द्रव्य भी जाता है ।।१०७।।

प्रश्न है कि वृत्ति इंद्रिय के भाग और गुण दोनों से अलग स्वरूप वाली है फिर वह विशेष क्रिया वाली होनी चाहिए? जो क्रिया होती है वह द्रव्य में आश्रित होती है संयुक्त होती है, उससे बाहर तो वह जाती नहीं। इससे विरोधाभास आता है। इसका निराकरण करते हैं-

न द्रव्ये नियमस्तद्योगात् ।।१०८।।

सूत्रार्थ= चक्षु द्रव्य में यह नियम है कि वह सदा एक ही स्थान पर रहे उसमें संकोच विकास आदि धर्म का योग होने से वह दूर भी जाता है।

(इस सूत्र का भाष्य ठीक नहीं है)

(द्रव्ये नियमः-न) द्रव्ये हि क्रियाऽवतिष्ठेतेति नियमो नास्ति, द्रव्येऽप्यवतिष्ठते व्याप्रियते क्रिया । किन्तु (तद्योगात्) द्रव्ययोगात् तद्बहिरपि दूरं क्रियाऽपसर्पति यथा सूर्यस्य तापक्रिया सूर्येऽपि स्थिता सती दूरं दूरतरं दूरतमं चापसर्पति तथेन्द्रियाणां वृत्तिरूपा विशिष्टा क्रिया दूरमप्यपसर्पति ।। अन्यो व्याख्यामार्गः - (द्रव्ये नियमः-न) क्रियाया द्रव्ये नियमो नास्ति, भवतु द्रव्ये क्रिया परन्तु यत्र द्रव्यत्वं तत्रैव क्रियेति नियमो न, किन्तु (तद्योगात्) क्रियायोगाद् द्रव्यत्वं भवति तेन क्रिया द्रव्यात् पृथगपि व्याप्रियते हि, उदाहरणं तु पूर्ववदेव यथा वाऽग्नेर्धूमगतिस्ततः पृथगपि प्रतीयते ।। अथवा -

द्रव्ये हि क्रिया भवति तद्वृत्तौ कथमपसर्पणक्रियेत्यत्रोच्यते -

(द्रव्ये नियमः-न) द्रव्ये क्रियाया नियमो न, भवतु द्रव्येऽपि क्रिया परन्तु (तद्योगात्) क्रियायोगाद् वृत्तौ विद्युत्तरंगवत् क्रियेति निश्चयः, यतो दूरस्थमपि विषयं प्राप्नोतीन्द्रियं स्ववृत्त्या क्रियावत्या तस्मान्न दोषः ।।१०८।।

इस तरह की जो इंद्रियाँ है, इनके विषय में कहते हैं-

न देशभेदेऽप्यन्योपादानताऽस्मदादिवन्नियमः ।।१०९।।

सूत्रार्थ= मनुष्य को छोड़कर पशु-पक्षियों में भी इंद्रियों का उपादान अहंकार से भिन्न नहीं है। जैसे हमारी इंद्रियाँ अहंकार से बनी वैसे ही औरों की भी बनी।

[(देशभेदेऽ-अपि) शरीरभेदेऽपि मनुष्येतरशरीरेऽपि (अन्योपादानता न)। इन्द्रियाणां वृत्तिमतामहंकारातिरिक्तस्य भूतस्योपादानत्वं नास्ति किन्तु] शरीर भेद होने पर भी अर्थात मनुष्य शरीर से भिन्न शरीरों में जो इंद्रियाँ है जो कि वृत्ति वाली हैं उन इंद्रियों का भी उपदान अहंकार ही है कोई अहंकार से अलगा द्रव्य उसका उपादान नहीं है, किन्तु **[(अस्मदादिवत्-नियमः) अस्माकमिन्द्रियाणां यथाऽहंकार उपादानं तथैव तत्रापीन्द्रियाणामहंकारोपादानत्वनियमः]** जैसे मनुष्यो की इंद्रियों का उपादान अहंकार है वैसे ही पशु-पक्षियों की इंद्रियों का उपादान कारण भी अहंकार ही है।१०९।।

किन्तु -

निमित्तव्यपदेशात् तद्व्यपदेशः ।।११०।।

सूत्रार्थ= जो इंद्रियों को भौतिक नाम से कहा गया है उसका कथन इस दृष्टि से है कि पंचमहाभूत इंद्रियों के सहयोगी कारण है इससे इंद्रियों को पंचभौतिक कहा गया है।

[(निमित्तव्यपदेशात्) इन्द्रियाणामुपष्टम्भकत्वनिमित्तानि भूतानि तथाविधनिमित्तव्यपदेशात्] इंद्रियों के कार्य व्यवहार में सहयोग देने वाले पंचभूतादि हैं इस प्रकार का निमित्त कथन होने से **[(तद्व्यपदेशः) भूतव्यपदेशो भवतु भौतिकानीन्द्रियाणीति]** पाँच भूत इंद्रियों के कार्य करने में सहयोगी है इसलिए इंद्रियों को पंचभौतिक कह दिया, **[यथा दर्शनानन्तरे ''घ्राणरसनचक्षुस्त्वक्श्रोत्राणीन्द्रियाणि भूतेभ्यः'']** जैसा कि अन्य दर्शन में भी बताया है -नासिका, रसना, आँख, त्वचा, कान ये पांचों इंद्रियाँ भूतों से सहायता लेती हैं। **[(न्याय० १.१.१२) भवति हि निमित्ततोऽपि व्यपदेशस्तद्यथा ''अन्नमयं हि सोम्य मनः'' (छान्दो० ६.५.४) यथा वा ''यज्ञाद् भवति पर्जन्यः'' (गीता० ३.१४)]** इंद्रियाँ भूतों से नहीं ~~बनी पाँच भूतों से~~

तथाविधानां वृत्तिगतामिन्द्रियाणाम् -

न देशभेदेऽप्यन्योपादानताऽस्मदादिवन्नियम: ।।१०९।।

(देशभेदेऽ-अपि) शरीरभेदेऽपि मनुष्येतरशरीरेऽपि (अन्योपादानता न) । इन्द्रियाणां वृत्तिमतामहंकारातिरिक्तस्य भूतस्योपादानत्वं नास्ति किन्तु (अस्मदादिवत्-नियम:) अस्माकमिन्द्रियाणां यथाऽहंकार उपादानं तथैव तत्रापीन्द्रियाणामहंकारोपादानत्वनियम: ।।१०९।।

किन्तु -

निमित्तव्यपदेशात् तदव्यपदेश: ।।११०।।

(निमित्तव्यपदेशात्) इन्द्रियाणामुपष्टम्भकत्वनिमित्तानि भूतानि तथाविधनिमित्तव्यपदेशात् (तद्‌व्यपदेश:) भूतव्यपदेशो भवतु भौतिकानीन्द्रियाणीति, यथा दर्शनानन्तरे ''घ्राणरसनचक्षुस्त्वक्श्रोत्राणीन्द्रियाणि भूतेभ्य:'' (न्याय० १.१.१२) भवति हि निमित्ततोऽपि

सहयोग लेने के कारण भौतिक कहा जाता है। जैसे कि छंदोग्य उपनिषद् में कहा- हे सोम्य - मन अन्नमय है, अथवा ऐसे ही एक और उदाहरण है - यज्ञ से बादल बनता है ।।११०।।

इंद्रियाँ अहंकार से बनी है भिन्न-भिन्न शरीरों में सब जगह ऐसा आपने कहा। अब शरीरों का भेद दिखलाया जाएगा-

ऊष्मजाण्डजजरायुजोद्भिज्जं सांकल्पिकसांसिद्धिकं चेति न नियम: ।।१११।।

सूत्रार्थ= उष्मज, अंडज, जरायुज, उद्भिज्ज, सांकल्पिक और सांसिद्धिक ये छ: प्रकार के शरीर होते हैं। परंतु छ: ही प्रकार के हों ऐसा नियम नहीं है।

[(ऊष्मजाण्डजजरायुजोद्भिज्जम्) ऊष्मजं स्वेदजं दंशादिशरीरम्] भाप-पसीने-ऊष्मा से डांस पिस्सू जुआँ आदि के शरीर होते हैं, **[अण्डजं पक्षिसरीसृपशरीरम्]** दूसरे प्रकार के शरीर जो अंडे से पैदा होते हैं जैसे पक्षी, सरकने वाले सर्प आदि, **[जरायुजं मनुष्यादिगर्भादुत्पन्नं शरीरम्]** जरायुज= गरम थैली से उत्पन्न जो शरीर हैं वह तीसरे प्रकार के होते हैं जैसे मनुष्य, पशु आदि, **[उद्भिज्जं भूमेरुद्भेदनाज्जातं वृक्षादिकम् (सांकल्पिकसांसिद्धिकं च) चकारोऽप्यर्थ:]** चौथे उद्भिज्ज जमीन को भेद कर फाड़कर पैदा होने वाले शरीर हैं जैसे- वृक्ष वनस्पति। ''च'' चकार शब्द जो सूत्र में है वह अपि अर्थ में हैं। **[सांकल्पिकं प्रारम्भसृष्टावार्षं शरीरमग्न्यादीनां वेदप्रकाशकमहर्षीणाम्]** प्रारम्भिक सृष्टि में ईश्वर ने सबको उत्पन्न किया पशु-पक्षी-वृक्ष वनस्पति और मनुष्य भी पैदा किए उनमें जो वेद प्रकाशक अग्नि, वायु आदि चार ऋषि हुए उनके वेदों का ज्ञान प्रकाश किया उनका शरीर संकल्प प्रधान होने के कारण वह सांकल्पिक शरीर वाले हुए, **सांसिद्धिकं स्वत: सिद्धं नैसर्गिकमादिसृष्टामवथुनसम्भवं शरीरमपि** सांसिद्धिक स्वाभाविक जो स्वयं पैदा हुए आदि सृष्टि में जो

व्यपदेशस्तद्यथा "अन्नमयं हि सोम्य मनः" (छान्दो० ६.५.४) यथा वा "यज्ञाद् भवति पर्जन्यः" (गीता०३.१४) ।।११०।।

इन्द्रियाणामाहंकारिकत्वं शरीरभेदेऽप्युक्तमथेदानीं स शरीरभेदः प्रदर्श्यते यच्छरीरम् -

ऊष्मजाण्डजजरायुजोद्भिज्जं सांकल्पिकसांसिद्धिकं चेति न नियमः ।।१११।।

(ऊष्मजाण्डजजरायुजोद्भिज्जम्) ऊष्मजं स्वेदजं दंशादिशरीरम्, अण्डजं पक्षिसरीसृपशरीरम्, जरायुजं मनुष्यादिगर्भादुत्पन्नं शरीरम्, उद्भिज्जं भूमेरुद्भेदनाज्जातं वृक्षादिकम् (सांकल्पिकसांसिद्धिकं च) चकारोऽप्यर्थः। सांकल्पिकं प्रारम्भसृष्टावार्षं शरीरमग्न्यादीनां वेदप्रकाशकमहर्षीणाम्, सांसिद्धिकं स्वतः सिद्धं नैसर्गिकमादिसृष्टामवथुनसम्भवं शरीरमपि, सांकल्पिकसांसिद्धिकभेदद्वयेनापि शरीरं भवतीत्यर्थः। सांसिद्धिकं स्वतः सिद्धं नैसर्गिकम्, यथा "न सांसिद्धिकं चैतन्यं प्रत्येकादृष्टेः"

अमैथुनी सृष्टि हुई वे शरीर हैं, **सांकल्पिकसांसिद्धिकभेदद्वयेनापि शरीरं भवतीत्यर्थः** चार प्रकार के शरीर तो होते ही हैं दो और शरीर होते हैं एक सांकल्पिक दूसरा सांसिद्धिक, इस तरह छः प्रकार के शरीर हुए। सांसिद्धिकं स्वतः सिद्धं नैसर्गिकम् सांसिद्धिक वे हैं जो नैसर्गिक हैं स्वाभाविक है, [**यथा "न सांसिद्धिकं चैतन्यं प्रत्येकादृष्टेः"**] शरीर में जो चेतना है वह स्वाभाविक नहीं है, एक एक भूत को जांच लिया चेतना भूतों में नहीं है [**(सांख्य० ३.२०) परन्तु (इति नियमः-न) इति षाड्विध्यस्य नियमो नास्ति**] परंतु ये छः प्रकार के शरीर सदा रहेंगे ऐसा नियम नहीं है [**सर्वदा सर्वत्र षड्विधानि शरीराणि भवेयुः**] सदा सर्वदा सभी जगह छः-छः प्रकार के शरीर मिलेंगे ऐसा नहीं है, [**सांकल्पिकसांसिद्धिके तु खल्वारम्भसृष्टावेव भवतः**] दो प्रकार के शरीर सांकल्पिक और सांसिद्धिक तो सृष्टि के आरम्भ में ही होते हैं। [**चातुर्विध्यस्यैव प्रवर्तनं तथैव प्रतिपादनमन्यत्र शास्त्रे न विरुध्यते**] चार पाकर के शरीर सृष्टि में चलते ही रहते हैं उनकी परंपरा चलती रहती है, ऐसा प्रतिपादन यहाँ भी है और अन्य शास्त्रों में भी है इसका विरोध नहीं है ।।१११।।

तत्र -

सर्वेषु पृथिव्युपादानमसाधारण्यात् तद्व्यपदेशः पूर्ववत् ।।११२।।

सूत्रार्थ= सभी छः प्रकार के शरीरों में पृथ्वी मुख्य उपादान है विशेष होने से। ये शेष चार भूत इसमें सहयोगी हैं इसलिए पंचभौतिक कहा।सभी छः प्रकार के शरीरों में पृथ्वी मुख्य उपादान है विशेष होने से। ये शेष चार भूत इसमें सहयोगी हैं इसलिए पंचभौतिक कहा।

[**(सर्वेषु पृथिवी-उपादानम्) सर्वेषु षड्विधशरीरेषु पृथिवी खलूपादानं भवति**] सभी छः प्रकार के शरीरों में पृथ्वी उपादान कारण है [**(असाधारण्यात्) वैशेष्याद् विशिष्टत्वात् पृथिव्याः**] इन सभी पांचों तत्वों में पृथ्वी विशेष है उसकी विशिष्टता होने से, [**अत एव षड्विधमपि शरीरं पार्थिवम्**] अतएव ये छः प्रकार के शरीर पार्थिव हैं। [**अथ साधारण्यात् (तद्व्यपदेशः पूर्ववत्) पाञ्चभौतिकव्यपदेशः "पाञ्चभौतिको देहः"**] शेष जो चार तत्व है वह साधारण सहयोगी हैं, इसलिए उनको साथ जोड़ करके ये कथन किया कि शरीर पंचभौतिक है [**(सांख्य० ३.१७) पूर्ववद् भवति "निमित्तव्यपदेशाद् तद्व्यपदेशः"**

(सांख्य०३.२०) परन्तु (इति नियमः-न) इति षाड्विध्यस्य नियमो नास्ति सर्वदा सर्वत्र षड्विधानि शरीराणि भवेयुः, साल्पिकसांसिद्धिके तु खल्वारम्भसृष्टावेव भवतः। चातुर्विध्यस्यैव प्रवर्तनं तथैव प्रतिपादनमन्यत्र शास्त्रे न विरुध्यते ।।१११।।

तत्र -

सर्वेषु पृथिव्युपादानमसाधारण्यात् तदव्यपदेशः पूर्ववत् ।।११२।।

(सर्वेषु पृथिवी-उपादानम्) सर्वेषु षड्विधशरीरेषु पृथिवी खलूपादानं भवति (असाधारण्यात्) वैशेष्याद् विशिष्टत्वात् पृथिव्याः, अत एव षड्विधमपि शरीरं पार्थिवम्। अथ साधारण्यात् (तद्व्यपदेशः पूर्ववत्) पाञ्चभौतिकव्यपदेशः ''पाञ्चभौतिको देहः'' (सांख्य०३.१७) पूर्ववद् भवति ''निमित्तव्यपदेशाद् तद्व्यपदेशः'' (११०) इति पूर्वोक्तसूत्रप्रकारात् पञ्चभूतनिमित्तत्वात् पञ्चभूतानि शरीरस्य निमित्तानि तु सन्त्युपष्टम्भकत्वात्तेषां तस्मादेव पाञ्चभौतिको देह उच्यते तत्रोपादानत्वं तु पृथिव्या

---

(११०) इति पूर्वोक्तसूत्रप्रकारात् पञ्चभूतनिमित्तत्वात्] ये पूर्ववत कथन है **[पञ्चभूतानि शरीरस्य निमित्तानि तु सन्त्युपष्टम्भकत्वात्तेषां]** उन पाँच भूतों के सहयोगी होने से इस कारण से शरीर को पाँच भौतिक कहा है **तस्मादेव पाञ्चभौतिको देह उच्यते तत्रोपादानत्वं तु पृथिव्या एव** इसी कारण से शरीर को पंचभौतिक कहा है क्योंकि पाँच भूतों का सहयोग है इन में पृथ्वी उपादान है ।।११२।।

इंद्रियों की उत्पत्ति अहंकार से बताई शरीर पार्थिव है पृथ्वी उसका उपादान कारण है और शरीर को जो पाँच भौतिक कहा वह भी सहयोगी होने के कारण से । उन पाँच भूतों का सद्भाव सत्ता होने से फिर इनमें प्राण का क्या स्वरूप है? उसके विषय में कहेंगे-

न देहारम्भकस्य प्राणत्वमिन्द्रियशक्तिः तस्तत्सिद्धेः ।।११३।।

सूत्रार्थ= देह का जो आरंभक है=वायु वो प्राण नहीं है। क्योंकि प्राण का स्वरूप इंद्रिय शक्ति से सिद्ध होता है अर्थात् जो इंद्रियों को शक्ति देने वाला तत्व है वह प्राण है।

[(देहारम्भकस्य प्राणत्वं न) देहारम्भकस्योपादानत्वेन पृथिवीरूपभूतस्य निमित्तत्वेन भूतपञ्चकस्य तन्मध्यादेकस्य वायोर्वा प्राणत्वं प्राणरूपे परिणम्यमानत्वं नास्ति] देह के आरंभ का उपादान पृथ्वी तत्व है उस पृथ्वी रूप भूत का और निमित रूप में चार भूत और जोड़ लेंगे तो पाँच भूतों का जो समुदाय है उस समुदाय के बीच में से एक वायु का प्राण स्वरूप नहीं है। **[वायुना प्राणः सन्दिह्यते तथा कृत्वैव वेदान्तदर्शनेऽपि प्राणस्य वायुविकारत्वं निषिध्यते]** वायु शब्द से प्राण का संदेह होता है यही सोच करके लोगों को संशय न हो इसलिए वेदांतदर्शन में कहा कि प्राण को वायु का विकार मत समझना **[''श्रेष्ठः प्राणः न वायुक्रिये पृथगुपदेशात्''(वेदान्त० २.४.८-९)]** प्राण को वायु कि क्रिया न समझें प्राण का उपदेश अलग है **[किन्तु (इन्द्रियशक्तितःतत्सिद्धेः) इन्द्रियाणां शक्तितः प्राणसिद्धिरर्थादिन्द्रियाणां शक्तिः शक्तिरूपः शक्तिप्रदः प्राणः]** किन्तु सत्य यह है कि इंद्रियों की शक्ति से प्राण की सिद्धि होती है अर्थात् प्राण वह है जो इंद्रियों को कार्य करने कि शक्ति प्रदान करता है। **[उच्यते यथा'' प्राणः...या ते तनुर्वाचि प्रतिष्ठिता या श्रोत्रे या चक्षुषि या च मनसि सन्तता शिवां तां कुरु मोत्क्रमीः'' (प्रश्नो०**

एव ।।११२।।

इन्द्रियाणामुत्पत्तिरहंकारादुक्ता शरीरं च पार्थिवं तस्य पृथिव्युपादानकत्वात् तथा पाञ्चभौतिकं शरीरं निमित्तव्यपदेशात् तत्र पञ्चभूतनिमित्तसद्भावात् पुनः प्राणः किंस्वरूपः किम्प्रकृतिकश्चेत्यत्रोच्यते –

न देहारम्भकस्य प्राणत्वमिन्द्रियशक्तितस्तत्सिद्धेः ।।११३।।

(देहारम्भकस्य प्राणत्वं न) देहारम्भकस्योपादानत्वेन पृथिवीरूपभूतस्य निमित्तत्वेन भूतपञ्चकस्य तन्मध्यादेकस्य वायोर्वा प्राणत्वं प्राणरूपे परिणम्यमानत्वं नास्ति। वायुना प्राणः सन्दिह्यते तथा कृत्वैव वेदान्तदर्शनेऽपि प्राणस्य वायुविकारत्वं निषिध्यते ''श्रेष्ठः प्राणः न वायुक्रिये पृथगुपदेशात्'' (वेदान्त० २.४.८-९) किन्तु (इन्द्रियशक्तितःतत्सिद्धेः इन्द्रियाणां शक्तितः प्राणसिद्धिरर्थादिन्द्रियाणां शक्तिः

२.१२) **अत एवेन्द्रियाणि प्राणा उच्यन्ते ''अथ ह प्राणा अहंश्रेयसि व्यूदिरे...सा ह वागुच्चक्राम... चक्षुर्होच्चक्राम...श्रोत्रं होच्चक्राम'' (छान्दो० ५.१.६-७) इन्द्रियाणि हि न भौतिकानि तान्याहंकारिकाणि तस्मात् प्राणो न भौतिकोऽपित्वभौतिकः सः, उच्यते हि भूतेभ्यः पूर्वं तस्योत्पत्तिः ''एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च । खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवी'' (मुण्डको० २.१.३)** (यहाँ तक का अर्थ प्रसंग विरोध होने से छोड़ दिया)] [**स एष इन्द्रियशक्तिप्रदः प्राणोऽभौतिको जीवात्मनो जीवनधर्मः**] ये जो इंद्रियों को शक्ति देने वाला प्राण है वह अभौतिक है यह जीवात्मा की वह शक्ति है जिससे जीवन धारण होता है। [**उक्तं हि ''आत्मन एष प्राणो जायते''(प्रश्नो० ३.३)**] प्रश्नोपनिषद् में कहा कि – आत्मा से ही प्राण उत्पन्न होता है अर्थात आत्मा की ही एक शक्ति है [**यदा हि जीवात्मा शरीरे प्रविशति तदैव प्राणोऽपि प्रादुर्भवति**] जब जीवात्मा शरीर में प्रवेश करता है तभी प्राणों का प्रादुर्भाव होता है, [**उत्क्रान्ते जीवात्मनि प्राणोऽप्युत्क्रामति**] जब जीवात्मा शरीर छोड़ के चला जाता है तब प्राण भी शरीर छोड़ जाता है [**''तमुत्क्रामन्तं प्राणोऽनूत्क्रामति प्राणमुत्क्रामन्तं सर्वे प्राणा इन्द्रियाणि अनूत्क्रामन्ति'' (बृह० ४.४.२)**] जब आत्मा शरीर से निकलता है तब प्राण भी आत्मा के पीछे-पीछे निकल आता है और प्राणों के शरीर से निकालने पर सारे प्राण इंद्रियाँ भी प्राण के पीछे-पीछे निकल आते हैं। [**अनिरूद्धवृत्तौ विज्ञानभिक्षुभाष्ये च सूत्रविरुद्धं व्याख्यानं कृतम्**] अनिरुद्ध वृत्ति में और विज्ञानभिक्षु भाष्य में इस सूत्र की उल्टी विरुद्ध व्याख्या की है। [**सूत्रे तु देहारम्भकस्य प्राणत्वनिषेधः**] सूत्र में तो देह का आरंभ करने वाले वायु का प्राण रूप में निषेध किया था [**किन्तु तत्र प्राणस्य देहारम्भकत्वनिषेधः कल्पितः**] किन्तु वहाँ प्राण को देह के आरंभकत्व का निषेध किया जो ठीक नहीं [**''देहे प्राणदर्शनात् तस्य देहारम्भकत्वशंकामपनयति''**] देह में प्राण देखे जाने से उसका देहारंभकत्व होने की शंका को सूत्रकार ने दूर किया [**(अनिरुद्धः) ''प्राणस्य देहारम्भकत्वनिरसनम्'' (विज्ञानभिक्षुः)**] प्राण वायु नहीं है।।११३।।

[**प्राणस्याभौतिकत्वे जीवात्मधर्मत्वे सति भवति जीवात्मना सहैव तस्यापि शरीरे प्रवेशः**] प्राण के अभौतिक होने पर जीवात्मा का धर्म मानने पर जब जीवात्मा शरीर में प्रवेश करेगा, तब साथ में प्राण भी

शक्तिरूपः शक्तिप्रदः प्राणः । उच्यते यथा'' प्राणः...या ते तनुर्वाचि प्रतिष्ठिता या श्रोत्रे या चक्षुषि या च मनसि सन्तता शिवां तां कुरु मोत्क्रमीः'' (प्रश्नो० २.१२) अत एवेन्द्रियाणि प्राणा उच्यन्ते ''अथ ह प्राणा अहंश्रेयसि व्यूदिरे...सा ह वागुच्चक्राम... चक्षुर्होच्चक्राम...श्रोत्रं होच्चक्राम'' (छान्दो० ५.१.६-७) इन्द्रियाणि हि न भौतिकानि तान्याहशरिकाणि तस्मात् प्राणो न भौतिकोऽपित्वभौतिकः सः, उच्यते हि भूतेभ्यः पूर्वं तस्योत्पत्तिः ''एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च । खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवी'' (मुण्डको० २.१.३) स एष इन्द्रियशक्तिप्रदः प्राणोऽभौतिको जीवात्मनो जीवनधर्मः । उक्तं हि''आत्मन एष प्राणो जायते'' (प्रश्नो०३.३) यदा हि जीवात्मा शरीरे प्रविशति तदैव प्राणोऽपि प्रादुर्भवति, उत्क्रान्ते जीवात्मनि प्राणोऽप्युत्क्रामति''तमुत्क्रामन्तं प्राणोऽनूत्क्रामति प्राणमुत्क्रामन्तं सर्वे प्राणा इन्द्रियाणि अनूत्क्रामन्ति'' (बृह० ४.४.२) । अनिरूद्धवृत्तौ विज्ञानभिक्षुभाष्ये च सूत्रविरुद्धं व्याख्यानं कृतम् । सूत्रे तु देहारम्भकस्य प्राणत्वनिषेधः किन्तु तत्र प्राणस्य देहारम्भकत्वनिषेधः कल्पितः ''देहे प्राणदर्शनात्

प्रवेश करेगा, [**प्राणो हि भोक्तुर्जीवात्मनोऽधिष्ठानमाश्रयो वा**] प्राण ही जीवात्मा का भोक्ता अधिष्ठान है आश्रय है [**यथा वेदान्तदर्शने निर्दिष्टम् ''प्राणवता शब्दात्''**] जैसा कि वेदान्त दर्शन में निर्दिष्ट किया है- प्राण वाले जीवात्मा के साथ (ये शब्द प्रमाण है कि भोग जीवात्मा करता है) [**(वेदान्त० २.४.१५) तदा तस्य प्राणस्य शरीरे विशिष्टं कार्यं प्रदर्श्यते** -] तब प्राण का शरीर में क्या विशेष कार्य है ये बताया जा रहा है-

भोक्तुरधिष्ठानाद् भोगायतननिर्माणमन्यथा पूतिभावप्रसक्तिः (प्रसक्तेः?) ।।११४।।

सूत्रार्थ=भोक्ता=जीवात्मा का अधिष्ठान वो प्राण, जीवात्मा के साथ प्राण शक्ति आएगी उसकी सहायता से शरीर का निर्माण होगा अन्यथा पूतिभाव= रज वीर्य सड़ जाएगा और शरीर का निर्माण नहीं होगा।

[**(भोक्तुः-अधिष्ठानात्) भोक्तुर्जीवात्मनोऽधिष्ठानादाश्रयभूतात् प्राणात् प्राणसञ्चाराज्जीवनसञ्चारात् (भोगायतननिर्माणम्) भोगायतनस्य शरीरस्य निर्माणं भवति, शरीरं हि भोगायतनम्**] भोक्ता जीवात्मा का अधिष्ठान आश्रय भूत होने से प्राण, प्राणों का संचार होने से अर्थात जीवन संचार होने से भोगायतन शरीर का निर्माण होता है शरीर ही भोग का आधार है जिसमें बैठकर जीवात्मा सुख-दुःख भोगता है [**(अन्यथा पूतिभावप्रसक्तिः) अन्यथा शुक्रशोणितयोस्तन्निष्पन्नशरीरपिण्डस्य च पूतित्वं गलितत्वं प्रसज्यते शववद्दूषितं भवेत् तन्निर्माणं न स्यादित्यर्थः**] यदि प्रारम्भ से ही आत्मा का शरीर में प्रवेश न माने तो (गर्भ रहने के दो महीने बाद माने तो) शुक्रशोणित हो जाएगा, शरीर निष्क्रिय हो जाएगा जो भ्रूंण है पिंड है वह नष्ट हो जाएगा गल जाएगा शवदूषित हो जाएगा फिर शरीर का निर्माण नहीं हो सकेगा।।११४।।

प्रश्न है- प्राण तो शरीर में जीवात्मा के साथ ही प्रवेश करता है, फिर प्राण उसका अधिष्ठान कैसे मान लिया गया? और वह जीवात्मा अपने चेतन स्वरूप से शरीर में जीवन का संचार कर ही देगा। फिर प्राण को अधिष्ठान मानने कि क्या आवश्यकता है?

अत्रोच्यते - इसका उत्तर देते हैं-

तस्य देहारम्भकत्वशंकामपनयति" (अनिरुद्धः) "प्राणस्य देहारम्भकत्वनिरसनम्" (विज्ञानभिक्षुः) ।।११३।।

प्राणस्याभौतिकत्वे जीवात्मधर्मत्वे सति भवति जीवात्मना सहैव तस्यापि शरीरे प्रवेशः, प्राणो हि भोक्तुर्जीवात्मनोऽधिष्ठानमाश्रयो वा यथा वेदान्तदर्शने निर्दिष्टम् "प्राणवता शब्दात्" (वेदान्त० २.४.१५) तदा तस्य प्राणस्य शरीरे विशिष्टं कार्यं प्रदर्श्यते -

भोक्तुरधिष्ठानाद् भोगायतननिर्माणमन्यथा पूतिभावप्रसक्तिः (प्रसक्तेः ?) ।।११४।।

(भोक्तुः-अधिष्ठानात्) भोक्तुर्जीवात्मनोऽधिष्ठानादाश्रयभूतात् प्राणात् प्राणसञ्चाराज्जीवनसञ्चारात् (भोगायतननिर्माणम्) भोगायतनस्य शरीरस्य निर्माणं भवति, शरीरं हि भोगायतनम् (अन्यथा पूतिभावप्रसक्तिः) अन्यथा शुक्रशोणितयोस्तन्निष्पन्नशरीरपिण्डस्य च पूतित्वं गलितत्वं प्रसज्यते शववद्दूषितं भवेत् तन्निर्माणं न स्यादित्यर्थः ।।११४।।

भृत्यद्वारा स्वाम्याधिष्ठितिर्नैकान्तात् ।।११५।।

सूत्रार्थ=सेवक के द्वारा ही स्वामी का अधिष्ठान अधिकार बनता है तभी वह स्वामी कहलाता है । इसलिए अकेला स्वामी जीवात्मा नहीं है।

[(स्वाम्यधिष्ठितिः-भृत्यद्वारा-एकान्तात्-न) जीवात्मा स्वामी प्राणस्तदधीनो भृत्यः] जीवात्मा स्वामी है प्राण उसके अधीन है भृत्य के समान, **[यथा हीन्द्रियाणि जीवात्मनो भृत्यरूपाणि तानि स्वस्वैकैकविषयप्रदर्शनकार्यं परिपालयन्ति तथैव प्राणस्तस्य भृत्यरूपः शरीरे जीवनसञ्चारकार्यं सम्पादयति]** जैसे इंद्रिय जीवात्मा के सेवक हैं वे अपने-अपने एक एक विषय का प्रदर्शन करने के कार्य का पालन करती हैं वैसे ही प्राण भी उसका भृत्य रूप है वह शरीर में जीवन संचार के कार्य को संपादित करेगा **[यतः स्वामिनोऽधिष्ठातृत्वं भृत्यद्वारा हि भवति]** क्योंकि जो स्वामी कहलाता है उसका कोई न कोई सेवक तो होना ही चाहिए तो प्राण आदि जीवात्मा के सेवक हैं **[न साक्षात् तस्माज्जीवनसञ्चारः प्राणस्यैव कार्यं न जीवात्मनः, तस्मान्न दोषः]** इसलिए शरीर में जीवन संचार करना ये प्राण का ही कार्य है सीधे जीवात्मा का नहीं। इसलिए इसमें कोई दोष नहीं है।।११५।।

परंतु जब जीवात्मा बाह्य भोग त्याग देता है तब वह किस अवस्था में चला जाता है? क्या उसका स्वरूप होता है? इस आकांक्षा पर कहते हैं-

समाधिसुषुप्तिमोक्षेषु ब्रह्मरूपता ।।११६।।

सूत्रार्थ= तीन अवस्थाओं में जीवात्मा ब्रह्म के तुल्य होता है, समाधि-सुषुप्ति और मोक्ष में।

[(समाधिसुषुप्तिमोक्षेषु) जीवात्मा भोक्तृभावाद्वियुक्तः समाधौ सुषुप्तौ मोक्षे चावतिष्ठते] जब जीवात्मा बाह्य स्थूल भोग से विमुक्त हो जाता है तब वह समाधि में सुषुप्ति में या मोक्ष में रहता है **[तदा स**

ननु प्राणस्तु शरीरे प्रविशति जीवात्मना साकमेव पुनः प्राणः कथं तस्याधिष्ठानं कल्प्यते स एव जीवात्मा स्वचैतन्यस्वरूपेण शरीरे जीवनसञ्चारं कुर्यात् ।

अत्रोच्यते -

भृत्यद्वारा स्वाम्याधिष्ठितिर्नैकान्तात् ।।११५।।

(स्वाम्यधिष्ठितिः-भृत्यद्वारा-एकान्तात्-न) जीवात्मा स्वामी प्राणस्तदधीनो भृत्यः, यथा हीन्द्रियाणि जीवात्मनो भृत्यरूपाणि तानि स्वस्वैकैकविषयप्रदर्शनकार्यं परिपालयन्ति तथैव प्राणस्तस्य भृत्यरूपः शरीरे जीवनसञ्चारकार्यं सम्पादयति यतः स्वामिनोऽधिष्ठातृत्वं भृत्यद्वारा हि भवति न साक्षात् तस्माज्जीवनसञ्चारः प्राणस्यैव कार्यं न जीवात्मनः, तस्मान्न दोषः ।।११५।।

समाहितः सुषुप्तो मुक्तो वा भवति] तब वह समाहित होकर एकाग्रचित होकर सुषुप्ति या मोक्ष में चला जाता है, **[तदा तस्य (ब्रह्मरूपता) ब्रह्मगुणसमापन्नता भवति]** तब जीवात्मा के ब्रह्म गुण की समानता होती है, **सांसारिकसुखदुःखे न तदा भवतः** उस समय जीवात्मा को सांसरिक सुख-दुःख नहीं होते (यहाँ यह पंक्ति मोक्ष की दृष्टि में ही ठीक है सुषुप्ति समाधि में नहीं)। **[अत्र विज्ञानभिक्षुभाष्ये ब्रह्मरूपताविषये लिखितं यत् ''अस्मच्छास्त्रे ब्रह्मशब्द औपाधिकपरिच्छेदमालिन्यादिरहितपरिपूर्णचेतनसामान्यवाचीति विवेक्तव्यम्'']** यहाँ इस सूत्र के विज्ञान भिक्षु भाष्य में ब्रह्म रूपता के विषय में लिखा है-हमारे शास्त्र में जो ब्रह्म शब्द है उस उपाधि की मलिनता से रहित हुआ, अंतःकरण आदि के संयोग से जो दोष आ जाते हैं उनसे जब व्यक्ति छुट जाता है, तब वह अपने शुद्ध स्वरूप में आ जाता है, यह ब्रह्म शब्द का विवेचन है **[(विज्ञानभिक्षुः) भवत्विदं विज्ञानभिक्षुमतं न तु सांख्यसूत्रकारमतम्]** विज्ञानभिक्षु ने जो ऐसी बात कही है यह उसका अपना मत हो सकता है, सांख्यसूत्रकार ने तो ऐसा कहा नहीं, **[न हि सांख्यसूत्रमेंतादृशमुपलभ्यते यस्मिन् ब्रह्मलक्षणं सूचितं भवेत्]** सांख्य सूत्र कोई भी ऐसा उपलब्ध नहीं होता जिसमें इस तरह का ब्रह्म का लक्षण बताया गया हो, **[यदि ह्यनेन सूत्रेण लक्ष्यमिदं स्यात्]** यदि इस सूत्र से ये कहना चाहते होते **[तर्हि ''समाधिसुषुप्तिमोक्षेषु स्वरूपता'' इति सूत्रेण भाव्यम्]** तो ऐसा कहते कि -समाधि सुषुप्ति और मोक्ष में ब्रह्म की स्वरूपता होती है, **['ब्रह्मरूपता' इत्यस्य स्थाने 'स्वरूपता' पदं स्यात्]** ब्रह्मरूपता इस शब्द के स्थान पर स्वरूपता शब्द होना चाहिए था। **[परन्तु पश्यति त्वाचार्यो न तदानीं ब्रह्मता स्वरूपता भवतीति कृत्वा 'ब्रह्मरूपता' इति पदेन वर्णयति]** परंतु सूत्रकार आचार्य कपिल मुनि इस बात को भली प्रकार समझते हैं कि उन तीन अवस्थों में जीवात्मा स्वरूप नहीं हो जाता । इसलिए उन्होने ब्रह्मरूपता इस पद का वर्णन किया है। **[अनिरुद्धवृत्त्याऽपि विज्ञानभिक्षुमतं न पुष्यते किन्तु खण्ड्यते ''ब्रह्मणा सह तुल्यरूपता'']** अनिरुद्ध के द्वारा भी विज्ञानभिक्षु का मत पुष्ट नहीं होता बल्कि खण्डन करता है ''उस समय जीवात्मा कि ब्रह्म के समान तुल्य रूपता हो जाती है'' **[(अनिरुद्धः) लोकेऽपि प्रत्यक्षमुपलभ्यते यत् सुषुप्तौ पुरुषस्य चैतन्यं न प्रतिभासते तदानीं तु स स्वचैतन्यानिभिज्ञः सन् ब्रह्मणि निमग्नो ब्रह्मतुल्यो निष्प्रपञ्चो भवति]** लौकिक प्रत्यक्ष में भी जब पुरुष सोता है तब वह बाह्य व्यवहारों से पृथक् हो जाता है (बाहर क्या हो रहा है? इससे अनभिज्ञ रहता है) वह ईश्वर में निमग्न रहता है या प्रगाड़ निद्रा में सोया हुआ है वह प्रपंच रहित हो जाता है। **[अथ स्वस्मिन् शास्त्रे यद्विषये**

परन्तु यदा जीवात्मा भोक्तृत्वं त्यजति तदा स कस्यामवस्थायां किं रूपोऽवतिष्ठत इत्याकांक्षायामुच्यते –

समाधिसुषुप्तिमोक्षेषु ब्रह्मरूपता ।।११६।।

(समाधिसुषुप्तिमोक्षेषु) जीवात्मा भोक्तृभावाद्वियुक्तः समाधौ सुषुप्तौ मोक्षे चावतिष्ठते तदा स समाहितः सुषुप्तो मुक्तो वा भवति, तदा तस्य (ब्रह्मरूपता) ब्रह्मगुणसमापन्नता भवति, सांसारिकसुखदुःखे न तदा भवतः। अत्र विज्ञानभिक्षुभाष्ये ब्रह्मरूपताविषये लिखितं यत् "अस्मच्छास्त्रे ब्रह्मशब्द औपाधिकपरिच्छेदमालिन्यादिरहितपरिपूर्णचेतनसामान्यवाची न तु ब्रह्ममीमांसायामिवैश्वर्योपलक्षितपुरूषमात्रवाचीति विवेक्तव्यम्" (विज्ञानभिक्षुः) भवत्विदं विज्ञानभिक्षुमतं न तु सांख्यसूत्रकारमतम्, न हि सांख्यसूत्रमेतादृशमुपलभ्यते यस्मिन् ब्रह्मलक्षणं सूचितं भवेत्, यदि ह्यनेन सूत्रेण लक्ष्यमिदं स्यात् तर्हि "समाधिसुषुप्तिमोक्षेषु स्वरूपता" इति सूत्रेण भाव्यम्, 'ब्रह्मरूपता' इत्यस्य स्थाने 'स्वरूपता' पदं स्यात्। परन्तु पश्यति त्वाचार्यो न तदानीं ब्रह्मता स्वरूपता भवतीति कृत्वा 'ब्रह्मरूपता' इति पदेन वर्णयति। अनिरुद्धवृत्त्याऽपि विज्ञानभिक्षुमतं न पुष्यते किन्तु खण्ड्यते

परिभाषा लक्षणं वा न क्रियते तत्र शास्त्रान्तरे कृता परिभाषा लक्षणं वाऽभिप्रेयते] यदि अपने शास्त्र में किसी वस्तु के विषय में परिभाषा लक्षण नहीं किया तो उससे जो मिलता जुलता शास्त्र है उसमें जो लक्षण किया गया है वह स्वीकार्य होता है, ऐसी शास्त्रों की पद्धति है (यदि सांख्य में सीधा-सीधा ईश्वर के विषय में नहीं कहा तो सांख्य का योग समान शास्त्र है उसमें ईश्वर का कथन पर्याप्त किया है)। **अतोऽयुक्तं विज्ञानभिक्षुमतम्** अतः विज्ञानभिक्षु का मत ठीक नहीं है।।११६।।

ब्रह्म रूपता तो तीनों अवस्थों में है, इन तीनों अवस्थों में परस्पर क्या भेद है ये प्रदर्शित करते हैं-

द्वयोः सबीजत्वमन्यस्य तद्धतिः ।।११७।।

सूत्रार्थ= दो अवस्थाओं में भोग का संस्कार बचा रहता है, जबकि तीसरी में उसका विनाश हो जाता है।

[(द्वयोः सबीजत्वम्) द्वयोः प्राथमिकयोः समाधिसुषुप्त्योर्भोक्तृभावस्य स बीजत्वमस्ति सशरीरत्वात् तयोरवस्थयोः] प्राथमिक दो अवस्थाओं में समाधि और सुषुप्ति में भोक्तृभाव (भोक्तपन) का उसमें कारण (संस्कार) विद्यमान है, क्योंकि ये दोनों अवस्थाए शरीर सहित है, **[पुनर्व्युत्थाने जागरणे च भोगमनुवर्तते हि जीवात्मा, तस्य तदा सशरीरत्वात्]** फिर जब समाधि छोड़कर व्युत्थान अवस्था में और सुषुप्ति छोड़कर जागृत अवस्था में आएगा इन दो स्थितियों में वह भोग का अनुवर्तन करता ही है, क्योंकि तब वह सशरीर है, **[परन्तु (अन्यस्य तद्धतिः) समाधिसुषुप्तिभ्यामन्यस्य मोक्षस्य भोक्तृत्वबीजभावनाशो भवति]** परंतु समाधि और सुषुप्ति से जो तीसरी अवस्था है मोक्ष की, उसमें भोगने का जो संस्कार है उसका नाश हो जाता है **[तत्र जीवात्मनोऽशरीरत्वादेष तत्र भेदः]** ।।११७।।

समाधि और सुषुप्ति तो साक्षात दिखती है वह शरीर रूप में बैठा है परंतु मोक्ष तो दिखता नहीं है, फिर

"ब्रह्मणा सह तुल्यरूपता" (अनिरुद्धः) लोकेऽपि प्रत्यक्षमुपलभ्यते यत् सुषुप्तौ पुरुषस्य चैतन्यं न प्रतिभासते तदानीं तु स स्वचैतन्यानिभिज्ञः सन् ब्रह्मणि निमग्नो ब्रह्मतुल्यो निष्प्रपञ्चो भवति। अथ स्वस्मिन् शास्त्रे यद्विषये परिभाषा लक्षणं वा न क्रियते तत्र शास्त्रान्तरे कृता परिभाषा लक्षणं वाऽभिप्रेयते। अतोऽयुक्तं विज्ञानभिक्षुमतम् ।।११६।।

तत्र ब्रह्मरूपतायास्तिसृषु खल्ववस्थासु भेदः प्रदर्श्यते -

द्वयोः सबीजत्वमन्यस्य तद्धतिः ।।११७।।

(द्वयोः सबीजत्वम्) द्वयोः प्राथमिकयोः समाधिसुषुप्त्योर्भोक्तृभावस्य बीजत्वमस्ति सशरीरत्वात् तयोरवस्थयोः, पुनर्व्युत्थाने जागरणे च भोगमनुवर्तते हि जीवात्मा, तस्य तदा सशरीरत्वात्, परन्तु (अन्यस्य तद्धतिः) समाधिसुषुप्तिभ्यामन्यस्य मोक्षस्य भोक्तृत्वबीजभावनाशो भवति तत्र जीवात्मनोऽशरीरत्वादेष तत्र भेदः ।।११७।।

मोक्ष को क्यूँ माने?

द्वयोरिव त्रयस्यापि दृष्टत्वान्न तु द्वौ ।।११८।।

सूत्रार्थ= दो जैसी अवस्थाओं (समाधि और सुषुप्ति) में इनके जैसे तीसरी अवस्था (मोक्ष) भी शास्त्रों में देखे जाने, से केवल दो से कल्याण नहीं होगा।

[(द्वयोः-इव त्रयस्य-अपि दृष्टत्वात्) समाधिसुषुप्त्योरिव तृतीयस्य मोक्षस्यापि भवतु कृतकृत्यता] समाधि और सुषुप्ति के समान जो तीसरी अवस्था है, मोक्ष उसी में कृतकृत्यता होती है। **['त्रयस्येत्यार्षप्रयोगः'** "त्रयस्य शब्द को अशुद्ध समझें अपितु आर्ष प्रयोग है" **[दृष्टत्वाच्छास्त्रदृष्टत्वात् खलु** सूत्र में दृष्टत्वाद शब्द भी है इसका अधिकतर अर्थ किया जाता है "प्रत्यक्ष देखे जाने से" परंतु मोक्ष तो प्रत्यक्ष दिखता नहीं इसलिए अर्थ बदलेगा- "शास्त्र में देखे जाने से" शास्त्र में लिखा है कि मोक्ष होता है **[(न तु द्वौ) न तु द्वे एव तृतीयो मोक्षोऽपि भवति]** मोक्ष की चर्चा शास्त्र में देखे जाने से दो ही अवस्था न समझें तीसरी अवस्था मोक्ष को भी समझें **[तथा च मोक्षवद् दुःखातीते न ते द्वे समाधिसुषुप्ती समे वा कृतकृत्यतायाम्]** तथा मोक्ष के समान दुख पूरी तरह से हट जाना इन दो अवस्थाओं समाधि सुषुप्ति में नहीं होती, इनमें दुःख से छूटने की कृतकृत्यता नहीं होगी, **[तस्मान्न ताभ्यां कृतकृत्यता तथा शास्त्रं च]** इसीलिए इन दो से पूरी सफलता नहीं मानी जाएगी, जब तक मोक्ष न मिल जाए और ऐसा ही शास्त्र भी कहता है **["तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय"(यजु० ३१.१८)]** परमात्मा को जानकार ही जीवात्मा मृत्यु को पार कर सकता है, और कोई रास्ता नहीं है मोक्ष प्राप्ति के लिए **["यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम् । तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति"(मुण्डको० ३.३.३)]** जब देखने वाला (जीवात्मा) देखता है चमकीले वर्ण वाले को जो जगत का बनाने वाला है स्वामी है सर्वत्र व्यापक है जो वेद का ज्ञान देने वाला है। तब वह विद्वान व्यक्ति पुण्य पाप दोनों को छोड़कर सब दोषो से रहित होकर परम समता को प्राप्त हो जाता है। **["भूतेषु भूतेषु विचिन्त्य**

समाधिसुषुप्ती तु प्रत्यक्षं दृश्यते तयोः शरीरे वर्तमानत्वात् परन्तु मोक्षस्तु न दृश्यते तयोरेव भवतु कृतकृत्यता । अत्रोच्यते -

द्वयोरिव त्रयस्यापि दृष्टत्वान्न तु द्वौ ।।११८।।

(द्वयोः-इव त्रयस्य-अपि दृष्टत्वात्) समाधिसुषुप्त्योरिव तृतीयस्य मोक्षस्यापि भवतु कृतकृत्यता ।'त्रयस्येत्यार्षप्रयोगः' दृष्टत्वाच्छास्त्रदृष्टत्वात् खलु (न तु द्वौ) न तु द्वे एव तृतीयो मोक्षोऽपि भवति तथा च मोक्षवद् दुःखातीते न ते द्वे समाधिसुषुप्ती समे वा कृतकृत्यतायाम्, तस्मान्न ताभ्यां कृतकृत्यता तथा शास्त्रं च ''तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय'' (यजु०३१.१८) ''यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम् ।तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति'' (मुण्डको०३.३.३) ''भूतेषु भूतेषु विचिन्त्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति'' (केनो० २.१३) ''तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्ये'' (छान्दो० ६.१४.२) ।।११८।।

धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति''(केनो० २.१३)] ज्ञानी जन प्रत्येक वस्तु में ईश्वर का चिंतन करके इस संसार को छोाकर के मोक्ष को प्राप्त करते हैं **[''तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्ये''(छान्दो० ६.१४.२)]** उसका मोक्ष होने में केवल उतनी ही देर है जितनी कि शरीर छोड़ने में।।११८।।

[सुषुप्तिसमाधिमोक्षेषु मोक्षस्योत्कृष्टतमत्वमुक्तं तस्य च ताभ्यां भेदोऽपि दर्शितः] समाधि सुषुप्ति और मोक्ष में से मोक्ष सबसे उत्तम है, ऐसा बताया गया है और उसका (मोक्ष) भेद भी दिखलाया, **[अधुना सुषुप्तिसमाध्योः समाधेरुत्कृष्टतरत्वमुच्यते]** अब समाधि और सुषुप्ति की तुलना करते हैं जिसमें समाधि उत्कृष्ट है **[सुषुप्तितः समाधिवैशिष्ट्यं प्रदर्श्यते]** सुषुप्ति की अपेक्षा समाधि की विशेषता प्रदर्शित करते हैं **[यदभ्यासवैराग्याभ्यां लब्धसमाधिर्भवति जीवन्मुक्तो जीवन् सन् मुक्तो न तु नितान्तमुक्तस्तस्य सशरीरत्वात्]** जो अभ्यास और वैराग्य से समाधि प्राप्त होती है, जिससे वह जीवन मुक्त हो जाता है, किन्तु नितांत मुक्त नहीं होगा शरीर धारण करने से, **[स च चरमदेहो यावद्देहस्तावद्दोपयोगः क्लेशकर्मयागवान् भोगारूढश्चक्रभ्रमणवद् धृतशरीरो नानर्थभाग् भवति]** और वह चरम देह वाला है, जब तक शरीर रहेगा तब तक दोष-उपयोग चलता रहेगा, क्लेश से जुड़ता रहेगा कर्म करता रहेगा भोगारूढ़ रहेगा चक्रभ्रमणवत (जैसे कुम्हार का चाक थोड़ी देर के लिए घूमता रहता है) जब तक शरीर रहेगा तब तक भोगुपभोग होता रहेगा किन्तु उससे कोई अनर्थ का भागी नहीं होता **[''तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्ये''(छान्दो० ६.१४.२)]** उसको उतनी ही देर है मोक्ष में जबतक उसका शरीर न छुट जाए **[इत्येवाह -]** इस बात को आगे कहते हैं-

वासनयाऽनर्थख्यापनं* दोषयोगेऽपि न निमित्तस्य प्रधानबाधकत्वम् ।।११९।।

सूत्रार्थ= इन संस्कारों से अनर्थ का दर्शन होता है, जो जीवन मुक्त है उसको सामान्य खाना पीना आदि व्यवहार चलता रहता है उसको और क्लेश नहीं घेरते दोष नहीं लगता क्योंकि उसकी वासनाएं नष्ट हो चुकी होती हैं । वासनाओं के नष्ट होने से पुनर्जन्म को देने वाले पाप पुण्य नहीं लगते।

[(वासनया-अनर्थख्यापनम्) वासनया खल्वनर्थप्रदर्शनं भवति] वासना (संस्कारों) से अनर्थ

सुषुप्तिसमाधिमोक्षेषु मोक्षस्योत्कृष्टतमत्वमुक्तं तस्य च ताभ्यां भेदोऽपि दर्शितः, अधुना सुषुप्तिसमाध्योः समाधेरुत्कृष्टतरत्वमुच्यते सुषुप्तितः समाधिवैशिष्ट्यं प्रदर्श्यते यदभ्यासवैराग्याभ्यां लब्धसमाधिर्भवति जीवन्मुक्तो जीवन् सन् मुक्तो न तु नितान्तमुक्तस्तस्य सशरीरत्वात्, स च चरमदेहो यावद्देहस्तावद्भोपयोगः क्लेशकर्मयागवान् भोगारूढश्चक्रभ्रमणवद् धृतशरीरो नानर्थभाग् भवति ''तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्ये'' (छान्दो० ६.१४.२) इत्येवाह -

वासनयाऽनर्थख्यापनं* दोषयोगेऽपि न निमित्तस्य प्रधानबाधकत्वम् ।।११९।।

(वासनया-अनर्थख्यापनम्) वासनया खल्वनर्थप्रदर्शनं भवति, अभ्यासवैराग्याभ्यां लब्धसमाधिकस्य चरमदेहस्य जीवन्मुक्तस्य वासनानावतिष्ठते तस्य चरमदेहस्य वासनाऽभावात् (दोषयोगे-अपि न) क्लेशकर्मयोगे भोगारूढस्यापि नानर्थप्रदर्शनं भवति, यतस्तथाभूतस्य चरमदेहस्य योगिनः पुण्यपापकर्मजातिर्न विद्यते, उक्तं हि ''अशुक्लकृष्णा संन्यासिनां क्षीणक्लेशानां चरमदेहानामिति'' (योग० ४.७ व्यासः) (निमित्तस्य प्रधानबाधकत्वम्) दोषाणां क्लेशकर्मादीनां निमित्तं वासना वासनया

का प्रदर्शन होता है, **[अभ्यासवैराग्याभ्यां लब्धसमाधिकस्य चरमदेहस्य जीवन्मुक्तस्य वासनानावतिष्ठते]** अभ्यास और वैराग्य से जिसने समाधि को प्राप्त कर लिया है वह चरम देह बाला जीवन मुक्तावस्था वाले में वासनाएं नहीं टहरती **[तस्य चरमदेहस्य वासनाऽभावात्]** उस चरम देह वाले की वासनाओं का अभाव होने से **[(दोषयोगे-अपि न) क्लेशकर्मयोगे भोगारूढस्यापि नानर्थप्रदर्शनं भवति]** क्लेश कर्म आदि से युक्त होने भोगारूढ़ होने पर भी उसका अनर्थ नहीं होगा, **[यतस्तथाभूतस्य चरमदेहस्य योगिनः पुण्यपापकर्मजातिर्न विद्यते]** क्योंकि इस प्रकार चरम देह वाले व्यक्ति योगी की कर्म जाती पाप पुण्य वाली नहीं होती, **[उक्तं हि ''अशुक्लकृष्णा संन्यासिनां क्षीणक्लेशानां चरमदेहानामिति'' (योग० ४.७ व्यासः)]** जो सन्यासी होते हैं रागद्वेष आदि क्लेश जिनके नष्ट हो चुके हैं और अंतिम देह वाले हैं उनके पाप-पुण्य वाले कर्म नहीं होते **[(निमित्तस्य प्रधानबाधकत्वम्) दोषाणां क्लेशकर्मादीनां निमित्तं वासना वासनया हि ते प्रवर्धन्ते]** जो दोष हैं क्लेश कर्मादि का जो निमित्त है वह वासना है, वासना से ही क्लेश आगे बढ़ते हैं **[वासनारूपस्य निमित्तस्य प्रधानबाधकत्वं मोक्षे भवति]** वासनाएं प्रधान रूप से पुनर्जन्म का कारण होती है उनके नष्ट होने पर मोक्ष हो जाता है, **[वासनारूपनिमित्ताभावात्तस्यालब्धसमाधिकस्य जीवन्मुक्तस्य नानर्थदर्शनं भवति]** वासनारूप निमित्त के नष्ट हो जाने पर समाधि प्राप्त व्यक्ति जो जीवन मुक्त हो चुका है उसे अनर्थ का दर्शन नहीं करना पड़ता है, **[सुषुप्तिगतस्य तु सुषुप्तेरनन्तरं भवत्येवानर्थदर्शनं वासनाया विद्यमानत्वात्]** जो सुषुप्त अवस्था में जब जागृत वास्ता में आएगा तो वासनाएं तो उसमें विद्यमान हैं वह तो अनर्थ का दर्शन करेगा ही। **[तस्मात् सुषुप्तितः समाधिरुत्कृष्टतरा तत्र ब्रह्मसम्पत्तिश्चाप्युत्कृष्टतरा सस्वात्मबोधा]** इसलिए सुषुप्ति से समाधि उत्कृष्ट है, इस समाधि में ब्रह्म की प्राप्ति भी बहुत अच्छी है उसमें अपने स्वरूप का ज्ञान होता है और ईश्वर के स्वरूप का भी ज्ञान होता है ।।११९।।

[उच्यते हि वासनयाऽनर्थख्यापनम्, सा च वासना जीवन्मुक्तस्य नास्तीति न युक्तं] पूर्वपक्षी कहता है-वासना से अनर्थ का दर्शन होता है, और वह वासना का संस्कार जीवन मुक्त में नहीं होता, ये कथन

हि ते प्रवर्धन्ते वासनारूपस्य निमित्तस्य प्रधानबाधकत्वं मोक्षे भवति, वासनारूपनिमित्ता-भावात्तस्यालब्धसमाधिकस्य जीवन्मुक्तस्य नानर्थदर्शनं भवति, सुषुप्तिगतस्य तु सुषुप्तेरनन्तरं भवत्येवानर्थदर्शनं वासनाया विद्यमानत्वात्। तस्मात् सुषुप्तितः समाधिरुत्कृष्टतरा तत्र ब्रह्मसम्पत्तिश्चाप्युत्कृष्टतरा सस्वात्मबोधा ।।११९।।

उच्यते हि वासनयाऽनर्थख्यापनम्, सा च वासना जीवन्मुक्तस्य नास्तीति न युक्तं यतो वासना संस्कारः, संस्कारादेव जीवन्मुक्तस्य चरमदेहस्य भोगक्रियाऽन्तिमा कथ्यते परन्तु क्रियासन्तानात् संस्कारसन्तानः प्रवर्तते इत्थमेकैकां क्रियां प्रति नवीन एकैकः संस्कारः प्रवर्तेत तेन लब्धसमाधिकस्य जीवन्मुक्तस्यापि संस्कारापत्तिर्वासनाप्रसक्तिः स्यात् । अत्रोच्यते -

---

अयुक्त है [**यतो वासना संस्कारः, संस्कारादेव जीवन्मुक्तस्य चरमदेहस्य भोगक्रियाऽन्तिमा कथ्यते**] क्योंकि वासना संस्कार है, और संस्कार से ही जीवन मुक्त चरम देह वाला जो व्यक्ति है उसकी भोग क्रिया अन्तिम कही जाती है [**परन्तु क्रियासन्तानात् संस्कारसन्तानः प्रवर्तते**] परंतु क्रिया की संतान से संस्कार की संतान उत्पन्न होती है [**इत्थमेकैकां क्रियां प्रति नवीन एकैकः संस्कारः प्रवर्तेत**] इस प्रकार से अनेक क्रियाएँ होंगी एक-एक क्रिया से एक-एक नया संस्कार बनेगा [**तेन लब्धसमाधिकस्य जीवन्मुक्तस्यापि संस्कारापत्तिर्वासनाप्रसक्तिः स्यात्**] इस कारण से जिसको समाधि प्राप्त हो गई, जीवन मुक्त हो गया उसको भी अनेक संस्कारों की प्राप्ति हो जाएगी। **अत्रोच्यते** - इसका उत्तर देते हैं-

एकः संस्कारः क्रियानिर्वर्तको न तु प्रतिक्रियं संस्कारभेदा बहुकल्पनाप्रसक्तेः ।।१२०।।

सूत्रार्थ= एक संस्कार से अनेक क्रियाएँ हो जाती है, प्रत्येक क्रिया के लिए अलग अलग संस्कार की अपेक्षा नहीं होती। यदि प्रत्येक क्रिया का संस्कार माना जाए तो संस्कारों का अंत भी नहीं होगा जिससे मोक्ष भी असंभव हो जाएगा।

[**(एकः संस्कारः क्रियानिर्वर्तकः) एको हि संस्कारः क्रियां निर्वर्तयति यावत्क्रियासमाप्तिः क्रियासन्तानसमाप्तिर्वा स एवैकः संस्कारः प्रवर्तते**] एक ही संस्कार क्रिया को उत्पन्न करता है जब तक वो क्रिया समाप्त हो, एक ही संस्कार चलता रहता है [**(न तु प्रतिक्रियं संस्कारभेदाः) न हि प्रतिक्रियं प्रतिक्रियासन्तानं भिन्नभिन्नः संस्कारो नवो नवः संस्कारः समुद्भवति**] और न ही प्रत्येक क्रिया के लिए या क्रिया संतान के लिए अलग-अलग संस्कार नया-नया संस्कार उत्पन्न नहीं होता [**(बहुकल्पनाप्रसक्तेः) क्रियासंस्कारयोः पौनःपुन्येन बहुकल्पनाप्रसंगो भवेत्**] यदि प्रत्येक क्रिया का संस्कार मानें तो बार-बार क्रिया से बहुत से संस्कार हो जाएंगे, बहुकल्पना प्रसंग हो जाएगा तो मोक्ष होना असंभव हो जाएगा, [**न तदा तत्कल्पनासमाप्तिर्भवेत्**] और तब उस कल्पना से समाप्ति संस्कार की न होगी। [**अतः स लब्धसमाधिको जीवन्मुक्तश्चक्रभ्रमणवद् धृतशरीरः पूर्वसंस्कारलेशतो भोगक्रियामनुतिष्ठन् न पुनः संस्कारवशगो भवति**] अतः वह समाधि प्राप्त व्यक्ति जो जीवन मुक्त हो गया है चक्रभ्रमणवत शरीर को धारण करता हुआ जो पूर्व के संस्कार बचे हुए हैं उसके कारण वह भोग क्रिया का अनुष्ठान करता रहता है और नए नए संस्कारों के अधीन

एकः संस्कारः क्रियानिर्वर्तको न तु प्रतिक्रियं संस्कारभेदा बहुकल्पनाप्रसक्तेः ।।१२०।।

(एकः संस्कारः क्रियानिर्वर्तकः) एको हि संस्कारः क्रियां निर्वर्तयति यावत्क्रियासमाप्तिः क्रियासन्तानसमाप्तिर्वा स एवैकः संस्कारः प्रवर्तते (न तु प्रतिक्रियं संस्कारभेदाः न हि प्रतिक्रियं प्रतिक्रियासन्तानं भिन्नभिन्नः संस्कारो नवो नवः संस्कारः समुद्भवति (बहुकल्पनाप्रसक्तेः) क्रियासंस्कारयोः पौनःपुन्येन बहुकल्पनाप्रसंगो भवेत्, न तदा तत्कल्पनासमाप्तिर्भवेत्। अतः स लब्धसमाधिको जीवन्मुक्तश्चक्रभ्रमणवद् धृतशरीरः पूर्वसंस्कारलेशतो भोगक्रियामनुतिष्ठन् न पुनः संस्कारवशगो भवति तस्य तदन्तिमभोगक्रिया संस्कारलेशतः प्रवृत्ता संस्कारलेशतो भोगः समाप्यते, यथा कुलालचक्रं वेगरूपसंस्काराद् भ्रमति संस्कारलेशान्नाग्रे पुनः संस्कारसम्भवः। उक्तं यथा ''नापनीतक्लेशः 'कर्माशयः' कर्मसंस्कारः प्रारोहसमर्थः'' (योग० २.१३ व्यासः) तस्मात्सुषुप्तिमतः

वह नहीं होता [**तस्य तदन्तिमभोगक्रिया संस्कारलेशतः प्रवृत्ता संस्कारलेशतो भोगः समाप्यते**] उसकी अन्तिम भोग क्रिया बचे हुए संस्कार से उत्पन्न होती है और बचे हुए संस्कार से भोग को प्राप्त करता रहता है, यथा [**कुलालचक्रं वेगरूपसंस्काराद् भ्रमति संस्कारलेशान्नाग्रे पुनः संस्कारसम्भवः**] जैसे कुम्हार का चाक वेग रूपी संस्कार से घूमता रहता है और वेग के समाप्त होने पर वह नहीं घूमता फिर संस्कार संभव नहीं होता दुबारा संस्कार से नहीं घूमता।[**उक्तं यथा ''नापनीतक्लेशः 'कर्माशयः' कर्मसंस्कारः प्ररोहसमर्थः''**] जैसे कहा है- जिस कर्माशय का जो क्लेश हटा दिया गया है ऐसी स्थिति में वे कर्म संस्कार अगला जन्म करने में समर्थ नहीं होगा [**(योग० २.१३ व्यासः) तस्मात्सुषुप्तिमतः समाधिमान् तूत्कृष्टतरः**] इसलिए सुषुप्ति अवस्था की स्थिति की तुलना में जो समाधि प्राप्त है उसकी स्थिति उत्कृष्ट है।।१२०।।

[**मोक्षे तु स्याज्जीवात्मनो भोक्तृत्वाभावस्तस्य स्वरूपनिष्ठत्वात्, समाधौ भोक्तृत्वाभावो भवेद् भोक्तृबुद्धेर्निरुद्धत्वात्**] समाधि काल में भी भोग से निवृत्ति होती है, भोगने की बुद्धि वृत्ति को रोक रखा है ईश्वर से आनंद प्राप्त करने के कारण, [**सुषुप्तौ भोक्तृत्वाभावो गाढ़निद्रयाऽभिभूतत्वात्**] सुषुप्ति में भी भोक्तृभाव से निरुद्ध है प्रगाढ़ निद्रा में क्या भोग करेगा, [**अनेन बाह्यबुद्धिर्भोक्तृत्वसाधिकेति गम्यते**] जब जीवात्मा सुख-दुःख आदि का भोग करेगा तो बाह्य बुद्धि से भोग करेगा [**तर्हि यदुज्भिज्जं शरीरं निर्दिष्टं तत्र बाह्यबुद्धेरभावोऽस्ति**] आपने छः प्रकार के शरीर कहे थे उनमें जो उद्भिज्ज शरीर हैं उसमें तो बाह्य बुद्धि का अभाव है [**तेन तत्र भोक्तृत्वं न सिध्यति**]इससे वहाँ तो भोग सिद्ध होता ही नहीं,[**भोक्तृत्वाभावाच्छरीरत्वमपि न सेत्स्यतीत्याशंकायामाह -**] भोगतृत्व का अभाव होने से वह शरीर भी कैसे सिद्ध हो पाएगा? ऐसी आशंका पर कहते हैं-

न बाह्यबुद्धिनियमः ।

वृक्षगुल्मलतौषधिवनस्पतितृणवीरुधादीनामपि भोक्तृभोगायतनत्वं पूर्ववत् ।।१२१-१२२।।

सूत्रार्थ= भोग में बाह्य बुद्धि का नियम नहीं है, भोग में आंतरिक बुद्धि से भी सुख-दुःख होता है । जैसे वृक्ष, गुल्म, लता, औषधि, वनस्पति, घास, इन सब भोक्ताओं का भी भोगायतन है, जैसे पहले और शरीर

समाधिमान् तूत्कृष्टतरः ।।१२०।।

मोक्षे तु स्याज्जीवात्मनो भोक्तृत्वाभावस्तस्य स्वरूपनिष्ठत्वात्, समाधौ भोक्तृत्वाभावो भवेद् भोक्तृबुद्धेर्निरुद्धत्वात्, सुषुप्तौ भोक्तृत्वाभावो गाढनिद्रयाऽभिभूतत्वात्, अनेन बाह्यबुद्धिर्भोक्तृत्वसाधिकेति गम्यते तर्हि यदुद्भिज्जं शरीरं निर्दिष्टं तत्र बाह्यबुद्धेरभावोऽस्ति तेन तत्र भोक्तृत्वं न सिध्यति, भोक्तृत्वाभावाच्छरीरत्वमपि न सेत्स्यतीत्याशंकायामाह -

न बाह्यबुद्धिनियमः ।

वृक्षगुल्मलतौषधिवनस्पतितृणवीरुधादीनामपि भोक्तृभोगायतनत्वं पूर्ववत् ।। १२१-१२२।।

बताए थे ।

अनयोः सूत्रयोरेकवाक्यताऽस्ति - दोनों सूत्रों में परस्पर संबंध है-

[(बाह्यबुद्धिनियमः-न) भोक्तृत्वे बाह्यबुद्धेर्नियमो नास्ति बाह्य बुद्धि हो तभी भोग हो ऐसा नियम नहीं है, भवति बाह्यबुद्ध्याऽपि भोक्तृत्वं परन्तु तत्र न नियमः] बाह्य बुद्धि से भी भोग होता है, परंतु बाह्य बुद्धि होगी तभी भोग होगा ऐसा प्रतिबंध नहीं है, **[यतो बाह्यबुद्धिमन्तरेणापि खल्वन्तर्बुद्धया भोक्तृत्वं भवति हि]** क्योंकि बाह्य स्थूल भोग के बिना भी आंतरिक दृष्टि से बुद्धि से सुख-दुःख का ज्ञान भोग होता है **[(वृक्षगुल्मलतौषधिवनस्पतिवीरुधादीनाम्-अपि भोक्तृभोगायतनत्वं पूर्ववत्) वृक्षादीनामुद्भिज्जशरीराणामन्तःसंज्ञानामपि जीवात्मभोगायतनत्वमस्ति पूर्ववदूष्मजादिजंगमशरीरवत्]** वृक्ष आदि उद्भिज्ज शरीरों में आंतरिक अनुभूतियाँ होती हैं, जैसे कि पहले छः प्रकार के शरीर बताए थे उष्मज आदि जंगम शरीर के समान।।१२१-१२२।।

तदेतद् वृक्षादीनां भोक्तृभोगायतनत्वमन्तःसंज्ञत्वं च स्मृतेश्च ।।१२३।।

सूत्रार्थ= श्रुति से और स्मृति से ये सिद्ध है कि वृक्षों में आत्मा है, कर्मफल है योनि है।

[(स्मृतेः-च) स्मृतेश्च श्रुतेश्च सिध्यति ये स्मृति और श्रुति से सिद्ध है। **श्रुतिस्तावत् ''सूर्य चक्षुर्गच्छतु वातमात्मा दिवं च गच्छ पृथिवीं च धर्मणा। अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधीषु प्रतितिष्ठ शरीरैः''(ऋ० १०.१६.३)]** श्रुति का प्रमाण देते हुए कहते हैं, (इस प्रमाण को ऋग्वेद से लिख लेंगे) **[''योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः। स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथा श्रुतम्''(कठो० २.५.७)]** कुछ जीवात्माएँ शरीर को धारण करने के लिए योनि को प्राप्त करते हैं, जिनमें कुछ पशु आदि का शरीर प्राप्त करते हैं। अन्य जीवात्माएँ वृक्ष वनस्पति का शरीर प्राप्त करते हैं। जैसा कर्म होता है वैसा फल (शरीर) मिलता है । **[''अस्य महतो वृक्षस्य यो मूले...यदेकां शाखां जीवो जहात्यथ सा शुष्यति... सर्वं जहाति सर्वः शुष्यति... जीवापेतं किलेदं म्रियते''(छान्दो० ६.११.१-३)]** इस बड़े महान वृक्ष के मूल में कोई कुल्हाड़ी चलाए तो वह कुछ पानी छोड़ता है। जब वह जीवात्मा इतने बड़े वृक्ष के एक शाखा को छोड़ देता है

अनयोः सूत्रयोरेकवाक्यताऽस्ति -

(बाह्यबुद्धिनियमः-न) भोक्तृत्वे बाह्यबुद्धेर्नियमो नास्ति, भवति बाह्यबुद्धयाऽपि भोक्तृत्वं परन्तु तत्र न नियमः, यतो बाह्यबुद्धिमन्तरेणापि खल्वन्तर्बुद्धया भोक्तृत्वं भवति हि (वृक्षगुल्मलतौषधिवनस्पतिवीरुधादीनाम्-अपि भोक्तृभोगायतनत्वं पूर्ववत्) वृक्षादीनामुद्भिज्जशरीराणामन्तःसंज्ञानामपि जीवात्मभोगायतनत्वमस्ति पूर्ववदूष्मजादिजंगमशरीरवत् ।।१२१-१२२।।

तदेतद् वृक्षादीनां भोक्तृभोगायतनत्वमन्तःसंज्ञत्वं च स्मृतेश्च ।।१२३।।

(स्मृतेः-च) स्मृतेश्च श्रुतेश्च सिध्यति । श्रुतिस्तावत् ''सूर्यं चक्षुर्गच्छतु वातमात्मा दिवं च गच्छ पृथिवीं च धर्मणा। अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधीषु प्रतितिष्ठ शरीरैः'' (ऋ० १०.१६.३) ''योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः। स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथा श्रुतम्'' (कठो० २.५.७) ''अस्य महतो वृक्षस्य यो मूले...यदेकां शाखां जीवो जहात्यथ सा शुष्यति... सर्वं जहाति सर्वः शुष्यति...

वहाँ उसका संबंध टूट जाता है अथवा वह शाखा सूख जाती है, जब पूरे वृक्ष को जीवात्मा छोड़ देता है तो पूरा वृक्ष सूख जाता है। जब जीव वृक्ष को छोड़ देता है तो वह वृक्षरूपी शरीर मर जाता है **[स्मृतिः खल्वपि ''शरीरजैः कर्मदोषैर्याति स्थावरतां नरः''(मनु० १२.९)]** स्मृति वचन भी यह कहता है- शरीर से जो कर्म दोष किए जाते हैं उन शारीरिक अपराधों के कारण मनुष्य स्थावर आदि योनि को प्राप्त होता है **[सूत्रे स्मृतिनिर्देशस्य प्राधान्यम् 'श्रुतेश्च' इत्येतेन सूत्रेणापि भवितव्यमासीत्]** सूत्र में स्मृति निर्देश की प्रधानता है - 'श्रुतेश्च' इस प्रकार से भी सूत्र हो सकता था। **[परन्तु 'न बाह्यबुद्धिनियमः' इति कथनस्य प्राधान्यात् स्मृतिकथनप्राधान्यमत्र]** परंतु इस प्रकार से सूत्र नहीं बनाया ''स्मृतेश्च'' स्मृति की प्रधानता रखी है। पिछले सूत्र में कहा था की ''बाह्य बुद्धि का नियम नहीं हैं'' , इस कथन को ध्यान में रखते हुए, यहाँ स्मृति की प्रधानता होगी। **[यतस्तत्र वृक्षादीनामन्तर्बुद्धित्वं स्पष्टं विहितम् ''अन्तःसंज्ञा भवन्त्येते सुखदुःखसमन्विताः''(मनु० १.४९)]** क्योंकि इन वृक्ष आदि को स्मृति शास्त्रों में अंतस अनुभूति बाला स्पष्ट रूप से बताया है ''ये जो वृक्ष आदि योनि के प्राणी है ये आन्तरिक अनुभूति वाले सूख-दुःख को भोगते रहते हैं''।।१२३।।

वृक्षादि यदि जीव हैं देह है और वहाँ बो आन्तरिक अनुभूति वाले है। प्रश्न है- वो कर्म का आचरण कैसे करेंगे? क्योंकि कर्म तो बाह्य संज्ञा से संपादित होते हैं। इस आकांक्षा पर कहते हैं-

न देहमात्रतः कर्माधिकारित्वं वैशिष्ट्यश्रुतेः ।।१२४।।

सूत्रार्थ= केवल शरीर मात्र मिल जाने से कर्म करने का अधिकार नहीं मिलता, क्योंकि कर्म करने के लिए विशेष योग्यता की अपेक्षा होती है।

[(देहमात्रतः कर्माधिकारित्वं न) देहमात्रत एव कर्माधिकारित्वं कर्मानुष्ठायित्वं कर्मविधानं नास्ति] सिद्धांती कहते हैं- वृक्षादि को कर्म करने का अधिकार नहीं है, देहमात्र के मिलने से कर्म करने का

जीवापेतं किलेदं म्रियते'' (छान्दो० ६.११.१-३) स्मृतिः खल्वपि ''शरीरजैः कर्मदोषैर्याति स्थावरतां नरः'' (मनु० १२.९) सूत्रे स्मृतिनिर्देशस्य प्राधान्यम् 'श्रुतेश्च' इत्येतेन सूत्रेणापि भवितव्यमासीत्। परन्तु 'न बाह्यबुद्धिनियमः' इति कथनस्य प्राधान्यात् स्मृतिकथनप्राधान्यमत्र यतस्तत्र वृक्षादीनामन्तर्बुद्धित्वं स्पष्टं विहितम् ''अन्तःसंज्ञा भवन्त्येते सुखदुःखसमन्विताः'' (मनु० १.४९) ।।१२३।।

वृक्षादयो जीवानां देहास्तत्र च तेऽन्तःसंज्ञा पुनस्तैः कथं कर्माण्यनुष्ठातव्यानि, कर्माणि तु बहिः संज्ञया सम्पद्यन्ते-इत्याकांक्षायामुच्यते -

न देहमात्रतः कर्माधिकारित्वं वैशिष्ट्यश्रुतेः ।।१२४।।

(देहमात्रतः कर्माधिकारित्वं न) देहमात्रत एव कर्माधिकारित्वं कर्मानुष्ठायित्वं कर्मविधानं नास्ति

अधिकार या कर्म का अनुष्ठान अथवा कर्म का विधान नहीं है। **[यतः (वैशिष्ट्यश्रुतेः) विशिष्टत्वश्रवणात्]** क्योंकि कर्म करने के लिए विशेष योग्यता (होनी चाहिए) सुनी जाने से, **[न हि सर्वप्राणिनां कर्मविधायिका श्रुतिः]** सब प्राणियों को कर्म करने का अधिकार है, ऐसा कोई श्रुति वचन नहीं है। **[किन्तु ''कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः। एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ।।''(यजु० ४०.२)]** किन्तु शास्त्र में तो ये कहा गया है कि - कर्म करते हुए व्यक्ति सौ वर्ष तक जीने कि इच्छा करे। (ये कर्म करने का अधिकार मनुष्यो को है)यदि मनुष्य निष्काम कर्म करता हुआ जीने की इच्छा करे तो वह कर्म के बंधन में नहीं पड़ेगा, इसके अतिरिक्त कोई रास्ता नहीं। **[नरस्य-मनुष्यस्य कर्मविधायिका श्रुतिरस्ति]** कर्म करने का अधिकार मनुष्य को है, सबको नहीं। **[तस्मान्न दोषो वृक्षादीनामन्तःसंज्ञत्वात् कर्माभावे]** इसलिए वृक्ष आदि आंतरिक अनुभूति वाले है वे कोई कर्म नहीं कर पाते तो इसमें कोई दोष नहीं है, **[नहि वृक्षादिषु कर्मापेक्षा ते तु भोगदेहा एव]** वृक्षादि में कर्म की अपेक्षा नहीं है वे तो भोग देह है ।।१२४।।

यतो हि -

त्रिधा त्रयाणां व्यवस्था कर्मदेहोपभोगदेहोभयदेहाः ।।१२५।।

सूत्रार्थ= तीन प्रकार के शरीरों की जीवात्माओं के लिए व्यवस्था है, एक है कर्मदेह जिसमें कर्म की प्रधानता है, दूसरा है उपभोग देह पशुपक्षियों की, उसमें उपभोग की प्रधानता है और तीसरा है उभयदेह- जिसमें मनुष्य कर्म भी करते हैं और भोग भी भोगते हैं।

[(त्रिधा व्यवस्था) त्रिप्रकारा व्यवस्था देहविषये सा चेत्थं यत् (त्रयाणां कर्मदेहोपभोगदेहोभयदेहाः) सांकल्पिकशरीरवतां वेदप्रकाशकमहर्षीणामग्न्यादीनां कर्मदेहः] देह के विषय में शरीर के विषय में तीन प्रकार की व्यवस्था है, एक है कर्मदेह दूसरा है भोगदेह और तीसरा उभयदेह (ये जो तीन देह है ये प्रधानता के कारण तीन प्रकार के हैं)। जैसेकि पहले छः प्रकार के शरीर हुए सांकल्पिक शरीर वाले वेद का प्रकाश करने वाले अग्नि आदि चार ऋषियों के जो शरीर थे, वे कर्म देह थे।, **[नहि ते**

।यतः (वैशिष्ट्यश्रुतेः) विशिष्टत्वश्रवणात्, न हि सर्वप्राणिनां कर्मविधायिका श्रुतिः ।किन्तु ''कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः । एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ।।'' (यजु० ४०.२) नरस्य-मनुष्यस्य कर्मविधायिका श्रुतिरस्ति । तस्मान्न दोषो वृक्षादीनामन्तःसंज्ञत्वात् कर्माभावे, नहि वृक्षादिषु कर्मापेक्षा ते तु भोगदेहा एव ।।१२४।।

यतो हि -

त्रिधा त्रयाणां व्यवस्था कर्मदेहोपभोगदेहोभयदेहाः ।।१२५।।

(त्रिधा व्यवस्था) त्रिप्रकारा व्यवस्था देहविषये सा चेत्थं यत् (त्रयाणां कर्मदेहोपभोगदेहोभयदेहाः) सांकल्पिकशरीरवतां वेदप्रकाशकमहर्षीणामग्न्यादीनां कर्मदेहः, नहि ते भोगाय प्रादुर्भूताः किन्तु वेदप्रकाशनं हि तेषां कर्म तस्मात् ते कर्मदेहाः। मनुष्येतराणां पशुपक्ष्यादीनां प्राणिनामुद्भिज्जानां वृक्षादीनां चोपभोगदेहस्तेषां कर्माचरणासम्भवात्। विधिनिषेधदृष्ट्या

भोगाय प्रादुर्भूताः किन्तु वेदप्रकाशनं हि तेषां कर्म तस्मात् ते कर्मदेहाः] वे जो चार ऋषियों के शरीर थे वे भोग के लिए उत्पन्न नहीं हुए थे किन्तु वेद का प्रकाश करना पढ़ना-पढ़ाना, प्रचार करना यही मुख्य कर्म था, इसलिए वे संसार में आए और कर्मदेह कहलाए। **[मनुष्येतराणां पशुपक्ष्यादीनां प्राणिनामुद्भिज्जानां वृक्षादीनां चोपभोगदेहस्तेषां कर्माचरणासम्भवात्]** मनुष्यों से जो भिन्न हैं पशु-पक्षी आदि हैं इन सबका जो शरीर है वह उपभोग देह है (ये भोगप्रधान देह हैं) इसलिए कर्म का आचरण असम्भव होने से, ये कर्म देह नहीं हैं अपितु भोग देह हैं। **[विधिनिषेधदृष्ट्या पुण्यपापकर्मानुष्ठानासम्भवात् ते तूपभोगदेहाः]** (यहाँ असम्भव न लिखकर गौंण लिखना चाहिए) विधि निषेध की दृष्टि से उनके लिए कर्म का विधान ज्यादा नहीं है भोग प्रधान है। **[मनुष्याणामुभयदेहः कर्मभोगदेहास्ते कर्मापि कुर्वन्ति भोगञ्चानुतिष्ठन्ति]** मनुष्यों के जो शरीर हैं वे उपभोग देह हैं, क्योंकि ये कर्म भी करते है और कर्मों के फल को भोगते भी हैं, **[तस्मान्मनुष्याःकर्मोपभोगदेहाः]** इसलिए मनुष्यो का कर्म करने का और भोगने का देह होने से उभय देह कहलाता है ।।१२५।।

किन्तु -

न किञ्चिदप्यनुशयिनः ।।१२६।।

सूत्रार्थ= जो अनुशयी जीव है वह जिस-जिस शरीर में जाएगा वहाँ उसका कोई भोग या कर्म नहीं होगा, उसकी तो केवल यात्रा मात्र है।

[(अनुशयिनः किञ्चित्-अपि न) अनुशयः पुनर्जन्मार्थपुण्यपापसंस्कारस्तथा परशरीरावेशपराक्रमश्च यस्यास्तीति साऽनुशयी] अनुशय= पुनर्जन्म की प्राप्ति के लिए पुण्य पाप का संस्कार पर शरीर में प्रवेश करने की शक्ति है जिस योगी की वो भी अनुशयी है (मरने के साथ आत्मा अपने कर्म साथ लेकर चलता है वो अनुशयी और जो योगी है मृतक शरीर में घुसने की योग्यता रखता है वह भी अनुशयी होता

पुण्यपापकर्मानुष्ठानासम्भवात् ते तूपभोगदेहाः। मनुष्याणामुभयदेहः कर्मभोगदेहास्ते कर्मापि कुर्वन्ति भोगञ्चानुतिष्ठन्ति, तस्मान्मनुष्याःकर्मोपभोगदेहाः।।१२५।।

किन्तु -

न किञ्चिदप्यनुशयिनः ।।१२६।।

(अनुशयिनः किञ्चित्-अपि न) अनुशयः पुनर्जन्मार्थपुण्यपापसंस्कारस्तथा परशरीरावेशपराक्रमश्च यस्यास्तीति साऽनुशयी तस्य किञ्चिदपि तद्देहे कर्म वा भोक्तव्यं वा नास्ति यतो न स तद्देहाभिमानी स तु तत्रानुशयी । अनुशयी भवति द्विविधः, एकस्तु वृक्षादिषु स्थावरयोनिषु तथाऽन्यो मनुष्यादिषु जंगमयोनिषु।

है। किन्तु योगी का मृतक शरीर में घुसना ये बात अमान्य है) **[तस्य किञ्चिदपि तद्देहे कर्म वा भोक्तव्यं वा नास्ति]** अनुशयी जीव जिस देह में बैठा है वह न तो कोई कर्म करेगा और न कोई भोग करेगा **[यतो न स तद्देहाभिमानी स तु तत्रानुशयी]** क्योंकि वह उस शरीर का अभिमानी जीव नहीं है वह तो वहाँ अनुशयी है। **[अनुशयी भवति द्विविधः, एकस्तु वृक्षादिषु स्थावरयोनिषु तथाऽन्यो मनुष्यादिषु जंगमयोनिषु]** अनुशयी दो प्रकार का होता है, एक तो वृक्षादि स्थावर योनि में और दूसरा मनुष्यादि में जंगम चलने फिरने वाले में (ये दूसरे वाला चलने फिरने वाला अमान्य है)। **[यस्तु वृक्षादिषु भवत्यनुशयी स तु परतन्त्रः स्वकर्मानुसारेणानुशयवान् सन् चन्द्रलोकादावृत्य वृक्षादिष्वनुशेते]** किसी जीव को मनुष्य योनि के बाद वृक्ष आदि में बैठा हुआ जो अनुशयी जीव है वह परतंत्र है, अपने कर्म के अनुसार वह वृक्ष आदि में बैठा है। **[उक्तं यथा ''कृतात्ययेऽनुशयवान् दृष्टस्मृतिभ्यां यथेतमनेवं च'']** जैसा कि वेदान्त दर्शन में कहा गया है- कर्म पूरा हो जाने पर वो अनुशयी हो जाता है श्रुति और स्मृति से ये सिद्ध होता है कि शरीर छोड़ने के बाद जीवात्मा दूसरे शरीर में जाता है, और जैसा यहाँ से गया था वैसा ही लौटकर आता है **[(वेदान्त० ३.१.८) ''अन्याधिष्ठितेषु पूर्ववदभिलापात्'']** जिनमें जीवात्मा पहले से निवास कर रहे हैं ऐसे शरीरों में अनुशयी जीव कुछ देर के लिए जाकर टिक जाता है **[(वेदान्त० ३.१.२४) ''अथ य इमें ग्राम इष्टापूर्ते दत्तमित्युपासते...ते पुनर्निवर्तन्ते]** और जो यहाँ गाँव में निवास करके यज्ञादि सामाजिक परोपकार दान आदि के कार्य करते हैं, वे फिर से लौट आते हैं उनका पुनर्जन्म हो जाता है **[यथेतमाकाशमाकाशाद्वायुं वायुर्भूत्वा धूमो भवति धूमो भूत्वाऽभ्रं भवति। अभ्रं भूत्वा मेघो भवति मेघो भूत्वा प्रवर्षति त इह व्रीहियवा ओषधिवनस्पतयस्तिलमाषा इति जायन्तेऽतो वै खलु दुर्निष्प्रपतरं यो यो ह्यन्नमत्ति यो रेतः सिञ्चति तद्रूप एव भवति । तद्य इह रमणीयचरणा अभ्याशो ह यत्ते रमणीयां योनिमापद्येरन्...''(छान्दो० ५.१०.२-७)]** जैसे मरने के बाद आत्मा आकाश में जाता है आकाश से वायु, वायु से धुएँ की स्थिति को प्राप्त हो गए, धुएं से कच्चे बादल में गया। कच्चे बादल से घने बादल में, घने बादल से वर्षा के साथ-साथ धरती पर आए, फिर जो खेती में चावल, जौं, औषधि, वनस्पति हैं उनमें वो आत्माएँ पहुँच जाते हैं। वहाँ से निकालना उनका मुश्किल हो जाता है पुनर्जन्म में पड़ जाते हैं, जिस-जिस अन्न में वह गए वह अन्न जिस-जिस मनुष्य ने खाया उसके शरीर में चला गया और कोई पशु खाएगा तो उसके शरीर में चला जाता है फिर उसके वीर्य से उसके संतान के रूप में जन्म लेता है। जो-जो यहाँ अच्छे कार्य करते हैं वे शीघ्र ही शरीर छोडने के बाद

यस्तु वृक्षादिषु भवत्यनुशयी स तु परतन्त्रः स्वकर्मानुसारेणानुशयवान् सन् चन्द्रलोकादावृत्य वृक्षादिष्वनुशेते। उक्तं यथा ''कृतात्ययेऽनुशयवान् दृष्टस्मृतिभ्यां यथेतमनेवं च'' (वेदान्त० ३.१.८) ''अन्याधिष्ठितेषु पूर्ववदभिलापात्'' (वेदान्त० ३.१.२४) ''अथ य इमे ग्राम इष्टापूर्ते दत्तमित्युपासते...ते पुनर्निवर्तन्ते यथेतमाकाशमाकाशाद्वायुं वायुर्भूत्वा धूमो भवति धूमो भूत्वाऽभ्रं भवति । अभ्रं भूत्वा मेघो भवति मेघो भूत्वा प्रवर्षति त इह व्रीहियवा ओषधिवनस्पतयस्तिलमाषा इति जायन्तेऽतो वै खलु दुर्निष्प्रपतरं यो यो ह्यन्नमत्ति यो रेतः सिञ्चति तद्रूप एव भवति । तद्य इह रमणीयचरणा अभ्याशो ह यत्ते रमणीयां योनिमापद्येरन्...''(छान्दो० ५.१०.२-७) ते एतेऽनुशयिनो वृक्षादिषु खल्वनुशयाना वृक्षादीनामन्तःसंज्ञया भोगमनुतिष्ठतां तद्भोगेन सम्पर्करहितास्तत्र एवानुशेरते न तेषां भोगस्तत्र भवति तत्र तु तेषां यात्रामात्रमेव

अच्छी योनि को प्राप्त होते हैं **[ते एतेऽनुशयिनो वृक्षादिषु खल्वनुशयाना वृक्षादीनामन्तःसंज्ञया भोगमनुतिष्ठतां तद्भोगेन सम्पर्करहितास्तत्र एवानुशेरते]** ये समस्त अनुशयी जीव वृक्षादि में निवास करते हुए और जो अन्तः सज्ञा से भोग कर रहे हैं वृक्ष शरीर से। उस वृक्ष वाली आत्माओं से ये अनुशयी आत्मा संपर्क रहित होती हैं केवल वहाँ निवास करते हैं **[न तेषां भोगस्तत्र भवति तत्र तु तेषां यात्रामात्रमेव]** वहाँ ये अनुशयी जीव का कोई भोग या कर्म नहीं होता केवल इनकी तो यात्रा मात्र है। **[अन्योऽनुशयी भवति योगी यः परदेहावेशपराक्रमवान् भवति]** दूसरा अनुशयी योगी है वह दूसरे के देह में प्रवेश करने कि क्षमता वाला है **[स परदेहेऽनुशेते परदेहे प्रविशति]** वह योगी दूसरे देह में अनुशयी बन कर घुस जाता है और वहाँ निवास करता है। **[उक्तं हि योगदर्शने ''बन्धकारणशैथिल्यात् प्रचारसंवेदनाच्च चित्तस्य परशरीरावेशः'']** योगदारशन के सूत्र में कहा है कि- बंधन का कारण शिथिल कर देने से और शरीर से बाहर निकले की क्रिया समझ लेने से चित्त दूसरे के शरीर में प्रविष्ट होता है **[(योग० ३.३८) तथाविधस्य परशरीराविष्टस्यानुशयिनो योगिनस्तच्छरीरवर्ति न कर्म न च भोक्तव्यं तत्र परशरीरे भवति]** इस प्रकार से दूसरे के शरीर में प्रविष्ट हुए योगी का उस शरीर में होने वाला न तो वह कर्म करता है और न ही वहाँ कोई सुख दुःख भोगता है, केवल शरीर में घुस जाता है **[तच्छरीरस्थक्रमभोगाभ्यां स न सम्पृच्यते तत्र तु तस्य योगकौतूहलप्रदर्शनमेव]** उस दूसरे शरीर में होने वाले कर्म और भोग से ये संयुक्त नहीं होता, वह तो केवल योग विद्या का कौतूहल प्रदर्शन दिखाना मात्र है (ये मान्यता ठीक नहीं है)।।१२६।।

तस्यानुशयिनः कुतो न भोगादिरित्युच्यते - उस अनुशयी जीव को ये भोग आदि सुख-दुःख क्यों नहीं होते? इस पर कहते हैं-

न बुद्धयादिनित्यत्वमाश्रयविशेषेऽपि वह्निवत् ।।१२७।।

सूत्रार्थ= बुद्धि आदि पदार्थ सदा ही जीवात्मा को सुख दुःख का भोग नहीं कराते, जब तक उनको आश्रय विशेष न मिल जाए। जैसे अग्नि किसी पदार्थ में विद्यमान है किन्तु उपयुक्त साधन न मिलने तक उद्बुद्ध नहीं होती।

[(आश्रयविशेषे-अपि) अनुशयिनः पुनर्जन्मप्राप्तये वृक्षादिष्वभिनिविष्टस्य जीवस्य तथा

। अन्योऽनुशयी भवति योगी यः परदेहावेशपराक्रमवान् भवति स परदेहेऽनुशेते परदेहे प्रविशति । उक्तं हि योगदर्शने ''बन्धकारणशैथिल्यात् प्रचारसंवेदनाच्च चित्तस्य परशरीरावेशः'' (योग० ३.३८) तथाविधस्य परशरीराविष्टस्यानुशयिनो योगिनस्तच्छरीरवर्ति न कर्म न च भोक्तव्यं तत्र परशरीरे भवति तच्छरीरस्थक्रमभोगाभ्यां स न सम्पृच्यते तत्र तु तस्य योगकौतूहलप्रदर्शनमेव ।।१२६।।

तस्यानुशयिनः कुतो न भोगादिरित्युच्यते -

न बुद्ध्यादिनित्यत्वमाश्रयविशेषेऽपि वह्निवत् ।।१२७।।

(आश्रयविशेषे-अपि) अनुशयिनः पुनर्जन्मप्राप्तये वृक्षादिष्वभिनिविष्टस्य जीवस्य तथा योगसिद्‌ध्या परशरीरे प्रविष्टस्य योगिनोऽनुशयिनः खल्वाश्रयविशेषे भोगमये भोगकर्ममये च भोगादिकमित्थं न सम्भवति। यतः (बुद्ध यादिनित्यत्वं न) भोगादिकं तु भवति

योगसिद्‌ध्या परशरीरे प्रविष्टस्य योगिनोऽनुशयिनः खल्वाश्रयविशेषे भोगमये भोगकर्ममये च भोगादिकमित्थं न सम्भवति] जो अनुशयी जीव पुनर्जन्म की प्राप्ति के लिए वृक्षादि में बैठा है उस जीव का और दूसरा जो योग सिद्धि वाला है जो दूसरे शरीर में बैठा है उस योगी का। आश्रय विशेष होने से भोग आदि कर्म प्राप्त नहीं होता। **[यतः (बुद्ध यादिनित्यत्वं न) भोगादिकं तु भवति बुद्‌ध्यादिभिर्बुद्‌ध्यहंकारमनोज्ञानेन्द्रियकर्मेन्द्रियैरात्मोपकरणैर्नह्येतैर्विना भोगादिकं सम्भवति]** क्योंकि भोग आदि तो बुद्धि के द्वारा होता है, बुद्धि, अहंकार मन ज्ञानेन्द्रिय हो कर्मेन्द्रिय हों । इन उपकरणों के विना भोग नहीं होता **[बुद्धयहंकारमनोज्ञानेन्द्रियकर्मेन्द्रियाणां न नित्यत्वं न ह्येतानि नित्यानि]** बुद्धि, अहंकार, मन, ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय ये नित्य नहीं हैं इनका नित्यत्व नहीं है, **नहि सर्वदाऽऽत्मना सह तथैव व्यक्तत्वेनाभिसम्बध्यन्ते व्यक्तभावेनोपकरणत्वं भजन्ते किन्त्वनभिव्यक्तरूपाणि**

[(वह्निवत्) यथा ह्यग्निराश्रयविशेषेऽप्यनभिव्यक्तः सन् न दहनादिकार्यं कर्तुं समर्थो भवति यावत् तस्य दाहकधर्मो नाभिव्यक्तो भवेत्] जैसे अग्नि आश्रय विशेष में पदार्थ विशेष में है पर अभिव्यक्त नहीं है जैसे लकड़ी में अग्नि होती है जब तक रगड़ें गे नहीं अग्नि अभिव्यक्त नहीं होगी, ऐसे ही सूक्ष्म शरीर को जब तक स्थूल शरीर से नहीं जोड़ेंगे तब तक वह कार्य नहीं करेगा (जीवात्मा को सुख दु:ख का भोग नहीं होगा) ।।१२७।।

अपरो हेतुरत्रैव - और इसी विषय में अगला हेतु देते हैं-

आश्रयासिद्धेश्च ।।१२८।।

सूत्रार्थ= वह जो वृक्षादि है वह अनुशयी जीव का आश्रय नहीं है, इसलिए उसको वहाँ भोग नहीं होगा।

[(आश्रयासिद्धेः-च) चकारो हेत्वन्तरसमुच्चयार्थः सूत्र में जो ''च'' है वह हेतु अर्थ में है । **यः खल्वनुशयिन आश्रयो वृक्षादिर्वा परदेहो वा तस्यासिद्धेरसिद्धत्वात् सदातनायानाश्रयत्वात् स्थिराश्रयत्वाभावात्, स तु खल्वाश्रयः पुनर्जन्मप्रयोजनाय यात्रामात्रमथ योगिनः परशरीरावेशश्च योगलीलामात्रं योगक्रीडाप्रदर्शनार्थं योगकौतूहलप्रदर्शनार्थम्]** जो यह अनुशयी जीव का आश्रय है वृक्षादि

बुद्धयादिभिर्बुद्धयहंकारमनोज्ञानेन्द्रियकर्मेन्द्रियैरात्मोपकरणैर्नह्येतैर्विना भोगादिकं सम्भवति बुद्धहंकारमनोज्ञानेन्द्रियकर्मेन्द्रियाणां न नित्यत्वं न ह्येतानि नित्यानि, नहि सर्वदाऽऽत्मना सह तथैव व्यक्तत्वेनाभिसम्बध्यन्ते व्यक्तभावेनोपकरणत्वं भजन्ते किन्त्वनभिव्यक्तरूपाणि (वह्निवत्) यथा ह्यग्निराश्रयविशेषेऽप्यनभिव्यक्तः सन् न दहनादिकार्यं कर्तुं समर्थो भवति यावत् तस्य दाहकधर्मो नाभिव्यक्तो भवेत् ।।१२७।।

अपरो हेतुरत्रैव -

आश्रयासिद्धेश्च ।।१२८।।

(आश्रयासिद्धेः-च) चकारो हेत्वन्तरसमुच्चयार्थः । यः खल्वनुशयिन आश्रयो वृक्षादिर्वा परदेहो वा तस्यासिद्धेरसिद्धत्वात् सदातनायानाश्रयत्वात् स्थिराश्रयत्वाभावात्, स तु खल्वाश्रयः पुनर्जन्मप्रयोजनाय यात्रामात्रमथ योगिनः परशरीरावेशश्च योगलीलामात्रं योगक्रीडाप्रदर्शनार्थं योगकौतूहलप्रदर्शनार्थम् । तथा पुनर्जन्मार्थो वृक्षाद्य आश्रयोऽसिद्धः स्वत एवोपकरणरहितः योगसिद्धये

परदेह वो जीवात्मा के भोग के लिए सिद्ध नहीं है, क्योंकि सदा के लिए वो उसका आश्रय नहीं है और स्थिर आश्रय भी नहीं है, उसका जो आश्रय है वह तो पुनर्जन्म के लिए यात्रा मात्र है। [**तथा पुनर्जन्मार्थो वृक्षाद्य आश्रयोऽसिद्धः स्वत एवोपकरणरहितः**] और पुनर्जन्म की प्राप्ति के लिए जो वृक्षादि है वो अनुशयी जीव का आश्रय तो असिद्ध ही है, वह स्वतः ही स्थूल शरीर के रहित है [**योगसिद्धये च परदेहोऽप्यसिद्धोऽशक्त उपकरणशक्तिहीनस्तादृशे देहे योगिनः प्रवेशस्य योगकौतूहलं भवति**] ।।१२८।।

अनुशयिनो योगिनः परशरीरप्रवेशो नाशंकनीयो नासम्भव इत्याह -

भूमिका परिवर्तन किया है-

योगसिद्धयोऽप्यौषधादिसिद्धिवन्नापलपनीयाः ।।१२९।।

सूत्रार्थ= खंडन करने योग्य नहीं हैं, यम नियमों से होने वाली सिद्धियाँ । जैसे जन्म औषधि आदि सिद्धियों से लाभ होता है।

[**(योगसिद्धयः-अपि न-अपलपनीयाः) योगसिद्धयः संयमसिद्धयः ''बन्धकारणशैथिल्यात् प्रचारसंवेदनाच्च चित्तस्य परशरीरावेशः'' (योग० ३.३८) परशरीरावेशादिसिद्धयोऽपि न तिरस्कार्याः**] योगदर्शन में जो सिद्धियाँ कही गयी है उनका तिरस्कार नहीं करना चाहिए [**किन्तु स्वीकार्या मन्तव्याः सन्ति**] योगदर्शन में जो यम नियमों की सिद्धियाँ बताई गयीं हैं वे सत्य हैं। [**(औषधादिसिद्धिवत्) यथा हि ''जन्मौषधिमन्त्रतपःसमाधिजाः सिद्धयः'' (योग० ४.१) इति सूत्रे खल्वोषधिमन्त्र तपोजाः सिद्धयो यथा स्वीक्रियन्ते मन्यन्ते**] जैसे इस सूत्र में जन्म औषधि तपस्या आदि-आदि से जो सिद्धियाँ स्वीकार की

च परदेहोऽप्यसिद्धोऽशक्त उपकरणशक्तिहीनस्तादृशे देहे योगिनः प्रवेशस्य योगकौतूहलं भवति ।।१२८।।

अनुशयिनो योगिनः परशरीरप्रवेशो नाशंकनीयो नासम्भव इत्याह -

योगसिद्धयोऽप्यौषधादिसिद्धिवन्नापलपनीयाः ।।१२९।।

(योगसिद्धयः-अपि न-अपलपनीयाः) योगसिद्धयः संयमसिद्धयः ''बन्धकारणशैथिल्यात् प्रचारसंवेदनाच्च चित्तस्य परशरीरावेशः'' (योग०३.३८) परशरीरावेशादिसिद्धयोऽपि न तिरस्कार्याः किन्तु स्वीकार्या मन्तव्याः सन्ति (औषधादिसिद्धिवत्) यथा हि ''जन्मौषधिमन्त्रतपःसमाधिजाः सिद्धयः'' (योग० ४.१) इति सूत्रे खल्वोषधिमन्त्र तपोजाः सिद्धयो यथा स्वीक्रियन्ते मन्यन्ते तथैव समाधिसिद्धेरपि सूत्रे प्रतिपादनाद्_ योगिनः परशरीरावेशादिसिद्धयोऽपि स्वीकार्या मन्तव्याः सन्ति न निषेध्याः । अत्र विज्ञानभिक्षुभाष्ये ''ईश्वराभावेऽपि योगशक्त्या सृष्टिकर्तृत्वसम्भवोऽस्ति'' इति कथनमनर्गलमेव, सृष्टावेव योगिसम्भवः पुनस्तद्द्वारा सृष्टिरचनं प्रलापमात्रं न च योगसूत्रेषु क्वचिदप्येतदुपलभ्यते ।।१२९।।

गयी हैं, वे ठीक हैं **[तथैव समाधिसिद्धेरपि सूत्रे प्रतिपादनाद् योगिनः परशरीरावेशादिसिद्धयोऽपि स्वीकार्या मन्तव्याः सन्ति न निषेध्याः]** वैसे ही योगदर्शन में जो यम नियमों की सिद्धियाँ है वे भी स्वीकार की गयी हैं। **[अत्र विज्ञानभिक्षुभाष्ये ''ईश्वराभावेऽपि योगशक्त्या सृष्टिकर्तृत्वसम्भवोऽस्ति'' इति कथनमनर्गलमेव]** यहाँ विज्ञान भिक्षु भाष्य में लिखा है, कि ''ईश्वर के न होने पर भी योग शक्ति से सृष्टि रचना आदि कार्य संभव है'', ऐसा उनका कथन ठीक नहीं है, **[सृष्टावेव योगिसम्भवः पुनस्तद्द्वारा सृष्टिरचनं प्रलापमात्रं न च योगसूत्रेषु क्वचिदप्येतदुपलभ्यते]** योगी सृष्टि की रचना कैसे कर लेगा, ''पहले सृष्टि बनेगी तब तो योगी बनेगा' ' इस प्रकार की बाते करना प्रलाप मात्र हैं, योग सूत्रों में ये बात कहीं भी उपलब्ध नहीं होती ।।१२९।।

तत्रैतेषु प्रकृतेषु देहेषु - ये जो प्रकरण में छः प्रकार के शरीर बताए थे, इन सब छः प्रकार के शरीरों में-

न भूतचैतन्यं प्रत्येकानुपलब्धेः सांहत्ये च सांहत्ये च* ।।१३०।।

सूत्रार्थ= भूतों में चेतनता नहीं है भूतों से मिलकर जो शरीर बना वह अचेतन है, क्योंकि प्रत्येक भूत का अलग अलग परीक्षण करने पर किसी में भी चेतन नहीं पाई गई, इस कारण से।

[(सांहत्ये च भूतचैतन्यं न) अथ च भूतानां सांहत्ये सति खलु ये देहा अभिनिष्पन्नास्तत्र देहेषु यच्चैतन्यं तद्_ भूतचैतन्यं भूतानां चैतन्यं नास्ति] और भूतों का संघात होने पर ये जो शरीर आदि उत्पन्न होते हैं इन देहों में जो चेतनता है वह भूतों कि चेतनता नहीं है। **[यतः (प्रत्येकानुलब्धेः) प्रत्येकस्मिन् पृथक्पृथग्भूते चैतन्यं नोपलभ्यते तस्मात्]** क्योंकि प्रत्येक भूत का परीक्षण कर लिया कहीं पर भी चेतना नहीं मिली, **[यः खलु धर्मोऽल्पोऽप्यवयवे न विद्यते स न समुदायेऽभिव्यज्यते]** किसी भी पदार्थ को इकट्ठा करने पर चेतना नहीं आई इसलिए भूत में चेतन नहीं है। **[तस्मात् तत्र देहे चैतन्यं चेतनस्यात्मन इति**

तत्रैतेषु प्रकृतेषु देहेषु -

न भूतचैतन्यं प्रत्येकानुपलब्धेः सांहत्ये च सांहत्ये च* ।।१३०।।

(सांहत्ये च भूतचैतन्यं न) अथ च भूतानां सांहत्ये सति खलु ये देहा अभिनिष्पन्नास्तत्र देहेषु यच्चैतन्यं तद् भूतचैतन्यं भूतानां चैतन्यं नास्ति । यतः (प्रत्येकानुलब्धेः) प्रत्येकस्मिन् पृथक्पृथग्भूते चैतन्यं नोपलभ्यते तस्मात्, यः खलु धर्मोऽल्पोऽप्यवयवे न विद्यते स न समुदायेऽभिव्यज्यते । तस्मात् तत्र देहे चैतन्यं चेतनस्यात्मन इति मन्तव्यम् । ''न सांसिद्धिकं चैतन्यं प्रत्येकादृष्टेः'' (सांख्य०३.२०) इत्युक्तत्वादप्यत्र पुनः कथनं प्रसंगपूर्त्यर्थं तथाग्रे च ''अस्त्यात्मा...''(सांख्य० ६.१) आत्मप्रसंगोत्थापनार्थं यद् यस्य हि देहे चैतन्यं स देहादतिरिक्तो भूतेभ्योऽनभिनिष्पन्नश्चेतन आत्माऽस्तीति कृत्वा न पुनरुक्तिर्दोषावहा। सांहत्ये च सांहत्ये च द्विः कथनमध्यायपरिसमाप्त्यर्थम्।

मन्तव्यम्] इसलिए शरीर में जो चेतनता दिखाई पड़ती है वह आत्मा कि है । **[''न सांसिद्धिकं चैतन्यं प्रत्येकादृष्टेः'' (सांख्य० ३.२०) इत्युक्तत्वादप्यत्र पुनः कथनं प्रसंगपूर्त्यर्थ]** यद्यपि तीसरे अध्याय में ये बात कही थी कि भूतों में चेतना नहीं है, फिर भी यहा पुनः कथन क्यों किया? प्रसंग को पूरा करने के लिए कहा। **[तथाग्रे च ''अस्त्यात्मा...'' (सांख्य० ६.१) आत्मप्रसंगोत्थापनार्थ]** आगे छटे अध्याय में सूत्र आ रहा है ''अस्ति आत्मा'' ये आत्मा का प्रसंग आ रहा है इसलिए यहाँ कह दिया शरीर में जो चेतनता है वह भूतों कि नहीं है आत्मा कि है **[यद् यस्य हि देहे चैतन्यं स देहादतिरिक्तो भूतेभ्योऽनभिनिष्पन्नश्चेतन आत्माऽस्तीति कृत्वा न पुनरुक्तिर्दोषावहा]** शरीर के भीतर जिसकी चेतनता है वह शरीर से भिन्न पदार्थ है और वह भूतों से उत्पन्न नहीं हुआ। इसलिए जो बात दुबारा कही गयी इसमें कोई दोष नहीं है। **[सांहत्ये च सांहत्ये च द्विः कथनमध्यायपरिसमाप्त्यर्थम्]** सूत्र में जो सांहत्ये च सांहत्ये च दो बार कहा गया है यह अध्याय समाप्ति का।।

